हिन्दी समिति ग्रन्थमाला :: १

भारतीय ज्योतिष का इतिहास

लेखक

डॉ० गोरखप्रसाद, डी० एस-सी० (एडिन०)



उत्तर प्रदेश शासन
'राजर्षि पुरुषोत्तमदास टंडन हिन्दी भवन'
महात्मा गांधी मार्ग, लखनऊ

भारतीय ज्योतिष का इतिहास

● द्वितीय संस्करण जनवरी, १९७४

● मूल्य छः रुपये

मुद्रक

● चेतना प्रिंटिंग प्रेस, २२, कैसरबाग, लखनऊ।

प्रकाशकीय



ब्रह्माण्ड के ग्रहो, उपग्रहो, नक्षत्रों, धूमकेतुओं, नीहारिकाओं, आकाशगंगा आदि को देखकर मनुष्य के मन मे इनके सम्बन्ध में जिज्ञासा सृष्टि के प्रारम्भ से ही चली आ रही है। अपनी इस जिज्ञासा के समाधान के लिए उसने विभिन्न उपायों और साधनों का प्रयोग किया, उनकी गतिविधि की निरीक्षा और परीक्षा की एव उनके सम्बन्ध मे कुछ सिद्धान्तों की कल्पना और रचना करने का आयास किया।

भारत इस दिशा मे अग्रणी रहा है। यहाँ के ज्योतिर्विद्, आचार्य और मनीषीगण बड़े श्रम, साधना और समर्पण के साथ रात्रि के अधकार में आकाश मे ज्योतिर्मान् इन ज्योतिष्पिण्डों के सम्बन्ध में सूक्ष्मातिसूक्ष्म बातो की जानकारी प्राप्त कर दिक्-काल का ज्ञान, इन ज्योतिष्पिण्डों की रूप-रेखा एव दूरी का मापन करने में सफल हुए। अहोरात्र, वर्ष, मास, अधिमास आदि इकाइयो का निर्धारण किया गया और वर्ष, मास आदि के दिनो की सख्या निश्चित की गयी। इस दिशा में भारतीय ज्योतिर्विद् आर्यभट ने 'आर्यभटीय' और 'तंत्र' नामक दो ग्रन्थो की रचना की। उनके बाद वराहमिहिर ने 'पचसिद्धान्तिका' नामक ग्रन्थ की रचना की। ये सभी ग्रन्थ भारतीय ज्योतिष के जाज्वल्यमान रत्न हैं। इनमें ज्योतिष के सिद्धान्तों का सुन्दर विवेचन पाया जाता है। पञ्चसिद्धान्तिका' मे वर्णित 'सूर्य-सिद्धान्त' का भी अत्यधिक महत्त्व है।

ज्योतिष के क्षेत्र में अत्यन्त प्राचीन काल से जिस कार्य का समारम्भ हुआ, उसमें निरन्तर प्रगति होती रही और प्राचीन ज्योतिष-ग्रन्थों पर टीकाएँ और भाष्य किये जाते रहे। वेधशालाओं के निर्माण मे भी भारत पीछे नहीं

रहा। जयपुर के महाराज सवाई जयसिंह द्वितीय ने विभिन्न स्थानों पर अनेक वेधशालाओं की स्थापना की, जिनके माध्यम से ग्रहों, नक्षत्रों आदि के सम्बन्ध में अधिकाधिक ज्ञान-वृद्धि होती रही।

जैसा पुस्तक के नाम से स्पष्ट है, इसमें भारतीय ज्योतिष का काल-क्रम के अनुसार सर्वांगीण इतिहास प्रस्तुत किया गया है। इसके सुप्रसिद्ध लेखक डॉ० गोरखप्रसाद हैं जो ज्योतिष और गणित के प्रकाण्ड विद्वान् थे। आज वह हमारे बीच नहीं हैं अन्यथा इस ग्रन्थ का द्वितीय संस्करण देखकर प्रसन्न और सन्तुष्ट होते।

हिन्दी समिति ने इस ग्रन्थ का प्रकाशन अपनी स्थापना के प्रारम्भ में ही किया था। यह हमारी ग्रन्थ-माला का प्रथम पुष्प है। इस ग्रन्थ का विद्वानों, ज्योतिर्विदों तथा अन्य जिज्ञासुओं ने समादर किया, इससे हमें प्रसन्नता हुई। निरन्तर माँग को देखते हुए अब इस ग्रन्थ का द्वितीय संस्करण प्रस्तुत किया जा रहा है। कागज तथा मुद्रण-सम्बन्धी अन्य उपादानों की महार्घता देखते हुए भी इस ग्रन्थ के मूल्य में कोई विशेष वृद्धि नहीं की गयी है। आशा है, विद्वज्जन और वे व्यक्ति जिन्हें खगोल के सम्बन्ध में कुछ ज्ञान-पिपासा है, इस महत्वपूर्ण ग्रन्थ का पूर्ववत् स्वागत और समादर करेंगे।

हिन्दी भवन
लखनऊ, १ जनवरी, १९७४ ई०

काशीनाथ उपाध्याय 'भ्रमर'
सचिव
हिन्दी समिति, उत्तर प्रदेश शासन

भूमिका

यह पुस्तक लोकप्रिय साहित्य की श्रेणी की है। इसमें निजी नवीन खोजो या वर्तमान ज्ञान के सभी ब्योरो का विवरण देने की चेष्टा नही की गयी है। उद्देश्य यह रहा है कि पाठक विषय को सुगमता से समझ सके और सब महत्त्वपूर्ण बातो को जान सके। मुझे आशा है कि ज्योतिष न जानने वाले भी इस पुस्तक से लाभ उठा सकेगे, क्योकि ज्योतिष के वे पारिभाषिक शब्द जो प्रयुक्त हुए हैं, सरल रीति से समझा दिये गये है।

इस पुस्तक के प्रथम सात अध्याय लिखने मे शकर बालकृष्ण दीक्षित के अपूर्व मराठी ग्रथ "भारतीय ज्योतिषशास्त्र अथवा **भारतीय ज्योतिषशास्त्रा चा प्राचीन आणि अर्वाचीन इतिहास**"* से विशेष सहायता मिली है। ज्योतिष के प्रकाड विद्वान् स्वर्गीय श्री महावीरप्रसाद श्रीवास्तव ने मेरे आग्रह से मेरी पुस्तक "**सरल विज्ञान-सागर**" के लिए एक लेख भारतीय ज्योतिष पर लिखा था। मैंने उसका भी विशेप उपयोग किया है। अधिकाश सस्कृत श्लोको के जो अर्थ यहाँ छापे गये हैं उनके लिए मै श्री गगाप्रसाद उपाध्याय, श्री क्षेत्रेशचद्र चट्टोपाध्याय और डाक्टर आद्याप्रसाद मिश्र का ऋणी हूँ। प्रूफ सशोधन मे डॉक्टर कृपाशकर शुक्ल ने बडी सहायता की है, जिसके लिए मैं उनका आभारी हूँ। श्री के महोदय की "**जयसिंह की ज्योतिष वेधशालाएँ**" नामक अग्रेजी पुस्तक से मैंने कुछ चित्र लिये है, और मै उनका अनुगृहीत हूँ।

गोरखप्रसाद

---

* इस पुस्तक का हिन्दी रूपान्तर "भारतीय ज्योतिष" शीर्षक से हिन्दी समिति, उत्तर प्रदेश शासन, द्वारा प्रकाशित किया गया है।

विषय-सूची

• • •

भारतीय ज्योतिष का इतिहास



चित्र-सूची

● ● ●

१

प्रारम्भिक बातें

भारतीय ज्योतिष का प्राचीनतम इतिहास सुदूर भूतकाल के गर्भ मे छिपा हुआ है । केवल ऋग्वेद आदि अति प्राचीन ग्रन्थो के स्फुट वाक्याशो से आभास मिलता है कि उस समय ज्योतिष का ज्ञान कितना रहा होगा ।

ज्योतिष का अध्ययन अनिवार्य था । जगली जातियो मे भी ज्योतिष का थोडा-बहुत ज्ञान रहता ही है क्योकि इसकी आवश्यकता प्रति दिन पडा करती है, इसलिए आर्यो के ज्योतिष-ज्ञान का समुन्नत दिशा मे पहुँचना आश्चर्य की बात नहीं है । ज्योतिष का विशेष रूप से अध्ययन उस समय भी होता था, इसका प्रमाण यह है कि यजुर्वेद मे 'नक्षत्रदर्श' (ज्योतिषी) की चर्चा है ।[1] छादोग्य उपनिषद् मे नक्षत्रविद्या का उल्लेख है ।[2] ज्योतिष अति प्राचीन काल से वेद के छ अगो मे गिना जाता रहा है ।[3]

ज्योतिष के ज्ञान की आवश्यकता कृषको को भी पडती है और पुजारियो को भी । यो तो सभी को समय-समय पर ऐसी बातो के जानने की आवश्यकता पड जाती है जिसे ज्योतिषी ही बता सकता है, परन्तु कृषक विशेष रूप से जानना चाहता है कि पानी कब बरसेगा, और खेतो के बोने का समय आ गया या नही । पुजारी तो बहुत-सी बाते जानना चाहता है । प्राचीन समय मे साल-साल भर तक चलने वाले यज्ञ हुआ करते थे और अवश्य ही वर्ष मे कितने दिन होते हैं, वर्ष कब आरम्भ हुआ, कब समाप्त होगा, यह सब जानना बहुत आवश्यक था ।

१. ३०।१० ; २. ७।१।२, ७।१।४, ७।२।१, ७।७।१,
३. आपस्तब धर्मसूत्र, ४।२।८।१०,

आजकल पचाग इतना सुलभ हो गया है और उसके नियम इतने सुगम हो गये हैं कि इसकी कल्पना ही प्राय असम्भव है कि अत्यन्त प्राचीन समय मे क्या-क्या कठिनाइयाँ पडती रही होगी। इसलिए इस प्रश्न पर विचार करना कि प्राचीनतम ज्योतिषी का वातावरण कैसा रहा होगा, लाभदायक होगा।

★ समय की तीन एकाइयाँ

प्राचीनतम मनुष्य ने भी देखा होगा कि दिन के पश्चात् रात्रि, रात्रि के पश्चात् दिन होता है। एक रातदिन—ज्योतिष की भाषा मे एक अहोरात्र और साधारण भाषा मे केवल दिन—समय नापने की ऐसी एकाई थी जो मनुष्य के ध्यान के सम्मुख बरबस उपस्थित हुई होगी। परन्तु कई कामो के लिए यह एकाई बहुत छोटी पडी होगी। उदाहरणार्थ, बच्चे की आयु कौन जोडता चलेगा कि कितने दिन की हुई। सौ दिन के ऊपर असुविधा होने लगी होगी।

सौभाग्यवश एक दूसरी एकाई थी जो प्राय इतनी ही महत्त्वपूर्ण थी। लोगो ने देखा होगा कि चन्द्रमा घटता-बढता है। कभी वह पूरा गोल दिखाई पडता है, कभी वह अदृश्य भी रहता है। एक पूर्णिमा से दूसरी तक, या एक अमावस्या से दूसरी तक के समय को एकाई मानने मे सुविधा हुई होगी। यह एकाई—एक मास या एक चन्द्रमास—कई कालो के नापने मे सुविधाजनक रही होगी, परन्तु सबके नही। कुछ दीर्घ काल, जैसे बालक-बालिकाओ की आयु, बताने मे मासो का उपयोग भी असुविधाजनक प्रतीत हुआ होगा, इससे भी बडी एकाई की आवश्यकता पडी होगी।

परन्तु लोगो ने देखा होगा कि ऋतुएँ बार-बार एक विशेष क्रम मे आती रहती हैं—जाडा, गरमी, बरसात, फिर जाडा, गरमी, बरसात, और सदा यही क्रम लगा रहता है। इसलिए लोगो ने बरसातो की सख्या बताकर काल-मापन आरम्भ किया होगा। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण यह है कि वर्ष शब्द की उत्पत्ति वर्षा से हुई है, और वर्ष के पर्यायवाची शब्द प्राय सभी ऋतुओ से सम्बन्ध रखते हैं, जैसे शरद, हेमन्त, वत्सर, सवत्सर, अब्द इत्यादि। शरद और हेमन्त दोनो का सम्बन्ध जाडे की ऋतु से है, वत्सर और सवत्सर का अभिप्राय है वह काल जिसमे सब ऋतुएँ एक बार आ जायँ। अब्द जल देने वाला या बरसात है।

★ समय की एकाइयो मे सम्बन्ध

सैकडो वर्षो तक अहोरात्र, मास और वर्ष के सम्बन्ध को सूक्ष्म रूप से जाने बिना ही काम चल गया होगा, परन्तु जैसे-जैसे गणित का ज्ञान बढ़ा होगा, जैसे-जैसे राजकाज मे क्रमबद्ध आय-व्यय का लेखा वर्षो तक रखने की आवश्यकता पडी

होगी, या लम्बे-लम्बे एक या अधिक वर्षों के यज्ञ होने लगे होगे, वैसे-वैसे इन तीन एकाइयो के सम्बन्ध को ठीक-ठीक जानने की आवश्यकता तीव्र होती गयी होगी।

मनुष्य के इन दोनो हाथों मे कुल मिलाकर दस अँगुलियाँ होती हैं और इसी कारण गणित मे दस की विशेष महत्ता है। सारा गणित दस अको से लिख लिया जाता है—१ से ९ तक वाले अक और शून्य ०, इन्ही से बडी-से-बडी सख्याएँ लिख ली जाती हैं। प्राचीनतम मनुष्य ने जब देखा होगा कि एक मास मे लगभग तीस दिन होते हैं तो मास मे ठीक-ठीक तीस दिन मानने मे उसे कुछ भी सकोच न हुआ होगा। उसे मास मे तीस दिन का होना उतना ही स्वाभाविक जान पडा होगा जितना दिन के बाद रात का आना।

परन्तु सच्ची बात तो यह है कि एक मास मे ठीक-ठीक तीस दिन नही होते। सब मास ठीक-ठीक बराबर भी नही होते। इतना ही नही, सब अहोरात्र भी बराबर नही होते। इन सब एकाइयो का सूक्ष्म ज्ञान मनुष्य को बहुत पीछे हुआ। आज भी जब सेकेण्ड के हजारवे भाग तक वैज्ञानिक लोग समय नाप सकते हैं और डिगरी के दो हजारवे भाग तक कोण नाप सकते है, इन एकाइयो का इतना सच्चा ज्ञान नही है कि कोई ठीक-ठीक बता दे कि आज से एक करोड दिन पहले कौन सी तिथि थी—उस दिन चन्द्रमा पूर्ण गोल था, या चतुर्दशी के चन्द्रमा की तरह कुछ कटा हुआ।

★ ऋग्वेद मे वर्षमान

निस्सन्देह इन तीन एकाइयो के सम्बन्ध की खोज से ही ज्योतिष की उत्पत्ति हुई और यदि किसी काल की पुस्तक मे हमें यह लिखा मिल जाता है कि उस समय मास मे और वर्ष मे कितने दिन माने जाते थे तो हमको उस समय के ज्योतिष के ज्ञान का सच्चा अनुमान लग जाता है।

ऋग्वेद हमारा प्राचीनतम ग्रन्थ है। परन्तु वह कोई ज्योतिष की पुस्तक नही है। इसलिए उसमे आनेवाले ज्योतिष-सम्बन्धी सकेत बहुधा अनिश्चित से है। परन्तु इसमे सन्देह नही कि उस समय वर्ष मे बारह मास और एक मास मे तीस दिन माने जाते थे। एक स्थान पर लिखा है—

"सत्यात्मक आदित्य का, बारह अरो (खूँटो या डडो) से युक्त चक्र स्वर्ग के चारो ओर बार-बार भ्रमण करता है और कभी भी पुराना नही होता। अग्नि, इस चक्र मे पुत्रस्वरूप, ७२० (३६० दिन और ३६० रात्रियाँ) निवास करते हैं।[1]"

१ १।१६४।४८, रामगोविन्द त्रिवेदी और गौरीनाथ झा का अनुवाद।

परन्तु यह मानने मे कि मास मे बराबर ठीक तीस दिन होते हैं एक विशेष कठिनाई पडती रही होगी। वस्तुत एक महीने मे लगभग २९½ दिन होते हैं। इसलिए यदि कोई बराबर तीस-तीस दिन का महीना गिनता चला जाय तो ३६० दिन मे लगभग ६ दिन का अन्तर पड जायगा। यदि पूर्णिमा से मास आरम्भ किया जाय तो जब बारहवे महीने का अन्त तीस-तीस दिन बारह बार लेने मे आयेगा तब आकाश मे पूर्णिमा के बदले अधकटा चन्द्रमा रहेगा। इसलिए यह कभी भी माना नही जा सकता कि लगातार बारह महीने तक तीस-तीस दिन का महीना माना जाता था।

★ मास मे दिनो की सख्या

पूर्णिमा ऐसी घटना नही है जिसके घटित होने का समय केवल चन्द्रमा की आकृति को देखकर कोई पल-विपल तक बता सके। यदि इस समय चन्द्रमा गोल जान पडता है तो कुछ मिनट पहले भी वह गोल जान पडता रहा होगा और कुछ मिनट बाद भी वह गोल ही जान पडेगा। मिनटो की क्या बात, कई घण्टो मे भी अधिक अन्तर नही दिखाई पडता। इसलिए एक मास मे २९½ दिन के बदले ३० दिन मानने पर महीने, दो महीने तक तो कुछ कठिनाई नही पडी होगी, परन्तु ज्योही लोगो ने लगातार गिनाई आरम्भ की होगी, उनको पता चला होगा कि प्रत्येक मास मे तीस दिन मानते रहने से साल भर मे गणना और वेध मे एकता नही रहती। जब गणना कहती है कि मास का अन्त हुआ तब आकाश मे चन्द्रमा पूर्ण गोल नही रहता, जब वेध बताता है कि आज पूर्णिमा है तब गणना बताती है कि अभी महीना पूरा नही हुआ।

अवश्य ही कोई उपाय रहा होगा जिसमे लोग किसी-किसी महीने मे केवल २९ दिन मानते रहे होगे। इन २९ दिन वाले महीनो के लिए ऋग्वेद के समय म क्या नियम थे यह अब जाना नही जा सकता, परन्तु कुछ नियम रहे अवश्य होगे। पीछे तो भरतीय ज्योतिष मे ऐसे पक्के नियम बन गये कि लोग उन नियमो के दास बन गये, ऐसे दास कि आज भी हिन्दू ज्योतिषी तभी ही पूर्णिमा मानते है जब उनकी गणना कहती है कि पूर्णिमा हुई, चाहे वेध (आँख से देखी बात) कुछ बताये। मुसलमान वेध के भक्त है, हिन्दू गणित के। चाहे गणना कुछ भी कहे जब तक मुसलमान ईद के चाँद को आँखो से देख न लेगा—चाहे निजी आँखो से, चाहे विश्वस्त पुजारियो की आँखो द्वारा—वह ईद मनायेगा ही नही। परन्तु आज का हिन्दू डेढ हजार वर्ष पहले के बने नियमो का इतना भक्त है कि वह वेध को भाड मे झोकने के लिए उद्यत है। दृक्तुल्यता—गणना मे ऐसा सुधार करना

कि उससे वही परिणाम निकले जो वेध से प्राप्त होता है—आज के प्राय सभी पडितो को पाप-सा प्रतीत होता है। वेध की अवहेलना अभी इसलिए निभी जा रही है कि सूर्य-सिद्धान्त के गणित से निकले परिणाम और वेध मे अभी घण्टे-दो घण्टे से अधिक का अन्तर नही पडता, और घण्टे-दो-घण्टे आगे या पीछे पूर्णिमा बताने से साधारण मनुष्य साधारण अवसरो पर गलती पकड नही पाता। इसी से काम चला जा रहा है। ग्रहण के अवसरो पर अवश्य घण्टे भर की गलती सुगमता से पकडी जा सकती है[1], परन्तु पडितो ने, चाहे वे कितने भी कट्टर प्राचीन मतावलम्बी हो, ग्रहणो की गणना आधुनिक पाश्चात्य रीतियो से करना स्वीकार कर लिया है। अस्तु, चाहे आज का पडित कुछ भी करे, ऋग्वेद के समय के लोग साल भर तक किसी भी प्रकार तीस दिन ही प्रति मास न मान सके होगे। सम्भवत कोई नियम रहा होगा, ऐसे नियम वेदागज्योतिष मे है और उनकी चर्चा नीचे की जायगी। परन्तु यदि कोई नियम न रहे होगे तो कम-से कम अपनी आँखो देखी पूर्णिमा के आधार पर उस काल के ज्योतिषी समय-समय पर एक-दो दिन छोड दिया करते रहे होगे।

★ वर्ष मे कितने मास

यह तो हुआ मास मे दिनो की सख्या का हिसाब। यह भी प्रश्न अवश्य उठा होगा कि वर्ष म कितने मास होते हैं। यहाँ पर कठिनाई और अधिक पडी होगी। पूर्णिमा की तिथि वेध से निश्चित करने मे एक दिन, या अधिक से अधिक दो दिन की अशुद्धि हो सकती है। इसलिए बारह या अधिक मासो मे दिनो की सख्या गिनकर पडता बैठाने पर कि एक मास मे कितने दिन होते हैं, अधिक त्रुटि नही रह जाती है।

परन्तु यह पता लगाना कि वर्षाऋतु कब आरम्भ हुई, या शरदऋतु कब आयी, सरल नही है। पहला पानी किसी साल बहुत पहले, किसी साल बहुत पीछे, गिरता है। इसलिए वर्षाऋतु के आरम्भ को वेध से, ऋतु को देख कर, निश्चित करने मे पन्द्रह दिन की त्रुटि हो जाना साधारण-सी बात है। बहुत काल तक पता ही न चला होगा कि एक वर्ष मे ठीक-ठीक कितने दिन होते हैं। आरम्भ मे लोगो की यही धारणा रही होगी कि वर्ष मे मासो की सख्या कोई पूर्ण सख्या होगी। बारह ही निकटतम पूर्ण सख्या है। इसलिए वर्ष मे बारह महीनो का

१ क्योंकि चन्द्रग्रहण का मध्य पूर्णिमा पर और सूर्यग्रहण का मध्य अमावस्या पर ही हो सकता है।

मानना स्वाभाविक था। दीर्घकाल तक होता यही रहा होगा कि बरसात से लोग मोटे हिसाब से महीनो को गिनते रहे होगे और समय बताने के लिए कहते रहे होगे कि इतने मास बीते।

तो भी, जैसे-जैसे ज्योतिष के ज्ञान मे तथा राज-काज, सभ्यता आदि मे वृद्धि हुई होगी, वैसे-वैसे अधिकाधिक दीर्घ काल तक लगातार गिनती रखी गयी होगी और तब पता चला होगा कि वर्ष मे कभी बारह, कभी तेरह मास रखना चाहिये, अन्यथा बरसात उसी महीने मे प्रति वर्ष नही पडेगी। उदाहरणत, यदि इस वर्ष बरसात सावन-भादो मे थी और हम आज से बराबर बारह-बारह मासो का वर्ष मानते जायँ तो कुछ वर्षों के बाद बरसात कुआर-कार्तिक मे पडेगी, कुछ अधिक वर्षों के बीतने पर बरसात अगहन-पूस मे पडेगी। मुसलमानो की गणना-पद्धति आज भी यही है कि एक वर्ष मे कुल १२ मास (चन्द्र मास) रखे जायँ। इसका परिणाम यही होता है कि बरसात उनके हिसाब से प्रति वर्ष एक ही महीने मे नही पडती। उदाहरणत, उनके एक महीने का नाम मुहर्रम है। उसी महीने मे मुसलमानो का मुहर्रम नामक त्योहार पडता है। परन्तु यह त्योहार, जैसा सभी ने देखा होगा, बराबर एक ही ऋतु मे नही पडता।

★ ऋग्वेद के समय मे अधिमास

हिन्दुओ ने तेरहवाँ मास लगाकर मासो और ऋतुओ मे अटूट सम्बन्ध जोडने की रीति ऋग्वेद के समय मे ही निकाल ली थी। ऋग्वेद मे एक स्थान पर आया है—

"जो व्रतावलम्बन करके अपने-अपने फलोत्पादक बारह महीनो को जानते हैं और उत्पन्न होने वाले तेरहवे मास को भी जानते हैं, "।[1]

इससे प्रत्यक्ष है कि वे तेरहवाँ महीना बढाकर वर्ष के भीतर ऋतुओ का हिसाब ठीक रखते थे।

★ नक्षत्र

लोगो ने धीरे-धीरे यह देखा होगा कि पूर्णिमा का चन्द्रमा जब कभी किसी विशेष तारे के निकट रहता है तो एक विशेष ऋतु रहती है। इस प्रकार तारो के बीच चन्द्रमा की गति पर लोगो का ध्यान आकृष्ट हुआ होगा। तारो के हिसाब से चन्द्रमा एक चक्कर २७⅓ दिन मे लगाता है। मोटे हिसाब से प्राचीन लोगो ने इसे २७ ही दिन माना होगा। इसलिए चन्द्रमा के एक चक्कर को २७ भागो मे बाँटना और उसके मार्ग मे २७ चमकीले या सुगमता से पहचान मे आनेवाले तारो

१. १।२५।८, रामगोविन्द त्रिवेदी और गौरीनाथ झा का अनुवाद।

या तारका-पुजो को चुन लेना उनके लिए स्वाभाविक था। ठीक-ठीक बराबर दूरियो पर तारो का मिलना असम्भव था, क्योकि चन्द्रमा के मार्ग मे तारो का जडना मनुष्य का काम तो था नही। इसलिए आरम्भ में मोटे हिसाब से ही वेध द्वारा चन्द्रमा की गति का पता चल पाता रहा होगा, परन्तु गणित के विकास के साथ इसमे सुधार हुआ होगा और तब चन्द्र मार्ग को ठीक-ठीक बराबर २७ भागो मे बाँटा गया होगा। चन्द्रमा २७ के बदले लगभग २७$\frac{१}{३}$ दिन मे एक चक्कर लगाता है, इसका भी परिणाम जोड लिया गया होगा।

चन्द्रमा के मार्ग के इन २७ बराबर भागो को ज्योतिष मे नक्षत्र कहते हैं। साधारण भाषा मे नक्षत्र का अर्थ केवल तारा है। इस शब्द से किसी भी तारे का बोध हो सकता है। आरम्भ मे नक्षत्र तारे के लिए ही प्रयुक्त होता रहा होगा। परन्तु 'चन्द्रमा अमुक नक्षत्र के समीप है' कहने की आवश्यकता बार-बार पडती रही होगी। समय पाकर चन्द्रमा और नक्षत्रो का सम्बन्ध ऐसा घनिष्ठ हो गया होगा कि नक्षत्र कहने से ही चन्द्र मार्ग के समीपवर्ती किसी तारे का ध्यान आता रहा होगा। पीछे जब चन्द्र-मार्ग को २७ बराबर भागो मे बाँटा गया तो स्वभावत इन भागो के नाम भी समीप-वर्ती तारो के अनुसार अश्विनी, भरणी, कृत्तिका, रोहणी आदि पड गये होगे।

ऋग्वेद मे कुछ नक्षत्रो के नाम आते हैं जिससे पता चलता है कि उस समय भी चन्द्रमा की गति पर ध्यान दिया जाता था।[१]

★ उदयकालिक सूर्य

'कौषीतकी ब्राह्मण' मे इसका सूक्ष्म वर्णन है कि उदयकाल के समय सूर्य किस दिशा मे रहता है। क्षितिज पर सूर्योदय-बिन्दु स्थिर नही रहता, क्योकि सूर्य का वार्षिक मार्ग तिरछा है और इसका आधा भाग आकाश के उत्तर भाग मे पडता है, आधा दक्षिण मे। कौषितकी ब्राह्मण ने सूर्योदय-बिन्दु की गति का सच्चा वर्णन दिया है कि किस प्रकार यह बिन्दु दक्षिण की ओर जाता है, कुछ दिनो तक वहाँ स्थिर-सा जान पडता है और फिर उत्तर की ओर बढता है।[२] यदि यज्ञ करने वाला प्रति दिन एक ही स्थान पर बैठकर यज्ञ करता था—और वह ऐसा करता भी रहा होगा—तो क्षितिज के किसी विशेष बिन्दु पर सूर्य को उदय होते हुए देखने के पश्चात् फिर एक वर्ष बीतने पर ही वह सूर्य को ठीक उसी स्थान पर (उसी ऋतु मे) उदय होता हुआ देखता रहा होगा। वस्तुत, क्षितिज के किसी एक बिन्दु पर उदय होने से लेकर सूर्य के फिर उसी बिन्दु पर वैसी ही ऋतु मे उदय होने तक के

१. १०।८५।१३, २ १९।२।३,

काल मे दिनो की सख्या गिनने से वर्ष का मान पर्याप्त अच्छी तरह ज्ञात हो सकता है, और सम्भव है कि इस रीति से भी उस समय वर्षमान निकाला गया हो। कम से कम इतना तो निश्चय है कि कौषीतकी ब्राह्मण के कर्त्ता ने सूर्योदय-बिन्दु की गति को कई वर्षों तक अच्छी तरह देखा था।

★ तारो का उदय और अस्त होना

वर्षमान जानने की एक अन्य रीति भी थी। लोग सूर्य की उपासना करते थे। प्रात काल, सूर्योदय के पहले से ही, पूर्व दिशा की ओर ध्यान दिया करते थे। इस क्रिया मे उन्होंने देखा होगा कि सूर्योदय के पहले जो तारे पूर्वीय क्षितिज के ऊपर दिखाई पडते है वे सदा एक ही नही रहते। उदाहरणत, यदि मान लिया जाय कि आज प्रात काल मघा नामक तारा लगभग सूर्योदय के समय पूर्वीय क्षितिज से थोडी-सी ही ऊँचाई पर दिखाई पड रहा था तो यह निश्चित है कि आज से बीस-पचीस दिन बाद यह तारा सूर्योदय के समय क्षितिज से बहुत अधिक ऊँचाई पर रहेगा, और बीस-पचीस दिन पहले सूर्योदय के समय यह क्षितिज से नीचे और इसलिए अदृश्य था। अवश्य कोई दिन ऐसा रहा होगा जिस दिन यह तारा पहले-पहल लगभग सूर्योदय के समय, या तनिक-सा पहले दिखाई पडा होगा। वह तारा उस दिन 'उदय' हुआ, ऐसा माना जाता था। लोगो ने देखा होगा कि विशेष तारो का उदय विशेष ऋतुओं मे होता है। तुलसीदास ने जो लिखा है "उदेउ अगस्त्य पथ जल सोखा" उसमे उदय होने का अर्थ यही है कि अगस्त्य पहले प्रात काल नही दिखाई पड रहा था, जब वह सूर्योदय के पहले दिखाई पडने लगा तो बरसात बीत गयी थी।

विशेष तारो के उदय होने के समयो को बार-बार देखकर और इस पर ध्यान रखकर कि कितने-कितने दिनो पर एक ही तारा उदय होता है, लोगो ने वर्ष का स्थूल मान अवश्य जान लिया होगा। एक बरसात से दूसरी बरसात तक के दिनो को गिनने की अपेक्षा तारो के एक उदय से दूसरे उदय तक या सूर्योदय-बिन्दु के क्षितिज के किसी विशेष चिह्न पर फिर आ जाने तक के काल मे दिनो के गिनने से वर्ष का अधिक सच्चा ज्ञान हुआ होगा, परन्तु इसमे भी स्थूलता तब तक न मिटी होगी जब तक कई वर्षों तक दिनो की गिनती लगातार न की गयी होगी।

तारो का उदय प्राचीन काल मे भी देखा जाता था। यह तैत्तिरीय ब्राह्मण के एक स्थान से स्पष्ट है।[1] ऋग्वेदीय काल मे ज्योतिष की नीव पड गयी थी।

१ १।५।२।१, लोकमान्य तिलक ने अपनी पुस्तक 'ओरायन' में पृष्ठ १८ पर इसकी व्याख्या की है।

२

प्राचीनतम ज्योतिष

ऋग्वेद तथा अन्य प्राचीनतम ग्रन्थो मे ज्योतिष से सबध रखने वाली कई बाते है। शकर बालकृष्ण दीक्षित ने अपनी मराठी पुस्तक "भारतीय ज्योनिषशास्त्र" मे अनेक उद्धरण दिये है और उन पर पाडित्यपूर्ण विवेचन किया है। यहा थोडे-मे चुने हुए उद्धरण दिये जायेगे, जिनसे पता चल जायगा कि हमारे प्राचीन ऋषियो को ज्योतिष का ज्ञान कैसा था। परन्तु इन उल्लेखो पर विचार करने के पहले यह समझ लेना भी अच्छा होगा कि हमारे प्राचीनतम साहित्य मे क्या-क्या ग्रन्थ उपलब्ध है।

★ हमारा प्राचीनतम माहित्य

हमारे प्राचीनतम ग्रन्थो मे वेद है। वेद का साधारण अर्थ ज्ञान है, परन्तु विशेष अर्थ है भारतीय आर्यों के सर्वप्रथम और सर्वमान्य धार्मिक ग्रन्थ। इनकी सख्या चार है। हिन्दी शब्द-सागर मे इनके सबध मे निम्न सूचना दी हुई है—

> "आरम्भ मे वेद केवल तीन ही थे—ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद। इनमे से ऋग्वेद पद्य मे है और यजुर्वेद गद्य मे। सामवेद मे गाने योग्य गीत या साम है। इसलिए प्राचीन साहित्य मे "वेदत्रयी" शब्द का ही अधिक प्रयोग देखने मे आता है, यहाँ तक कि मनु ने भी अपने धर्मशास्त्र मे अनेक स्थानो पर "वेदत्रयी" शब्द का व्यवहार किया है। चौथा अथर्ववेद पीछे से वेदो मे सम्मिलित हुआ था, और तब से वेद चार माने जाने लगे। इस चौथे या अन्तिम वेद मे शाति तथा पौष्टिक अभिचार, प्रायश्चित्त, तत्र, मत्र आदि विषय है। वेदो के तीन मुख्य भाग हैं जो सहिता, ब्राह्मण और आरण्यक या उपनिषद् कहलाते हैं। सहिता शब्द का अर्थ सग्रह है, और

वेदो के सहिता भाग मे स्तोत्र, प्रार्थना, मत्र-प्रयोग, आशीर्वादात्मक सूक्त, यज्ञ-विधि से सबध रखने वाले मत्र और अरिष्ट आदि की शाति के लिए प्रार्थनाएँ आदि सम्मिलित हैं। वेदो का यही अश 'मत्र-भाग' भी कहलाता है। 'ब्राह्मण-भाग' मे एक प्रकार से बडे-बडे गद्य ग्रथ आते हैं जिनमे अनेक देवताओ की कथाएँ, यज्ञ-सबधी विचार और भिन्न-भिन्न ऋतुओ मे होने वाले धार्मिक कृत्यो के व्यावहारिक तथा आध्यात्मिक महत्त्व का निरूपण है। वनो मे रहने वाले यति, सन्यासी आदि परमेश्वर, जगत् और मनुष्य इन तीनो के सबध मे जो विचार किया करते थे, वे उपनिषदो और आरण्यको मे सगृहीत है। इन्ही मे भारत का प्राचीनतम तत्त्वज्ञान भरा हुआ है। यह सब मानो वेदो का अतिम भाग है, और इसीलिए 'वेदात' कहलाता है। वेदो का प्रचार बहुत प्राचीन काल से और विस्तृत प्रदेश मे रहा है, इसलिए काल-भेद देश-भेद और व्यक्ति-भेद आदि के कारण वेदो के मत्रो के उच्चारण आदि मे अनेक पाठ-भेद हो गये हैं। साथ ही पाठ मे कही-कही कुछ न्यूनता और अधिकता भी हो गयी है। इस पाठ-भेद के कारण सहिताओ को जो रूप प्राप्त हुए हैं वे 'शाखा' कहलाते हैं, और इस प्रकार प्रत्येक वेद की कई-कई शाखाएँ हो गयी हैं। शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, ज्योतिष और छद। ये छ वेदो के अग या वेदाग कहलाते हैं।

हिन्दू लोग वेदो को अपौरुषेय और ईश्वर-कृत मानते है। लोगो का विश्वास है कि ब्रह्मा ने (स्वय) वेद कहे है, और जिन-जिन ऋषियो ने जो मत्र सुनकर सगृहीत किये हैं वे उन मत्रो के द्रष्टा है। कहा जाता है कि वेदों का वर्तमान रूप मे सग्रह और सकलन महर्षि व्यास ने किया है, और इसीलिए वे वेदव्यास कहे जाते हैं।

वेदो के रचना-काल के सबध मे विद्वानो मे बहुत अधिक मतभेद है। मैक्समूलर आदि कई पाश्चात्य विद्वानो का मत है कि वेदो की रचना ईसा से प्राय डेढ हजार वर्ष पहले उस समय हुई जिस समय आर्य लोग आकर पजाब मे बसे थे। परतु लोकमान्य तिलक ने ज्योतिष-सबधी तथा अन्य कई आधारो पर वेदो का समय ईसा से लगभग ४,५०० वर्ष पूर्व स्थिर किया है। बूलर आदि विद्वानो का मत है कि आर्य सभ्यता ईसा से प्राय चार हजार वर्ष पहले की है और वैदिक साहित्य की रचना ईसा से प्राय तीन हजार वर्ष पहले हुई है, और अधिकाश लोग यही मत मानते हैं।"

वेद 'श्रुति' कहलाते हैं क्योंकि ऋषियो ने उन्हें ब्रह्मा के मुख से सुना था। 'स्मृति' ऐसी कृति को कहते हैं जो किसी पुरुष की रचना होती है। स्मृति का अर्थ है वह जो स्मरण रह गया हो। श्रुति का अर्थ है वह जो सुना गया हो। स्मृतियो के कर्त्ता, कर्त्तार या स्रष्टार होते हैं, जिन्हे हम आज-कल की भाषा मे ग्रथकार या लेखक कहेगे। श्रुतियो के कर्त्ता नही, द्रष्टा या द्रष्टार होते थे जो अपनी दिव्य दृष्टि से सत्य को देख सकते थे।

★ ब्राह्मण आदि ग्रथ

ऋग्वेद मे एक हजार से अधिक सूक्त हैं और एक सूक्त मे मध्यमानत (औसतन) लगभग १० ऋचाएँ (छद) है। सारे वेद को दस मडलो मे बाँटा गया है और हमने जहाँ-जहाँ ऋग्वेद की किसी पक्ति का निर्देश किया है वहाँ प्रथम सख्या मडल बताती है, दूसरी सूक्त, तीसरी मत्र या ऋचा। ऋग्वेद के अध्ययन से पता चलता है कि उस समय के आर्य अधिकांश पजाब मे बसे थे जहाँ सिधु नदी तथा उसकी सहायक नदियाँ बहती थी। परतु वे गगा, यमुना और गोमती तक एक ओर और कुभा (काबुल) तक दूसरी ओर फैले हुए थे। पशु-पालन (विशेषत गो-पालन) और कृषि ये ही दो उनके प्रमुख काम थे।

ऋग्वेद के कई 'ब्राह्मण'[1] थे जिनमे से दो ही—ऐतरेय और कौषीतकी—अब उपलब्ध हैं। दोनो मे बहुत-सी बातें एक ही हैं, परतु प्रत्येक मे कई ऐसी बाते हैं जो दूसरे मे नही हैं। ऐतरेय ब्राह्मण के साथ ऐतरेय आरण्यक और ऐतरेय उपनिषद् भी हैं, इसी प्रकार कौषीतकी ब्राह्मण के साथ कौषीतकी आरण्यक और कौषीतकी उपनिषद् हैं। ताण्ड्य ब्राह्मण सामवेद का ब्राह्मण है।

सामवेद की अधिकाश ऋचाएँ (लगभग १६००) ऋग्वेद से ली गयी हैं और उनके गान दिये गये हैं।

यजुर्वेद की दो शाखाएँ है—कृष्ण यजुर्वेद और शुक्ल यजुर्वेद, जिनमे से कृष्ण यजुर्वेद अधिक प्राचीन है। यजुर्वेद के ऋषि थे वैशम्पायन, जिनके शिष्य के शिष्य थे तित्तिरि, और इन्ही के नाम से यजुर्वेद की एक शाखा तैत्तिरीय-सहिता है। परतु इस सहिता मे केवल ऋचाएँ नही है, वे सब विषय भी हैं जिन्हे साधारणत ब्राह्मणो में जाना चाहिये। परतु तैत्तिरीय ब्राह्मण भी है जो सभवत कुछ काल

१ वेद के उस अंश को 'ब्राह्मण' कहते हैं जो बताता है कि किस यज्ञ में कौन-से सूक्त का पाठ होना चाहिये, और जो ऋचाओं का अर्थ देता है और उन्हें स्पष्ट करने के लिए कथाएँ देता है।

बीतने पर तैयार हुआ। ऋचाओ और ब्राह्मण मे जानने योग्य विषयो का सम्मिश्रण यजुर्वेद की अन्य शाखाओ मे भी था—काठक, कालापक और मैत्रायणी-सहिता मे, परन्तु इस दोष को याज्ञवल्क्य वाजसनेय ने दूर किया। उनके द्वारा प्रसारित सहिता वाजसनेयी-सहिता कहलायी। इसके साथ जो ब्राह्मण था उसका नाम शतपथ ब्राह्मण पडा। अधिक स्पष्ट होने के कारण वाजसनेयिओ ने अपनी सहिता को शुक्ल यजुर्वेद कहा और पहले वाली सहिताओ को कृष्ण कहा।

शतपथ ब्राह्मण मे ज्योतिष-सबधी कई एक सूचनाएँ है, परन्तु वर्तमान शतपथ ब्राह्मण का सब अग एक साथ नही बना है। प्राचीन वैयाकरण पाणिनि के वार्तिककार कात्यायन के अनुसार शतपथ के पिछले अश पाणिनि के काल मे या कुछ ही पहले तैयार हुए थे। समय पाकर तैत्तिरीय लोग नर्मदा की ओर बढे और वाजसनेयी लोग विदेह की ओर।

अथर्ववेद मे अन्य वेदों की भाँति स्तोत्रो के अतिरिक्त शत्रु को नाश करने के भी मत्र है, दुर्घटना, पाप, विपत्ति आदि से बचने के लिए भी मत्र है। कुछ विद्वानो का मत है कि आदिम निवासियो के सपर्क का यह परिणाम है। अथर्ववेद के ब्राह्मण का नाम गोपथ ब्राह्मण है। अथर्ववेद से सबध रखने वाली उपनिषदे कई एक है—प्रश्न, मुडक माडूक्य इत्यादि।

★ वैदिक साहित्य मे वर्ष, मास और अधिमास

'तैत्तिरीय ब्राह्मण' मे एक स्थान पर सूर्य, चद्रमा, नक्षत्र, सवत्सर, ऋतु, मास, अर्धमास, अहोरात्र, पौर्णमासी आदि शब्द एक साथ ही आये है। पाठ यो है—

लोकोसि स्वर्गोसि ॥ अनतोस्यपारोसि ॥ अक्षितोस्यक्षय्योसि ॥ तपस प्रतिष्ठा ॥ त्वयीदमत ॥ विश्व यक्ष विश्व भूत विश्व सुभूत ॥ विश्वस्य भर्ता विश्वस्य जनयिता ॥ तत्वोपदधे कामदुघमक्षित ॥ प्रजापतिस्त्वासादयतु ॥ तया देवतयाङ्गिरस्वद्ध्रुवासीद ॥ ॥ तपोसि लोके श्रित ॥ तेजस. प्रतिष्ठा ॥ त्वयीद० ॥ ॥ तेजोसि तपसि श्रित ॥ समुद्रस्य प्रतिष्ठा ॥ समुद्रोसि तेजसि श्रित ॥ अपां प्रतिष्ठा ॥ ॥ आप स्थ समुद्रे श्रिता ॥ पृथिव्या प्रतिष्ठा युष्मासु ॥ ॥ पृथिव्यस्यप्सु श्रिता ॥ अग्ने प्रतिष्ठा ॥ ॥ अग्निरसि पृथिव्यां श्रित ॥ अतरिक्षस्य प्रतिष्ठा ॥ ॥ अतरिक्षमस्यग्नौ श्रित ॥ वायो प्रतिष्ठा ॥ ॥ वायुरस्यतरिक्षे श्रित ॥ दिव प्रतिष्ठा ॥ ॥ द्यौरसि वायौ श्रिता ॥ आदित्यस्य प्रतिष्ठा ॥ ॥ आदित्योसि दिवि श्रित ॥ चद्रमस प्रतिष्ठा ॥ ॥ चद्रमा अस्यादित्ये श्रित ॥ नक्षत्राणा प्रतिष्ठा ॥ ॥ नक्षत्राणि स्थ चद्रमसि श्रितानि ॥ सवत्सरस्य प्रतिष्ठा युष्मासु ॥ ॥ सवत्सरोसि नक्षत्रेषु श्रित. ॥ ऋतूनां

प्रतिष्ठा ।। ।। ऋतवःस्थ संवत्सरे श्रिताः।। मासानां प्रतिष्ठा युष्मासु ।।' ।। मासा' स्यर्तुषु श्रिताः ।। अर्धमासाना प्रतिष्ठा युष्मासु ।।" ।। अर्धमासाः स्थ मा.सु श्रिता. ।। अहोरात्रयो प्रतिष्ठा युष्मासु ।। ' ।। अहोरात्रे स्थोर्धमासेषु श्रिते ।। भूतस्य प्रतिष्ठे भव्यस्य प्रतिष्ठे ।। पौर्णमास्यष्टकामावास्या ।। अन्नादा' स्थान्नदुघो युष्मासु ।। राडसि बृहती श्रीरसीन्द्रपत्नी धर्मपत्नी ।। ओजोसि सहोसि बलमसि भ्र.जोसि ।। देवानां धामामृत ।। अमर्त्यस्तपोजा ।। ।।— तै ब्रा. ३ ११ १

[अर्थ–तू लोक है । तू स्वर्ग है । तू अनन्त है । तू अपार है । तेरा कभी नाश नही हुआ है । तू अविनाशी है । तू तप की प्रतिष्ठा (ठहरने की भूमि) है । तुझमे यह सब है । विश्व यक्ष है, विश्व भूत है, विश्व सुभूत है विश्व का धारण करने वाला । विश्व का उत्पन्न करने वाला । उस तुमको स्थापित करता हू । कामधेनु (कामनाओ के पूरक) और अनष्ट की । प्रजापति तुझको ठीक रखे । उस देवता के द्वारा अगिराओ मे विराजमान हो । तू तप है लोक मे ठहरा हुआ । तेज की प्रतिष्ठा है । तुझमे यह अन्त है । तू तेज है तप मे ठहरा हुआ । समुद्र की प्रतिष्ठा है । । तू समुद्र है तेज मे ठहरा हुआ, जलो की प्रतिष्ठा है । । तुम जल हो समुद्र मे ठहरे हुए । तुममे पृथ्वी की प्रतिष्ठा है । । तू पृथ्वी हे जलो म ठहरी हुइ । अग्नि की प्रतिष्ठा है । । तू अग्नि है पृथ्वी मे ठहरी हुई । अन्तरिक्ष की प्रतिष्ठा हे । । तू अन्तरिक्ष है अग्नि मे ठहरी हुई । वायु की प्रतिष्ठा है । । तू वायु है अतरिक्ष मे ठहरी हुई । द्यौलोक की प्रतिष्ठा है । । तू द्यौ है वायु मे ठहरी हुई । आदित्य की प्रतिष्ठा है । । तू आदित्य है द्यौ (अकाश) मे ठहरा हुआ । चद्रमा की प्रतिष्ठा है । । तू चद्रमा है आदित्य (सूर्य) मे ठहरा हुआ । नक्षत्रो की प्रतिष्ठा है । । तुम नक्षत्र हो चद्रमा मे ठहरे हुए । तुम मे सवत्सर की प्रतिष्ठा है । । तू सवत्सर है नक्षत्रो मे ठहरा हुआ । तू ऋतुओ की प्रतिष्ठा है । । तुम ऋतु हो सवत्सर मे ठहरे हुए । महीनो की प्रतिष्ठा तुम मे है । । तुम महीने हो ऋतुओ मे ठहरे हुए । तुम मे आधे-महीनो की प्रतिष्ठा है । । तुम अर्धमास हो मासो मे ठहरे हुए । अहोरात्र (रातदिन) की प्रतिष्ठा तुम मे है । । तुम अहोरात्र हो अर्द्धमासो मे ठहरे हुए । तुम भूत की भी प्रतिष्ठा हो और भव्य (वर्तमान) की भी । पूर्णमासी, अष्टमी, अमावस्या । अन्न को पचाने (खाने) वाली, कामनाओ को दुहने वाली, तुममे तू राट है, बृहती है, श्री है, इन्द्रपत्नी है, धर्मपत्नी है । ओज है, सह है, बल है, भ्राज है । देवो का धाम है, अमृत है । अमर्त्य (नाशरहित) है । तप से उत्पन्न हुई है ।]

इससे स्पष्ट है कि उस समय सवत्सर, मास आदि अच्छी की प्रथा तरह चालू थी। नक्षत्रो का भी वेध हुआ करता था।

★ एक ही सूर्य

लोग यह भी जानते थे कि सूर्य से ऋतुएँ होती हैं। ऋक् सहिता मे यह है

पूर्वामनु प्रदिश पार्थिवानामृतून् प्रशासद्विदधावनुष्ठु ।। ऋ. स १ ९५ ३

[अर्थ—(सूर्य ने) पृथ्वी के प्राणियो के लिए ऋतुओ का विभाग करके अच्छे प्रकार से पूर्व दिशा को बनाया।]

ऋक् सहिता की निम्न ऋचा से स्पष्ट है कि उस समय यह ज्ञात था कि विश्व मे एक ही सूर्य है, पता नही कैसे पीछे जैनियो का यह मत हो गया कि दो सूर्य हैं

एक एवाग्निर्बहुधा समिद्ध एक सूर्यो विश्वमनु प्रभूत ।।

एकैवोषा सर्वमिद विभाति ।।— ऋ स ८ ५८ २.

[अर्थ—एक ही अग्नि अनेक प्रकार से प्रदीप्त होती है। एक ही सूर्य विश्व भर मे प्रभाव डालता है। एक ही उषा इस समस्त (जगत्) को प्रकाशित करती है।]

फिर एक ही सूर्य के उदय-अस्त से दिन रात होने का भी उल्लेख है

आप्रा रजासि दिव्यानि पार्थिवा श्लोक देव कृणुते स्वाय धर्मणे ।।

प्र बाहु अस्राक् सविता सवीमनि निवेशयन् प्रसुवन्नक्तुभिर्जगत् ।।

ऋ स ४ ५३ ३

[अर्थ—सविता (सूर्य) देव तेज द्वारा द्युलोक (आकाश) और पृथ्वी लोक को परिपूरित करते है, एव अपने कार्य को प्रशसित करते है। वे प्रति दिन जगत् का अपने-अपने कार्य मे स्थापन करते है और प्रेरित करते है। वे सृजन कार्य के लिए दोनो बाहुओ (किरणो) को फैलाते है।]

★ महीने

अधिमास के सम्बन्ध मे ऋक् सहिता की निम्न ऋचा ध्यान देने योग्य है

वेद मासो धृतव्रतो द्वादश प्रजावत ।। वेदा य उपजायते ।। ऋ स १. २५ ८

इसका अर्थ पहले दिया जा चुका है (पृष्ठ ६)।

तैत्तिरीय सहिता मे ऋतुओ और मासो के नाम बताये गये हैं

मधुश्च माधवश्च वासन्तिकावृतू शुक्रश्च शुचिश्च ग्रैष्मावृतू नभश्च नभस्यश्च वार्षिकावृतू इषश्चोर्जश्च शारदावृतू सहश्च सहस्यश्च हैमन्तिकावृतू तपश्च तपस्यश्च शैशिरावृतू ।। तै स ४ ४ ११

[अर्थ—वसन्त ऋतु के दो महीने हैं. मधु और माधव, ग्रीष्म ऋतु के दो महीने हैं, शुक्र और शुचि, वर्षा के दो महीने हैं, नभ और नभस्य, शरद् के दो

महीने हैं, इष और ऊर्ज; हेमन्त के दो महीने हैं, सह और सहस्य, शिशिर के दो महीने हैं, तपस और तपस्य ।]

वाजसनेयी संहिता मे पूर्वोक्त १२ महीनो के नामो के अतिरिक्त तेरहवे महीने की भी चर्चा है । जान पडता है कि लौद के तेरहवें महीने को तब लोग अहसस्पति कहते थे—

मधवे स्वाहा माधवाय स्वाहा शुक्राय स्वाहा शुचये स्वाहा नभसे स्वाहा नभस्याय स्वाहेषाय स्वाहोर्जाय स्वाहा सहसे स्वाहा सहस्याय स्वाहा तपसे स्वाहा तपस्याय स्वाहांहसस्पतये स्वाहा ।।

वा स २२.३१.

अर्थ—मधु के लिए स्वाहा, माधव के लिए स्वाहा, शुक्र के लिए स्वाहा, शुचि के लिए स्वाहा, नभ के लिए स्वाहा, नभस्य के लिए स्वाहा, इष के लिए स्वाहा, ऊर्ज के लिए स्वाहा, सह के लिए स्वाहा, सहस्य के लिए स्वाहा, तपस के लिए स्वाहा, तपस्य के लिए स्वाहा, अहसस्पति (पाप के पति या मलमास) के लिए स्वाहा ।

तैत्तिरीय ब्राह्मण मे भी तेरह महीनो के नाम है

अरुणोऽरुणरजा पुडरीको विश्वजिदभिजित् । आर्द्र पिन्वमानोऽन्नवान् रसवानिरावान् । सर्वौषध सभरो महस्वान् ।। तै ब्रा ३ १० १

[अर्थ—महीनो के १३ नाम ये है —

(१) अरुण, (२) अरुणरज, (३) पुडरीक, (४) विश्वजित् (५) अभिजित्, (६) आर्द्र, (७) पिन्वमान, (८) उन्नवान्, (९) रसवान्, (१०) इरावान्, (११) सर्वोषध, (१२) सभर, (१३) महस्वान् ।।]

वर्ष मे ३६० दिन होने का उल्लेख 'ऐतरेय ब्राह्मण' मे इस प्रकार से है .

त्रीणि च वै शतानि षष्टिश्च सवत्सरस्याहानि सप्त च वै शतानि विंशतिश्च सवत्सरस्याहोरात्रय ।। ऐ० ब्रा० ७. १७

[अर्थ—तीन सौ साठ दिन का वर्ष होता है, वर्ष मे सात सौ बीस दिन और रात होते हैं ।]

'तैत्तिरीय ब्राह्मण' मे भी तेरहवें मास की चर्चा है —

द्वादशारत्नी रशना कर्तव्या ३ त्रयोदशारत्नी ३ रिति ।। ऋषभो वा एष ऋतूनां ।। यत्सवत्सर ।। तस्य त्रयोदशो मासो विष्टप ।। ऋषभ एष यज्ञानां ।। यदश्वमेध ।। यथा वा ऋषभस्य विष्टप ।। एवमेतस्य विष्टपं ।।

तै. ब्रा ३ ८ ३

[अर्थ—रस्सी को १२ हाथ की करे या १३ हाथ की ? सवत्सर जो है वह ऋतुओ का ऋषभ (साँड, स्वामी) है। तेरहवाँ महीना उसका विष्टप (पूँछ) है। अश्वमेध जो है वह यज्ञो का ऋषभ है। जैसे ऋषभ का पुच्छ होता है उसी तरह यह अश्वमेध का पुच्छ है।]

'ताण्डय ब्राह्मण' मे वर्ष मे दिनो की सख्या ठीक रखने के सबध मे यह अति रोचक वाक्य है—

यथा वै दृतिराध्मात एव सवत्सरोनुत्सृष्ट ।। ता॰ ब्रा ५ १० २

[अर्थ—(यदि एक दिन न छोड दिया जायगा तो) वर्ष वैसे ही फूल जायगा जैसे चमडे की मशक।]

★ उत्तरायण और दक्षिणायन

अयन का अर्थ है चलना। ज्योतिष म वर्ष को दो बराबर भागा मे विभाजित किया जाता है, जिनमे से एक को उत्तरायण और दूसरे को दक्षिणायन कहते है। जब क्षितिज पर का सूर्योदय-बिन्दु दिनो-दिन उत्तर हटता रहता है तो उत्तरायण रहता है, अर्थात् सूर्य उत्तर जाता रहता है। इसी प्रकार सूर्योदय-बिन्दु को देखकर पता लगाया जा सकता है कि कब मे कब तक दक्षिणायन है। परन्तु कभी-कभी उत्तरायण उस काल को मानते थे जिसमे सूर्योदय-बिदु पूर्व बिदु म उत्तर रहता था और दक्षिणायन उसको जिसमे सूर्योदय पूर्व से दक्षिण हुआ करता था। इस सबध मे 'शतपथ ब्राह्मण' यह लिखता है

वसतो ग्रीष्मो वर्षा । ते देवा ऋतव । शरद्धेमत शिशिरस्ते पितरो स (सूर्य) यत्रोतगावर्तते देवेषु तर्हि भवति यत्र दक्षिणावर्तते पितृषु तर्हि भवति ।।

[अर्थ—वसत, ग्रीष्म, वर्षा य देव-ऋतुएँ है। शरद्, हेमत और शिशिर ये पितर-ऋतुएँ है। जब उत्तर की ओर सूर्य रहता है तो ऋतुएँ देवो मे गिनी जाती है। जब दक्षिण की ओर रहता है तो पितरो मे।]

इससे जान पडता है कि 'शतपथ ब्राह्मण' के अनुसार उत्तरायण तब होता था जब सूर्योदय पूर्व-बिदु से उत्तर की ओर हट कर होता था।

'तैत्तिरीय' मे केवल इतना ही है कि ६ महीने तक सूर्य उत्तर जाता रहता है और ६ महीने तक दक्षिण—

तस्मादादित्य. षण्मासो दक्षिणेनैति षडुत्तरेण ।। तै स ६ ५ ३.

[अर्थ—इसलिए आदित्य (सूर्य) छ मास दक्षिणायन रहता है और छ मास उत्तरायण।]

३

मासों के नये नाम

★ नाम बदलने का कारण

महीनो के नाम 'तैत्तिरीय संहिता' मे मधु, माधव आदि थे। इसका प्रमाण पहले दिया जा चुका है। परन्तु इसमे सन्देह नही कि महीनो के मधु, माधव आदि नामो का प्रचार धीरे-धीरे मिट गया और उनके बदले उनके नये नाम प्रचलित हो गये, जो तारो (नक्षत्रो) के नाम पर पडे थे। उदाहरणत , चैत्र (जिसे हिन्दी मे चैत कहते है) चित्रा नामक तारे पर पडा, जो रविमार्ग के समीप एक बहुत चमकीला तारा है। वस्तुत सभी नाम इसी प्रकार पडे। नाम बदलने का कारण भी स्पष्ट है। मधु नाम का मास कौन-सा है, यह कैसे कोई बता सकता था ? केवल गणना से। वह जोडता कि मधु नामक मास के बाद ग्यारह महीने और बीत गये है, इसलिए अब फिर मधु का महीना होना चाहिये। परतु यदि वह इसी तरह कई वर्षो तक लगातार प्रत्येक बारहवें महीने को मधु कहता चलता तो अवश्य ही ऋतुओ और महीनो मे कोई सम्बन्ध नही रहता, ठीक उसी प्रकार जैसे मुसलिम महीनो और ऋतुओ मे कोई सम्बन्ध नही रहता। एक मुसलिम महीने का नाम मुहर्रम है और मुहर्रम का त्योहार उसी महीने मे पडता है। सभी ने देखा होगा कि यह त्योहार कभी गरमी मे पडता है, कभी जाडे मे, और कभी बरसात मे। ऋतु के हिसाब से त्योहार पहले ही पड जाता है। इसका कारण यह है कि पहले जैसी ऋतु एक वर्ष मे, अर्थात् लगभग ३६५¼ दिन मे आती है, परतु बारह चान्द्र मास लगभग ३५४ दिनो मे ही पूरे हो जाते है। यदि वर्ष मे सदा बारह ही चान्द्र मास रखे जायें तो वर्ष का अंत पुरानी ऋतु आने के लगभग ११ दिन पहले ही हो जायगा, जैसा मुसलिम वर्षों मे होता है।

परतु हमारे प्राचीन ऋषियो ने इस बात को स्वीकार नही किया कि महीनो और ऋतुओ मे सबध न रहे। उन्होने समुचित उपाय ढूँढ ही निकाला। उन्होने देखा कि पूर्णिमा के समय तारो के बीच चद्रमा की स्थिति और ऋतु मे प्रत्यक्ष सबध है। इसलिए उन्होने तारो के हिसाब से महीना बताना आरभ किया और कुछ काल बीतने पर महीनो के नाम भी तारो के अनुसार पड गये। तैत्तिरीय सहिता के निम्न वाक्य से स्पष्ट है कि उस समय मास-निर्धारण के लिए तारो का वेध (अर्थात् देखना) आरम्भ हो गया था—

न पूर्वयो फल्गुन्योरग्निमादधीत ।। एषा वै जघन्या रात्रि सवत्सरस्य ।। यत् पूर्वे फल्गुनी ।। पुष्टित एव सवत्सरस्याग्निमाधाय ।। पापीयान् भवति ।। उत्तरयोरादधीत ।। एषा वै प्रथमा रात्रि सवत्सरस्य ।। यदुत्तरे फल्गुनी ।। मुखत एव सवत्सरस्याग्निमाधाय ।। वरीयान् भवति ।।

—तै ब्रा १ १ २ ८

[अर्थ—पूर्वफल्गुनियो मे अग्नि की स्थापना न करे। यह वस्तुत सवत्सर की जघन्य (बुरी) रात है, जिसको पूर्वफल्गुनी कहते है। सवत्सर की पीठ की ओर अग्नि की स्थापना करने से पापी होता है। उत्तरा फल्गुनी मे अग्नि की स्थापना करे। यह सवत्सर की पहली (मुख्य) रात्रि है जिसे उत्तराफल्गुनी कहते है। जो सवत्सर के मुख की ओर अग्नि की स्थापना करता है वह श्रेष्ठ होता है।]

इसमे पूर्णिमा शब्द नही आया है, परन्तु निस्सन्देह अर्थ यही है कि जब उत्तरा फाल्गुनी तारे के पास पूर्ण चन्द्र रहे तो समझना चाहिये कि वर्ष का आरम्भ हुआ और तब (यज्ञ के लिए) अग्नि जलानी चाहिये। अन्यथा, प्रत्येक मास मे चन्द्रमा कभी-न-कभी तो उत्तरा फाल्गुनी के पास पहुँचता ही है।

★ नामकरण के नियम

आरम्भ मे नक्षत्र केवल चमकीले तारे या सुगमता से पहचाने जाने वाले छोटे तारका-पुज थे। परन्तु आकाश मे बराबर-बराबर दूरी पर तारे या तारका-पुजो के न रहने से असुविधा होती रही होगी। पीछे तो चन्द्रमार्ग (वस्तुत रविमार्ग) को ठीक बराबर २७ खण्डो मे विभाजित किया गया और प्रत्येक को एक 'नक्षत्र' कहा गया, जिससे नक्षत्र का पुराना अर्थ ही बदल गया। ऊपर दिये गये तैत्तिरीय ब्राह्मण के उद्धरण से यह स्पष्ट नही होता कि उस समय पूर्वा फाल्गुनी, उत्तरा फाल्गुनी आदि से तारे समझे जाते थे या रविमार्ग के सत्ताइसवे भाग। चाहे कुछ भी अभिप्राय रहा हो, इतना स्पष्ट है कि यज्ञादि धार्मिक कर्मों के लिए मधु, माधव आदि मे से कोई एक नाम बताने के बदले ग्रन्थकार ने

पूर्वा फाल्गुनी आदि का प्रयोग उपयुक्त समझा। यहाँ हम उस प्रथा को देख रहे हैं जिससे पीछे मासो के नवीन नामो का जन्म हुआ। यह कदापि न समझना चाहिये कि तैत्तिरीय संहिता या ब्राह्मण के समय मे मासो के नाम फाल्गुन, चैत्र आदि पड़ गये थे। इन ग्रन्थो मे, और समकालीन अन्य ग्रन्थो मे फाल्गुन, चैत्र आदि शब्द कही आये ही नही हैं। ये नाम तो बहुत काल पीछे के साहित्य मे आते है। तब महीनो के नामकरण के लिए निम्न नियम चल गया था—

पुष्ययुक्ता पौर्णमासी पौषी मासे तु यत्र सा
नाम्ना स पौषो माघाद्यास्चैवमेकादशापरे॥—अमरकोष, काल० १४

[अर्थ—उस मास को जिसमे पूर्णिमा पुष्य नक्षत्र मे होती है पौष नाम दिया जाता है (और किसी मास को नही), इसी प्रकार शेष ग्यारह महीनो के, अर्थात् माघ इत्यादि के, नाम भी पडते है।]

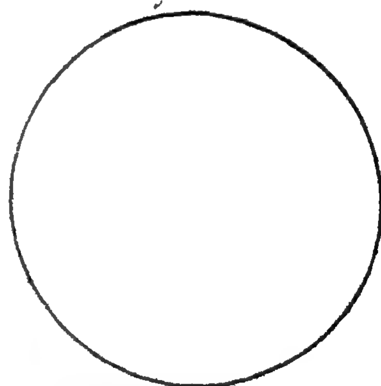
सूर्य-सिद्धान्त मे निम्न नियम है—

नक्षत्रनाम्ना मासास्तु ज्ञेयाः पर्वान्तयोगतः।

[अर्थ— पूर्णिमा के अंत मे चन्द्रमा जिस नक्षत्र मे रहता है उसी के नाम पर मासो के नाम पडे है।]

★ चन्द्रमा की जटिल गति

यह भी देख लेना उचित होगा कि प्राचीन ऋषियो को चद्रमा की जटिल गति के कारण क्या-क्या कठिनाइयाँ पडी होगी। पहली कठिनाई तो यह पडी होगी कि पूर्णिमा के अवसर पर मद तारे सभी छिप जाते है। इसलिए पता नही चलता रहा होगा कि तारो के बीच चद्रमा कहाँ है। यह अवश्य सत्य है कि चमकीले तारे पूर्णिमा पर भी दिखाई पडते रहते हैं। उन्ही से अनुमान करना पडता रहा होगा कि पूर्णिमा के अवसर पर चन्द्रमा तारो के सापेक्ष कहाँ पर है।



चतुर्दशी का चन्द्रमा
चतुर्दशी का चद्रमा वृत्ताकार ही जान पडता है, यह चित्र पैमाने के अनुसार सावधानी से खीचा गया है।

दूसरी कठिनाई इससे हुई होगी कि ठीक पता नही चलता कि पूर्णिमा कब हुई। पूर्णिमा के

२४ घंटे पूर्व या २४ घंटे पश्चात् भी चद्रमा का आकार, जैसा गत पृष्ठ के चित्र मे दिखाया गया है, गोल (वृत्ताकार) ही जान पडता है।

परतु एक दिन मे चद्रमा आकाश मे लगभग १३ (अर्थात् अपने व्यास का लगभग २६ गुना) चल लेता है। इसलिए ठीक पता नही लगता कि किस तारे के पास रहने पर पूर्णिमा हुई। कोई विशेष पूर्णिमा पूर्वा फाल्गुनी के पास हुई या उत्तरा फाल्गुनी के पास इसे ठीक-ठीक निर्णय कर सकने की शक्ति निस्सदेह सैकडो वर्षों मे आयी होगी।

फिर, इससे भी कठिनाई पडी होगी कि १२ चाद्र मास बीतने पर जब फिर पूर्णिमा होती है तो चद्रमा अपने पुराने स्थान पर नही रहता। कारण यह है कि ३६५ दिन के वर्ष मे और २९ दिन के चाद्र मास मे सरल सबध नही है एक वर्ष मे पूरे-पूरे महीने नही है। इसलिए यदि गत वर्ष चैत मे पूर्णिमा तब हुई थी जब चद्रमा चित्रा नामक तारे के बहुत निकट था तो इस वर्ष चित्रा तक पहुँचने मे लगभग ११ अश पहले ही (अर्थात् चद्रमा के व्यास के लगभग बाईस गुनी दूरी रहने पर) पूर्णिमा होगी। इसी प्रकार प्रति वर्ष पूर्णिमा के क्षण पर चद्रमा का स्थान ११ अश पिछडता चला जाता है और तब जब बीच मे कभी एक अधिमास लग जाता है, यह स्थान एकाएक लगभग ३० अश आगे बढ जाता है (चित्र देखे)। स्थिति वैसी ही है जैसे आप की घडी प्रति दिन ११ मिनट सुस्त जाती हो और जब



चैत्र मे पूर्णिमा

विविध वर्षों के एक ही मास मे भी पूर्णिमा पर चद्रमा एक स्थिति मे नही रहता है। यहाँ तीन वर्षों मे चित्रा नामक तारा के पास होने वाली पूर्णिमाओ पर चद्रमा की स्थितियाँ दिखायी गयी है।

आप उसे मिलायें तो एकदम तीस मिनट तेज कर दे। घड़ी के सुस्त जाने का पता तो एक-आध दिन में ही लग जाता है, परतु चद्रमा की स्थिति मे अतर जानने के लिए वर्ष भर तक ठहरना पडता है और स्मरण रखना पडता है कि पिछले वर्ष पूर्णिमा पर चद्रमा कहाँ था, ऊपर से कठिनाई यह भी रहती है कि ठीक पता नही चलता कि पूर्णिमा इस क्षण हुई, या कई घटे पहले हुई जब दिन था और तारे दिखाई न पडते थे, या कई घटे पीछे होगी, जब सूर्योदय हो जायगा और तारे दिखाई न पडेगे।

★ चन्द्रमार्ग स्थिर नही है

केवल पूर्वोक्त ही कठिनाई होती तो भी कुशल होता। परतु एक दूसरे प्रकार की कठिनाई भी पडी होगी। वह इस कारण कि चद्रमार्ग आकाश मे स्थिर नही रहता। यदि चद्रमा का मार्ग स्थिर भी होता तो, जैसा हम ऊपर देख चुके है, कठिनाई से पता चलता कि चद्रमा के किस स्थान पर पहुँचने पर पूर्णिमा हुई, परतु जब मार्ग ही बदला करता है तो अवश्य ही कठिनाई बहुत बढ जाती है। इस बात को अधिक अच्छी तरह समझने के लिए विचार करे कि यदि चद्रमार्ग अचल होता और मघा नामक तारा उसके पास इस प्रकार स्थित होता कि चद्रमा उसे प्राय छूता हुआ जाता तो अवश्य ही चद्रमा उसे छूता हुआ प्रति मास जाता और प्रति वर्ष एक मास ऐसा आता जब उस तारे के आस-पास ही कही चद्रमा के रहने पर पूर्णिमा होती। उस तारे तक पहुँचने मे अधिक मे अधिक चौदह-पद्रह अश पूर्णिमा पर बचे रहते या इतना ही अधिक तय हो गया रहता। परन्तु चद्रमा का मार्ग स्थिर नही है। इसलिए यदि चद्रमा इस वर्ष किसी तारे को छूता हुआ निकलता है तो सभव है आगामी वर्ष वह उस तारे को छू न पाये और उसकी बगल से निकल जाय। तब एक वर्ष और बीतने पर चद्रमा उस तारे से अधिक दूरी मे होता हुआ निकल जायगा, इत्यादि, ९ वर्ष बाद वह उस तारे से लगभग १० अश (अर्थात् चद्र-व्यास की बीस गुनी दूरी) पर से निकल जायगा, तब दूरी कम होने लगेगी और लगभग १८½ वर्ष बाद चद्रमा फिर उस तारे को छूता हुआ चलेगा, और पुराना कार्यक्रम फिर दोहराया जायगा। ऊपर के चित्र मे ३ वर्षों के लिए चद्रमार्ग दिखाया गया है जिससे पूर्वोक्त बातें अधिक स्पष्ट हो जायँगी।

चद्रमार्ग ठीक-ठीक किस प्रकार हटता-बढता है इसे समझने के लिए चद्रमार्ग और रविमार्ग मे अतर समझ लेना अच्छा होगा। तारो के बीच सूर्य भी चलता है और चद्रमा भी। परतु सूर्य का मार्ग निर्धारित करना कठिन है, क्योंकि सूर्य के उदित होने पर तारे अदृश्य हो जाते हैं। सूर्य का मार्ग इसे देखकर-निर्धारित किया

गया होगा कि सूर्योदय के पहले चमकीले तारे कहाँ रहते हैं। रविमार्ग तारो के हिसाब से अचर है, प्रतिवर्ष विशेष तारों से उतना ही दायें या बायें हट कर रविमार्ग रहता है। बरसो तक देखते रहने पर कुशाग्र-बुद्धि ऋषियो मे से कुछ को रविमार्ग का ठीक पता (या प्राय ठीक पता) लग ही गया होगा।

चद्रमा के एक मास के मार्ग को निर्धारित करना अपेक्षाकृत बहुत सरल है। कोई भी दो चार महीने तक चद्रमा को प्रति रात्रि देखता रहे तो उसे चद्र-मार्ग का अनुमान हो सकता है। यदि तारो का चित्र बना लिया जाय और उसमे चद्रमा की स्थितियो को प्रति रात्रि अकित किया जाय तो और भी शीघ्र पता चल जायगा कि चद्रमार्ग क्या है। चद्रमा तारो के सापेक्ष एक चक्कर लगभग २७$\frac{1}{3}$ दिन मे लगाता है। यही कारण है कि एक चक्कर को सत्ताईस (या कभी-कभी अट्ठाईस) भागो मे बाँटा गया, जिनमे से प्रत्येक एक नक्षत्र कहलाया।

आकाश को हम गोले से निरूपित कर सकते हैं जिसे खगोल कहते हैं। इसका चित्र बगल मे दिखाया गया है। आकाश को देखने वाला इस गोले के केन्द्र पर रहता है, परतु चित्र म हम खगोल को बाहर से देख रहे है। रविमार्ग इस गोले को दो बराबर भागो मे बाँटता है। चद्रमार्ग भी खगोल को दो बराबर भागो मे बाँटता है, परतु चद्रमार्ग रवि-मार्ग को ५° के कोण पर काटता है।[1] इसका परिणाम यह होता है कि चद्रमार्ग का आधा भाग रविमार्ग के उत्तर रहता है, आधा दक्षिण। इसलिए प्रत्येक मास चद्रमा आधे समय तक रविमार्ग के उत्तर रहता है, आधे समय तक दक्षिण।

खगोल

रविमार्ग विषुवत को लगभग २३$\frac{1}{2}$ अश के कोण पर काटता है।

१. चित्र मे स्पष्टता के लिए इसे नहीं दिखाया गया है।

खगोल पर बने चित्र में चद्रमार्ग रविमार्ग को दो बिन्दुओ मे काटता है। इनमे से प्रत्येक को 'पात' कहते हैं। यदि इन्हे पृथक्-पृथक् बताना हो तो एक को आरोही पात और दूसरे को अवरोही पात कहा जा सकता है।[1]

अब हम बता सकते हैं कि चद्रमार्ग किस प्रकार अपनी स्थिति बदलता रहता है। रविमार्ग और चद्रमार्ग के बीच का कोण नही बदलता, और न रविमार्ग चलता है, केवल दोनो पात पीछे मुँह धीरे-धीरे बराबर चलते रहते हैं और प्रत्येक पात एक चक्कर लगभग १८⅔ वर्ष मे लगाता है। इससे सारा चद्रमार्ग अपना स्थान बदलता रहता है।

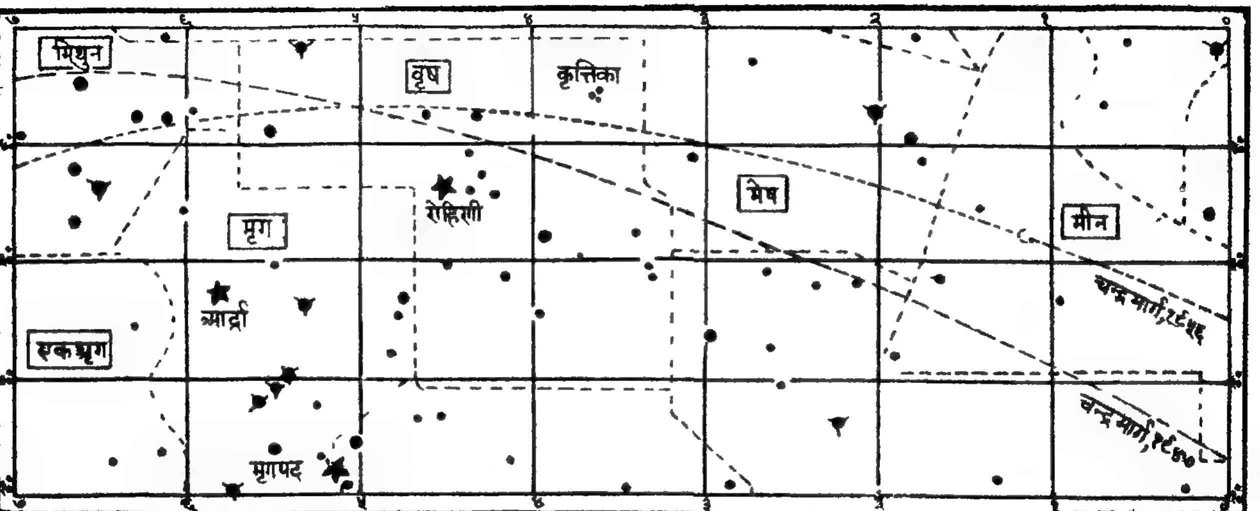
इसका एक परिणाम यह होता है कि यदि आज चद्रमार्ग का उत्तरतम भाग किसी तारे के पास है तो आज से ९ वर्ष बाद, जब आरोही पात आधा चक्कर लगाकर उलटी ओर पहुँच जायगा, चद्रमा उस तारे के निकटतम तब पहुँचेगा जब वह उससे लगभग १०° (दस अश) पर रहेगा (इस पन्ने की पीठ पर चित्र देखें)।

एक ही तारे के कभी समीप रहने और कभी दूर रहने से तारो को देखकर महीनो के बनाने मे कठिनाई पडती रहती होगी। परतु पर्याप्त काल बीतने पर सब बाते स्पष्ट हो गयी होगी।

सभवत एक कठिनाई और पडी होगी। चद्रमा अपेक्षाकृत हमारे बहुत निकट है, तारे बहुत दूर हे। इससे कभी-कभी ऐसा होता है कि कोई-कोई तारा चद्रमा की आड मे पड जाता है और तब छिप जाता है। बात वैसी ही है कि किसी दूरस्थ मदिर का किसी निकटस्थ पेड के पीछे छिपना। एक स्थान से मदिर पेड के ठीक पीछे पड सकता है, दूसरे स्थान से वह पेड की बगल मे दिखाई पड सकता है। इसी प्रकार दस-बीस मील के ही अतर पर ऐसा हो सकता है कि एक स्थान से कोई तारा चद्रमा के पीछे छिप जाय और दूसरे स्थान से वह छिप न पाये। इन सब बातो से चद्रमा के विषय मे पर्याप्त कठिनाई हमारे प्राचीन नक्षत्र-दर्शी को पडी होगी।

इन सब कठिनाइयो को देखते हुए यह स्पष्ट हो जाता है कि पूर्वा फाल्गुनी, उत्तरा फाल्गुनी आदि से वर्ष का अत और आरभ बताना सैकडो वर्षों मे आया होगा। तैत्तिरीय ब्राह्मण-काल के बहुत पहले चद्रमा का नियमित रूप से वेध आरम्भ हो गया होगा।

१ इसके विशेष नाम भी है (राहु और केतु), परंतु उनसे पाठकों को कुछ भ्रम हो सकता है। इसलिए उनका प्रयोग यहाँ नहीं किया जायगा।



चन्द्रमार्ग, १९४७ और १९५६ मे

देखे कि ९ वर्ष मे चन्द्रमार्ग की स्थिति बहुत बदल जाती है। १९५६ के चन्द्रमार्ग पर चन्द्रमा बिन्दुमय वृत्त से पैमाने के अनुसार दिखाया गया है, जिससे इसका अच्छा अनुमान किया जा सकता है कि चन्द्रमार्ग कितना हटता है। चन्द्रमार्ग की स्थितियो मे ९¼ वर्ष मे महत्तम अन्तर पडता है। १८½ वर्ष मे चन्द्रमार्ग अपनी पुरानी स्थिति पर पहुँच जाता है।

* अमान्त या पूर्णिमान्त ?

महीने का आरभ अमावस्या से होता था या पूर्णिमा से ? यदि महीने का अत अमावस्या से हो तो उसे अमात मास कहते है, पूर्णिमा से हो तो उसे पूर्णिमात कहते हैं। पूर्णिमात मासो मे यह विशेषता है कि इधर चद्रमा पूर्ण हुआ तो उधर मास भी। अमात मास का आरभ तब होता है जब सूर्य और चद्रमा के भोगाशो (मोटे हिसाब से दिशाओ) का अतर शून्य होता है, और शून्य अतर से मास आरभ करना अधिक स्वाभाविक जान पडता है। सारे ज्योतिष मे अमात मासो की गणना होती है। अधिमास (लौद का महीना) भी अमावस्या से आरभ होता है और उसका अत आगामी अमावस्या पर होता है। परतु उत्तर प्रदेश मे, और कई अन्य प्रदेशो मे भी, पूर्णिमात मास ही चलते है।

प्राचीन साहित्य मे भी पूर्णिमात प्रथा का वर्णन मिलता है। पूर्णमासी या पौर्णमासी शब्द से ही स्पष्ट है कि मास के पूर्ण होने का यह दिन था।

तैत्तिरीय सहिता कहती है—

बर्हिषा पूर्णमासे व्रतमुपैति वत्सैरमावास्यायाम् ॥

[अर्थ—पूर्णमासी के व्रत को बर्हि (कुशो) से ग्रहण करना चाहिये और अमावस्या के व्रत को वत्सो (बछडो) से।]

इससे स्पष्ट है कि मास पूर्णिमा पर पूर्ण होता था।

परतु 'तैत्तिरीय सहिता' के एक अन्य (७ ५ ६ १५) स्थान पर पूर्णिमात और अमात दोनो पद्धतियो का आभास मिलता है—

अमावास्यया मासान्सपाद्याहरुत्सृजति अमावास्यया हि मासान् सपश्यति
पौर्णमास्या मासान्सपाद्याहरुत्सृजति पौर्णमास्या हि मासान्सपश्यति ॥

[अर्थ–अमावस्या से मासो को समाप्त करके एक दिन को कुछ लोग छोड[1] देते है, क्योकि वे अमावस्या से ही मासो को देखते है। (कुछ लोग) पूर्णमासी से मासो को समाप्त कर एक दिन छोड देते है क्योकि वे पूर्णमासी से मासो को देखते है।]

एक आगामी अध्याय मे प्रमाण दिया जायगा कि सभवत 'तैत्तिरीय सहिता' ३००० ई० पू० के पहले का सगृहीत ग्रन्थ है। ब्राह्मण इस दिनाक के बाद के ग्रथ है। न तैत्तिरीय सहिता मे और न किसी ब्राह्मण मे चैत, वैशाख आदि नाम है। ये नाम वेदाग ज्योतिष मे हैं जो सभवत १२०० ई० पू० का ग्रथ है। इससे अनुमान किया जा सकता है कि महीनो के नाम मे परिवर्तन लगभग २०५० ई०पू० मे हुआ।

१ अर्थात् उस दिन कोई अनुष्ठान नहीं करते।

४

वैदिक काल में दिन, नक्षत्र आदि

अति प्राचीन समय मे सप्ताह का कुछ महत्त्व नही था, और न रविवार, सोमवार आदि नाम ही प्रचलित थे। ये नाम तो ग्रहो के आधार पर पड़े है और वेद, ब्राह्मण, संहिता आदि मे इन नामो का कही उल्लेख नही है। उस काल मे पक्ष और उसके उप विभाग चलते थे। पक्ष महीने मे दो होते थे। इनका उल्लेख कई स्थानो मे मिलता है। 'तैत्तिरीय ब्राह्मण' मे पक्ष के उपविभागो के नाम इस प्रकार है—

सज्ञान विज्ञान दर्शा दृष्टेति ॥ एतावनुवाकौ पूर्वपक्षस्याहोरात्राणा नामधेयानि ॥ प्रस्तुत विष्टुत सुतासुन्वताविति ॥ एतावनुवाकावपरपक्षस्याहोरात्राणां नामधेयानि ॥ ३ १० १० २

[अर्थ—सज्ञान, विज्ञान, दर्शा, दृष्टा ये दो-दो करके पूर्व पक्ष के अहोरात्र (दिनरात) के नाम है। प्रस्तुत विष्टुत, सुत असुन्वत ये दो-दो करके अपर पक्ष के अहोरात्र के नाम है।]

अन्य स्थानो मे कुछ भिन्न नाम है, परतु सब सूचियो को यहाँ देना आवश्यक नही जान पडता।

★ वैदिक काल मे तिथि

वैदिक काल के साहित्य मे तिथि शब्द उस अर्थ मे कही नही आया है जिसमे इसे हम आज लेते हैं। 'ऐतरेय ब्राह्मण' मे तिथि की परिभाषा यो दी गयी है—

या पर्यस्तमियादभ्युदियादिति सातिथि ॥ ३२ १०

[अर्थ—जहाँ चद्रमा अस्त होता और उदित होता है, वह तिथि है।]

इससे स्पष्ट है कि उस काल मे तिथि का कुछ और ही अर्थ था। पीछे तिथि का अर्थ वह समय हो गया जितने मे चद्रमा सूर्य के सापेक्ष १२° चलता है और इसी

अर्थ मे यह शब्द आज भी प्रयुक्त होता है। सामविधान ब्राह्मण मे कृष्ण चतुर्दशी, कृष्ण पचमी, शुक्ल चतुर्दशी आदि 'शब्द' आये है।[1] बहुत सभव है कि पचमी आदि से यही बताया जाता रहा होगा कि यह महीने का पाँचवाँ आदि दिन है। पाठक जानते होगे कि तिथियो मे यह विशेषता है कि बीच-बीच मे एक तिथि छोड दी जाती है। वैदिक काल मे ऐसा न होता रहा होगा। क्षय तिथि की चर्चा कही भी वैदिक साहित्य मे नही है। पचदश का भी कही-कही उल्लेख है। उदाहरणार्थ, तैत्तिरीय ब्राह्मण १ ५ १० मे यह है—

चद्रमा वै पचदश ।। एष हि पचदश्यामपक्षीयते ।। पचदश्यामापूर्यते ।।

[अर्थ—चद्रमा का नाम पचदश है, यह पन्द्रहदि न मे क्षीण होता है। और पद्रह दिन मे पूरा होता है।]

परन्तु इन सब उद्धरणो से भी यह नही सिद्ध होता कि ब्राह्मणो के समय मे तिथियो का उपयोग होता था। शकर बालकृष्ण दीक्षित का मत है[2] कि पहले प्रतिपदा, द्वितीया इत्यादि शब्द पहली, दूसरी इत्यादि रातो के लिए प्रयुक्त होते रह होगे। पीछे उनका अर्थ बदल गया होगा और उनका अर्थ वह हो गया होगा जो अब ज्योतिष मे दिया जाता है।

★ चन्द्रमा क्यो चमकता है ?

'तैत्तिरीय सहिता' के समय मे भी लोग जानते थे कि चद्रमा सूर्यके प्रकाश से चमकता है, क्योकि उसे सूर्य-रश्मि कहा गया है, जिसका अर्थ है वह पिंड जिस पर सूर्य की रश्मियाँ पडती हो—

सूर्य रश्मिश्चद्रमा गधर्व ।।—तै स ३ ४ ७ १

[अर्थ—चद्रमा या गधर्व (चद्रमा) को सूर्यरश्मि कहते हैं।]

'ऐतरेय ब्राह्मण' मे अमावस्या का भी कारण बताया गया है। लिखा है—

चद्रमा वा अमावास्यामादित्यमनुप्रविशति आदित्याद्वै चद्रमा जायते।

[अर्थ—चद्रमा अमावस्या पर आदित्य मे प्रवेश करता है । आदित्य से ही चन्द्रमा उत्पन्न होता है।]

★ दिन के विभाग

दिन को कभी दो भागो मे बाँट कर उन्हे पूर्वाह्न और अपराह्न कहते थे और कभी तीन भागो मे बाँट कर उन्हे पूर्वाह्न, मध्याह्न और अपराह्न कहते थे। दिन को चार भागो मे विभाजित करने की प्रथा भी थी और तब प्रत्येक को एक प्रहर

१. सा० वि० ब्रा०, २।६, २।८, ३।३, २. भारतीय ज्योतिषशास्त्र, पृष्ठ ४४।

कहते थे (जिसे अब हिन्दी मे पहर कहते हैं)। इनके नाम तब पूर्वाह्ण, मध्याह्न, अपराह्ण और सायाह्न थे। दिन को १५ भागो मे बाँट कर प्रत्येक को एक मुहूर्त भी कहते थे। ये सब शब्द वैदिक काल से ही चले आ रहे हैं। परतु अब कुछ अर्थ बदल गया है। अब तो फलित ज्योतिष के आधार पर कुछ मुहूर्तों को शुभ और शेष को अशुभ मानते हैं, और साधारणत मुहूर्त मे शुभ मुहूर्त समझा जाता है। सिनेमा-पत्रिकाओ मे बहुधा नवीन फिल्मो के "मुहूर्त" की सूचना रहती है और जान पडता है कि मुहूर्त का अर्थ सिनेमा-निर्देशको मे वह जलसा हो गया है जो नवीन फिल्म के आरभ के सबध मे किया जाता है।

★ नक्षत्र

आरभ मे नक्षत्र शब्द सभी तारो के लिए प्रयुक्त होता था। उदाहरणत ऋक् सहिता मे यह है—

अपत्ये तायवो यथा नक्षत्रा यत्यक्तुभि ॥ सूराय विश्वचक्षसे ॥

—ऋ स १ ५० २, अथ स १३ २ १७, २० ४७ १४

[अर्थ—सर्वशक्तिमान् सूर्य के आगमन से नक्षत्र (तारे) और रात चोर की तरह भागते हैं।]

परतु धीरे-धीरे अवश्य ही नक्षत्र शब्द उन तारो के लिए विशेष रूप से प्रयुक्त होने लगा होगा जो चद्रमार्ग मे पडते है। सभवत निम्न अवतरण मे नक्षत्र से उन तारो को समझना चाहिये जो चद्रमार्ग मे है—

अथो नक्षत्राणामेषामुपस्थे सोम आहित ॥

ऋ स १० ८५ २, अथ स १४ १ २

[अर्थ—चद्रमा तारो के बीच रहता है।]

तैत्तिरीय सहिता के निम्न अनुवाक मे सब नक्षत्रो के नाम गिनाये गये है। अवश्य ही यहाँ नक्षत्र शब्द से उन तारका पुजो को समझना चाहिये जो चद्रमार्ग मे पडते है—

कृत्तिका नक्षत्रमग्निर्देवताग्नेरुचस्थ प्रजापतेर्धातु सोमस्यर्चे त्वारुचे त्वा शुभे त्वा भासे त्वा ज्योतिषे त्वा रोहिणी नक्षत्र प्रजापतिर्देवता मृगशीर्ष नक्षत्र सोमो देवतार्द्रानक्षत्र रुद्रो देवता पुनर्वसूनक्षत्रमदितिर्देवता तिष्यो नक्षत्रं बृहस्पतिर्देवता श्रेषा नक्षत्र सर्पा देवता मघा नक्षत्र पितरो देवता फल्गुनी नक्षत्र भगो देवता फल्गुनी नक्षत्रमर्यमा देवता हस्तो नक्षत्र सविता देवता चित्रा नक्षत्रमिद्रो देवता स्वाती नक्षत्र वायुर्देवता विशाखे नक्षत्र-मिद्राग्नी देवतानूराधा नक्षत्र मित्रो देवता ज्येष्ठा नक्षत्रमिद्रो देवता

विचृतौ नक्षत्र पितरो देवताषाढानक्षत्रमापो देवताषाढा नक्षत्र विश्वेदेवा देवता श्रोणा नक्षत्र विष्णुर्देवता श्रविष्ठा नक्षत्र वसवो देवता शत-भिषङ्नक्षत्रमिन्द्रो देवता प्रोष्ठपदा नक्षत्रमजएकपाद्देवता प्रोष्ठपदा नक्षत्रमहिर्बुध्नियो देवता रेवती नक्षत्र पूषा देवताऽश्वयुजौ नक्षत्रमश्विनौ देवताभरणीनक्षत्र यमो देवता ॥ —तै० स० ४ ४ १०

[(तू है) (१)कृत्तिका नक्षत्र, अग्नि देवता। तू अग्नि की चमक है, प्रजापति की, विधाता की, सोम की। त्वारुचे (तुझको प्रकाश के लिए), त्वाद्युते (तुझको द्युति के लिए), त्वा भासे (तुझको कांति के लिए), त्वा ज्योतिषे (तुझको ज्योतिष के लिए)। (तू है) (२) रोहिणी नक्षत्र, प्रजापति देवता। (३) मृगशीर्ष नक्षत्र, सोम देवता। (४) आर्द्रा नक्षत्र, रुद्र देवता। (५) दोनो पुनर्वसु नक्षत्र, अदिति देवता। (६) तिष्य नक्षत्र, बृहस्पति देवता। (७) आश्लेषा नक्षत्र, सर्प देवता। (८) मघा नक्षत्र, पितर देवता। (९) पूर्वा फल्गुनी नक्षत्र, भग देवता। (१०) उत्तरा फल्गुनी नक्षत्र, अर्यमा देवता। (११) हस्त नक्षत्र, सविता देवता। (१२) चित्रा नक्षत्र, इन्द्र देवता। (१३) स्वाती नक्षत्र, वायु देवता। (१४) दो विशाखाओ का नक्षत्र, इन्द्राग्नी देवता। (१५) अनुराधा नक्षत्र, मित्र देवता। (१६) ज्येष्ठा नक्षत्र, इन्द्र देवता। (१७) दो विचृत्तो का नक्षत्र, पितर देवता। (१८) अषाढा नक्षत्र, आप देवता। (१९) आषाढा नक्षत्र, विश्वेदेवा देवता। (२०) श्रोणा नक्षत्र, विष्णु देवता। (२१) श्रविष्ठा नक्षत्र, वसु देवता। (२२) शतभिषक् नक्षत्र, इन्द्र देवता। (२३) प्रोष्ठपदा नक्षत्र, अजएकपात् देवता। (२४) प्रोष्ठपदा नक्षत्र, अहिर्बुध्नि देवता। (२५) रेवती नक्षत्र, पूषा देवता। (२६) अश्वयुज नक्षत्र, अश्विन् देवता। (२७) अपभरणी नक्षत्र, यम देवता।]

★ तारा-समूह

निम्न उद्धरण से नक्षत्र का अर्थ तारा-समूह होना अधिक निश्चित हो जाता है

चित्राणि साकं दिवि रोचनानि सरीसृपाणि भुवने जवानि ।
अष्टाविंश सुमतिमिच्छमानो अहानि गीर्भि सपर्यामि नाकम् ॥ १ ॥
सुहवमग्ने कृत्तिका रोहिणी चास्तु भद्र मृगशिर शमार्द्रा ।
पुनर्वसू सूनृता चारु पुष्यो भानुराश्लेषा अयन मघा मे ॥२॥
पुण्य पूर्वा फल्गुन्यौ चात्र हस्तश्चित्रा शिवा स्वाति सुखो मे अस्तु ।
राधे विशाखे सुहवानुराधा ज्येष्ठा सुनक्षत्रमरिष्ट मूलम् ॥३॥
अन्न पूर्वा रासता मे अषाढा ऊर्ज ये हृ्त्तर आ वहन्तु ।

अभिजिन्मे रासता पुण्यमेव श्रवण श्रविष्ठाः कुर्वतां सुपुष्टिम् ।।४।।
आ मे महच्छतभिषग्वरीय आ मे द्वया प्रोष्ठपदा सुशर्म ।
आ रेवती चाश्वयुजौ भग म आ मे रयिं भरण्य आ वहन्तु ।।५।।

—अथर्वस १९ ७

[भावार्थ—मै अपने कल्याण के लिए वाणी से आकाश की पूजा करता हूँ जहाँ अट्ठाईस सुमति (तारापुज ?) सर्प के रूप मे चमकते हैं ।।१।।[1]

कृत्तिका और रोहिणी मेरे निमत्रण को सुगमता से स्वीकार करे। मृगशिर और आर्द्रा कल्याणकारी हो। पवित्र पुनर्वसु, पुष्य ज्योतिर्मय आश्लेषा, मघा मेरे लिए अच्छे मार्ग को दिखाये ।।२।।

दोनो पूर्व फल्गुनियाँ, हस्त नक्षत्र, चित्रा, स्वाति मेरे लिए सुखकारी हो। पूजा रूप विशाखा, अनुराधा, ज्येष्ठा और अच्छा नक्षत्र मूल मेरे लिए कल्याणप्रद हो ।।३।।

पहली अषाढा नक्षत्र मुझे अन्न दे। उत्तर अषाढा मुझे तेज दे। शुभ अभि-जित् मुझे पुण्यशील बनाये। श्रवण और श्रविष्ठ मुझे शक्ति दे ।।४।।

बडे शतभिषक् मुझे स्वतत्रता दे। दोनो प्रोष्ठपद कल्याण करे। रेवती और अश्वयुज मुझे भाग्यशाली करे और भरणी नक्षत्र मुझे धन दे ।।५।।]

ऋक् सहिता १ २४ १० मे ऋक्ष (सप्तर्षि ?) की भी चर्चा है --

अमी य ऋक्षा निहितास उच्चा नक्त ददृशे कुह चिद्दिवेयु. ।।

[अर्थ—ये जो ऋक्ष है, जो ऊपर आकाश मे स्थित है और रात मे दिखाई पडते है, वे दिन मे कहाँ चले जाते है ?]

इस पर 'शतपथ ब्राह्मण' ने यह टीका की है—

१ चद्रमा तारो के सापेक्ष एक चक्कर २७$\frac{1}{3}$ दिन मे लगाता है। २७$\frac{1}{3}$ से निकटतम पूर्ण सख्या २७ है। इसलिए चद्रमार्ग मे या उसकी अगल-बगल मे पडने वाले तारो मे से २७ तारे चुन लिये गये थे, जिनके बताने से सूचित किया जाता था कि आज आकाश मे चद्रमा किस तारे के पास है, परतु कभी-कभी अट्ठाईस तारे इस काम के लिए चुने जाते थे, जैसे यहाँ, क्योकि २८ भी २७$\frac{1}{3}$ के निकट ही है। बाद मे केवल इन्हीं तारों को लोग नक्षत्र कहते थे, यद्यपि नक्षत्र का अर्थ है कोई तारा। इसके बहुत बाद नक्षत्र का अर्थ हुआ चद्रमार्ग (अथवा रविमार्ग) का ठीक सत्ताईसवाँ भाग, और इन भागों के नाम भी कृत्तिका, रोहिणी आदि ही पड़े।

सप्तर्षीनु ह स्म वै पुरर्क्षा इत्याचक्षते ।।

[अर्थ—सप्तर्षियो को ही पहले ऋक्ष कहते थे ।]

एक बात यहाँ देखने योग्य है कि पाश्चात्य ज्योतिष मे सप्तर्षि तारामडल को अब भी उर्सा मेजर या ग्रेट बेयर (ऋक्ष = भालू)[1] कहते है ।

कुछ अन्य तारो की भी चर्चा मिलती है । परतु सब उद्धरण यहाँ देना आवश्यक नही जान पडता ।

★ ग्रहण

ग्रहणो की चर्चा भी वेदो मे है, परन्तु कही कोई ऐसी बात नही लिखी है जिससे पता चले कि वेदकालीन ऋषियो को ग्रहण के कारण का कितना पता था । परतु एक स्थान मे यह है—

य वै सूर्यं स्वर्भानुस्तमसा विध्यदासुर ।।
अत्रयस्तमन्वविदन्नह्यन्ये अशक्नुवन् ।।

[अर्थ—जिस सूर्य को असुर के पुत्र स्वर्भानु ने अधकार मे छिपा दिया था उसे अत्रि लोगो ने पा लिया । यह शक्ति दूसरो मे तो थी नही ।]

इससे यह अनुमान किया जा सकता है कि सभवत अत्रि के पुत्र ग्रहण की किसी प्रकार की गणना कर सकते रहे होगे और पहले से बता सकते रहे होगे कि सूर्य-ग्रहण का अत कब होगा ।

★ ग्रह

चन्द्रमार्ग मे अथवा उसके पास ही ग्रह रहते है । वे तारो के ही समान होते है, परतु कुछ ग्रह उनसे बहुत चमकीले होते है । इसलिए अवश्य ही ग्रहो को प्राचीन ऋषियो ने देखा होगा । उन्होने यह भी देखा होगा कि ये अन्य तारो के सापेक्ष चलते रहते है । कोई भी व्यक्ति जो चद्रमा की स्थिति जानने के लिए तारो को देखा करेगा अवश्य ही इसका पता पा जायगा । इसलिए ग्रहो की चर्चा स्वाभाविक है । 'तैत्तिरीय ब्राह्मण' मे बृहस्पति के जन्म का भी उल्लेख है । लिखा है—

बृहस्पति प्रथम जायमान ।। तिष्य नक्षत्रमभिसबभूव ।।

[अर्थ—जब बृहस्पति पहले प्रकट हुआ वह तिष्य (पुष्य) नक्षत्र के पास था ।]

१ ऋक्ष शब्द के सस्कृत मे दो अर्थ थे—(१) तारा (२) रीछ । सभवत· कभी भूल से ऋक्ष रीछ का पर्याय समझ लिया गया होगा ।

दीक्षित ने इसका अर्थ यह लगाया है कि कभी पुष्य तारा बृहस्पति ग्रह की ओट में हो गया होगा (आधुनिक ज्योतिष बताता है कि यह सभव है)। अपनी गति के कारण जब दो चार घटे में बृहस्पति पुष्य से पृथक् हुआ होगा तो लोगो ने समझा होगा कि बृहस्पति का जन्म हुआ। तब बृहस्पति पुष्य के निकट रहा होगा।

'शतपथ ब्राह्मण' (४ २ १) मे शुक्र की चर्चा यो है—

चक्षुषी हवा अस्य शुक्रामथिनौ। तद्वा एष एव शुक्रो य एष तपति तद्य देव एतत्तपति तेनैषशुक्रश्चन्द्रमा एव मथी ॥१॥ इमामु हैके शुक्रस्य पुरोरुच कुर्वंति। अय वेनश्चोदयत्पृश्निगर्भा ज्योतिर्जरायू रजसो विमान इति तदेतस्य रूप कुर्मो य एष तपतीति वदाहज्योतिर्जरायुरिति ॥८॥

[अर्थ—शुक्र और मथी उसकी दो आँखे है। शुक्र वही है जो चमकता है। यह चमकता है इसलिए इसको शुक्र कहा गया है। चद्रमा मथी है। कुछ लोग 'अय वेन' इन शब्दो से आरम्भ होने वाली ऋचा को 'शुक्र' के लिए पुरोनुवाक्या मत्र (अर्थात् आरम्भ मे पढे जाने वाले मत्र) बताते है। वह ऋचा यह है "अय वेनश्चोदयत् पृश्निगर्भाज्ज्योतिजरायू रजसो विमान।"]

'तैत्तिरीय सहिता' मे शुक्र और चद्रमा के साथ ही बृहस्पति का नाम आया है—

वस्व्यसि रुद्रास्यदितिरस्यादित्यासि शुक्रासि चद्रासि बृहस्पतित्वा सुम्ने कृण्वतु। —तै स १ २ ५

अर्थ—(हे सोम को खरीदने वाले!) तू वस्वी है, अर्थात् वसु आदि देवो का रूप है। रुद्र है, अदिति है, आदित्य है, शुक्र है, चद्र है, बृहस्पति है। तू सुख से रह।

अथर्व सहिता (१९-९) मे 'ग्रह' शब्द आया है—

उत्पाता पार्थिवान्तरिक्षाश्श नो दिविचरा ग्रहा ॥ ७ ॥
श नो भूमिर्वेपमाना शमुल्कानिर्हत च यत ॥ ८ ॥
नक्षत्रमुल्काभिहत शमस्तु ॥ ९ ॥
श नो ग्रहाश्चाद्रमसा शमादित्याश्च राहुणा ॥
श नो मृत्युर्धूमकेतु श रुद्रास्तिग्मतेजस ॥ १० ॥

[पृथ्वी और अन्तरिक्ष के उत्पात और द्युलोक के ग्रह हमारे लिए कल्याणकारी हो जायँ। काँपती हुई भूमि कल्याणकारक हो। और वह भी जो उल्का के साथ है। उल्का सहित नक्षत्र कल्याण कारक हो। राहु के साथ चाद्र ग्रह और सौर ग्रह कल्याणकारक हो। अनर्थकारी धूमकेतु कल्याणकारी हो। तीक्ष्ण प्रकाश वाले रुद्र कल्याणकारी हो।

जरमन आचार्य प्रोफेसर वेबर की सम्मति है कि भारत मे ही ग्रहो का आविष्कार हुआ होगा, क्योकि इनके नाम विशेष रूप से भारतीय हैं।[1]

वैदिक काल मे ही ज्योतिष के विशेषज्ञ दूसरो से कुछ पृथक्-से हो गये थे। वाजसनेयी सहिता (३० १०) मे लिखा है—

प्रज्ञानाय नक्षत्रदर्शं ॥

[अर्थ—विशेष ज्ञान के लिए नक्षत्रदर्श के पास जाओ।]

★ साराश

अब स्पष्ट हो गया होगा कि वैदिक काल मे ज्योतिष की सच्ची नीव पड गयी थी। मास चाद्र था और वर्ष का आरभ और अत ज्ञात करने के लिए ऐसी रीति का पता लगा लिया गया था कि कभी भी अधिक त्रुटि नही उत्पन्न हो सकती थी। वर्ष का आरभ लगभग पद्रह दिन इधर-उधर हो सकता था, परतु इससे अधिक नही। पूजा-पाठ के लिए अमावस्या और पूर्णिमा का बडा महत्त्व था। इस पर भी विशेष ध्यान दिया जाता था कि वर्षारभ से सबध रखने वाले कर्म उचित समय पर ही हो।

वेद के छ अगो मे ज्योतिष भी एक अग है और इस वेदाग की एक प्राचीन पुस्तक आज भी उपलब्ध है, जिसका विवेचन आगामी अध्याय मे किया जायगा।



१. वेबर : भारतीय साहित्य का इतिहास (अंग्रेजी में); पृष्ठ २४१।

५

वेदांग-ज्योतिष

वेदाग (अर्थात् वेद का अग) होने के कारण वेदाग-ज्योतिष नामक ग्रथ पवित्र माना जाता था और इसे स्मरण रखना तथा पढना पुण्य का काम समझा जाता था। इसी से यह पुस्तक लुप्त होने नही पायी है। परतु इस ग्रथ या पुस्तक कहना बहुत उपयुक्त नही है, क्योकि इसमे कुल ४४ श्लोक है, इसे पुस्तिका कहना अधिक उचित होगा।

★ दो पाठ

'वेदाग-ज्योतिष' के दो पाठ मिलते है, एक ऋग्वेद ज्योतिष और दूसरा यजुर्वेद ज्योतिष। दोनो मे विषय प्राय एक-से है, परतु यजुर्वेद ज्योतिष मे ४४ श्लोक है[1] और ऋग्वेद ज्योतिष मे केवल ३६। दोनो मे अधिकाश श्लोक एक ही है, परतु उनका क्रम दोनो मे भिन्न है। कुछ श्लोको मे शब्दो का भी कुछ अतर है, यद्यपि अर्थ एक ही है। ऋग्वेद ज्योतिष के सात श्लोक यजुर्वेद ज्योतिष मे नही है और यजुर्वेद ज्योतिष के १४ श्लोक ऋग्वेद ज्योतिष मे नही है। ऐसा सभव है कि ज्योतिष की ये दोनो पुस्तिकाएँ किसी बडे ग्रथ से सकलित की गयी हैं और उस बडे ग्रथ का अब लोप हो गया है। आधुनिक भाष्यकारो मे से कुछ की यही सम्मति है, परतु डाक्टर शामशास्त्री का मत है कि ऋग्वेद ज्योतिष और यजुर्वेद ज्योतिष के श्लोको की गिनतियो मे अतर इसलिए है कि यजुर्वेद ज्योतिष मे टीका के रूप मे कुछ श्लोक बढा दिये गये है।

१ कुछ सरकरणो मे केवल ४३ श्लोक है, परतु डाक्टर शामशास्त्री द्वारा सपादित पुस्तक मे ४४ श्लोक हैं।

★ टीकाओ का इतिहास

'वेदाग-ज्योतिष' के श्लोको को समझना बहुत कठिन है। कारण यह है कि अधिकाश श्लोको की भाषा बहुत सक्षिप्त है और उनमे अनेक शब्द छोड दिये गये हैं। सच्ची बात तो यह है कि ये श्लोक सूत्र हैं जिनका उद्देश्य यह है कि गणना के नियम जानने वाले को आवश्यकता पडने पर नियम स्मरण हो आये; उनका यह अभिप्राय नहीं है कि नौसिखिये को पूरा-पूरा नियम बताया जाय। वे तो ऐसे ही हैं जैसे गणित-पुस्तकों के अंत मे दी गयी सूत्रो की सूची, जिसे वे ही समझ सकते हैं जो विषय का अच्छी तरह मनन कर चुके हैं।

'वेदाग-ज्योतिष' पर एक भाष्य सोमाकर का है, परतु यह अच्छा नही है। इस भाष्य से स्पष्ट है कि भाष्यकार स्वय कई एक श्लोको का अर्थ नही समझता था। आधुनिक समय मे 'वेदाग-ज्योतिष' का पहला सस्करण वेबर का था। उसके बाद सर विलियम जोन्स, ह्विटनी, कोलब्रुक, बेंटली, डेविस, मैक्समूलर, थीबो और कुछ अन्य विद्वानो ने श्लोको के अर्थ लगाने की ओर ध्यान दिया, परतु तब भी कुछ श्लोको का अर्थ सतोषजनक रीति से नही लग सका। थीबो ने इस विषय पर अपनी टिप्पणियाँ सन १८७९ मे प्रकाशित की। इसके बाद कृष्ण शास्त्री गोडबोले, जनार्दन बालाजी मोडक और शकर बालकृष्ण दीक्षित ने उन श्लोको को समझाने की चेष्टा की जिनका अर्थ पूर्व टीकाकारो से नही लग पाया था, परतु पूर्ण सफलता नही मिली। सन १९०६ मे लाला छोटेलाल ने, अपना उपनाम बार्हस्पत्य रखकर, 'हिंदुस्तान रिव्यू' मे कई लेख छपाये, जिनमे इन श्लोको के चातुर्यपूर्ण अर्थ थे, परन्तु वे विद्वानो को सतोषजनक नही जँचे। १९०८ मे महामहोपाध्याय सुधाकर द्विवेदी ने 'पडित' नामक पत्रिका मे कई लेख प्रकाशित किये, जिनमे उन्होने छोटेलाल के मतो का खडन किया और अपने मतानुसार पाठ का सशोधन करके अर्थ लगाया। १९३६ मे डाक्टर आर० शामशास्त्री ने मैसूर सरकार के यत्रालय से एक सस्करण छपाया जिसमे 'वेदाग-ज्योतिष' के श्लोको को 'सूर्यप्रज्ञप्ति' आदि जैन ज्योतिषग्रथो तथा 'ज्योतिष-करड' मे आये उन्ही विषयो पर दिये गये नियमो की सहायता से समझाया गया है। इन जैन पुस्तको ने 'वेदाग-ज्योतिष' के नियमो को अपनाया था और उनकी विस्तृत व्याख्या दी थी। डाक्टर शामशास्त्री अपनी पूर्वोक्त पुस्तक मे लिखते है "ग्यारहवाँ श्लोक, जो विद्वानो के अर्थ-ज्ञान मे बाधक था, 'सूर्यप्रज्ञप्ति' मे अनुवादित है।"

इस प्रकार अब 'वेदाग-ज्योतिष' के सब श्लोको का पर्याप्त अच्छा अर्थ लग गया है।

★ 'वेदाग-ज्योतिष' की विषय-सूची

'वेदाग-ज्योतिष' मे पचाग बनाने के प्रारंभिक नियम दिये गये है। इन नियमो से प्राचीन समय मे यज्ञादि के लिए उचित समय का ज्ञान प्राप्त किया जाता था। बाद मे ये श्लोक पवित्र मान लिये गये और जब सूर्य-सिद्धात या अन्य सिद्धातो के अनुसार अधिक शुद्ध पचाग बनने लगे तब भी, जैसा पहले बताया जा चुका है, लोग इन श्लोको के पाठ करते थे। इसी कारण ये अब भी उपलब्ध है।

यजुर्वेद-ज्योतिष के ४४ श्लोको मे से प्रथम चार और अतिम दो मे कोई गणित नही है। प्रथम श्लोक प्रजापति की वदना है और दूसरे मे काल की, तीसरे मे ज्योतिष-शास्त्र का उद्देश्य बताया गया है और चौथे मे बताया गया है कि वेदागो मे ज्योतिष सर्वश्रेष्ठ है। लिखा है—

यथा शिखा मयूराणा नागानां मणयो यथा।
तद्वद्वेदांगशास्त्राणां ज्योतिषं मूर्धनि स्थितम् ॥

[अर्थ—जैसे मोरो मे शिखा है और नागो (सर्पो) मे मणि, इसी प्रकार वेदाग-शास्त्रो मे ज्योतिष चोटी पर है।]

अतिम श्लोक मे ज्योतिषी के लिए आशीर्वाद है। लिखा है—

["वह विद्वान् जो चद्रमा, सूर्य और नक्षत्रो की गतियो को जानता है इस लोक मे बाल-बच्चे पाकर सुखी होगा और (मृत्यु के पश्चात्) चद्रमा, सूर्य और नक्षत्रो के लोक मे जायगा।"]

श्लोक ४२ ज्योतिष विषयक नही है। उसमे त्रैराशिक का प्रसिद्ध नियम है जो अकगणित मे अत्यन्त उपयोगी है।

इस प्रकार ३७ श्लोक बच जाते है जिनमे ज्योतिष-सबधी विषय है।

★ युग

जैसा पहले बताया जा चुका है, समय के लिए तीन प्राकृतिक एकाइयाँ है। वे हैं (१) अहोरात्र (अर्थात् दिन-रात), (२) चाद्र मास, और (३) वर्ष। प्रत्येक प्राचीन पद्धति मे प्रधानत इसी समस्या का हल रहता था कि इन एकाइयो मे क्या सबध है। पृथ्वी के अपने अक्ष के परित एक बार घूमने से हमे अहोरात्र मिलता है, चद्रमा की एक पूर्णिमा (या अमावस्या) से आगामी पूर्णिमा (या अमावस्या) तक एक चाद्र मास होता है और यह पृथ्वी के परित (चारो ओर) चद्रमा के परिक्रमण के कारण उत्पन्न होता है। सूर्य पृथ्वी के परित चक्कर लगाता हुआ दिखाई पडता है, एक चक्कर का समय एक वर्ष होता है और यह एक बरसात से आगामी बरसात तक का समय है।

इन तीन एकाइयो के अतिरिक्त लोग यह भी जानना चाहते थे कि तारो के बीच चद्रमा आज कहां पर है। इसके लिए चद्रमार्ग को सत्ताईस बराबर भागो मे बांट कर प्रत्येक को एक नक्षत्र कहा गया है। इन नक्षत्रो के नाम पहले बताये जा चुके हैं।

देखने की बात है कि एक चाद्र मास मे पूरे-पूरे दिन नही होते। वस्तुत, आधुनिक नापो के अनुसार एक चाद्र मास मे २९.५३०५८८ . दिन होते हैं। इसी प्रकार वर्ष मे दिनो की सख्या भी पूर्ण सख्या नही है। एक वर्ष में ३६५.२४२.. दिन होते है। प्राचीन समय में दशमलव पद्धति चली नही थी और भिन्नो का ज्ञान भी सीमित ही था। इसलिए तब लोग युगो का प्रयोग करते थे जो बहुत ही सुन्दर प्रथा है। वे कई वर्षों की अवधि चुन कर उसे युग कहते थे और तब बताते थे कि इस युग मे कितने वर्ष, कितने मास और कितने दिन होते है। इस प्रकार भिन्नो की आवश्यकता नही पडती थी। जब फल बेचनेवाला कहता है कि पाँच आने में दो आम मिलेंगे तो वह भिन्नो से बचने की उसी रीति का प्रयोग करता है जिसे वेदाग-ज्योतिष ने मास मे दिनो की पूर्ण सख्या बनाने के लिए अपनाया था।

प्रत्यक्ष है कि युग जितना ही लबा चुना जायगा, चाद्र मास की लबाई उतनी ही अधिक सूक्ष्मता से बतायी जा सकेगी। उदाहरणत, हम चाहे तो केवल दो चाद्र मासो का युग चुन कर कह सकते है कि एक युग मे दो चाद्र मास होते है और उतने ही मे ५९ दिन होते हैं। तो इस प्रकार एक चाद्र मास मे ठीक-ठीक २९.५ दिन होंगे। परतु चाद्र मास इससे कुछ लबा होता है। तो भी इससे अधिक सूक्ष्मता इस छोटे से युग मे मासो और दिनो की सख्या की पूर्ण सख्याएँ रख कर हम ला ही नही सकते। यदि एक युग मे केवल एक दिन अधिक रखा जाय तो एक चाद्र मास मे दिनो की सख्या तुरत ३० हो जायगी, जो वास्तविकता से बहुत अधिक है। इससे स्पष्ट है कि अधिक सूक्ष्मता के लिए आवश्यक है कि अधिक लबा युग चुना जाय।

* पचवर्षीय युग

वेदाग-ज्योतिष मे ५ वर्ष का युग चुना गया है और बताया गया है कि एक युग मे १८३० दिन होते है और ६२ चाद्र मास होते हैं। १८३० को ६२से भाग देकर हम देख सकते हैं कि वेदाग-ज्योतिष के अनुसार एक चांद्र मास मे २९.५१६ दिन होते है। यह सख्या वास्तविकता से छोटी है। यदि एक युग मे १८३० के बदले १८३१ दिन रखे जाते तो चाद्र मास की लबाई वास्तविकता से कुछ अधिक,

तो भी पहले मान की अपेक्षा शुद्धतर, निकलती, परतु एक युग मे १८३१ दिन मानने से वर्ष मे दिनो की सख्या ३६६ २ हो जाती, जो वास्तविकता से अधिक दूर है। स्पष्ट है कि 'वेदाग-ज्योतिष' ने भी पर्याप्त लबा युग नही चुना। अवश्य ही, चाद्र मास के लिए वेदाग-ज्योतिष का मान (२९ ५१६ दिन) साढे उनतीस दिन की तुलना मे बहुत अच्छा है, परतु यह मान इतना सच्चा नही है कि वर्षो तक इसी मान से लगातार गणना की जाय और अतर न पडे। उदाहरणत, २० वर्ष मे साढे तीन दिन की अशुद्धि पड जायगी और यदि कोई प्राचीन ज्योतिषी २० वर्ष तक ठीक २९ ५१६ दिन पर मास का अत मानता चला जाता तो वह देखता कि जब उसकी गणना से अमावस्या होती तो आकाश मे चद्रमा हँसिया-सा दिखाई पडता रहता और वह तुरत देख लेता कि उसकी गणना मे लगभग ३½ दिन की अशुद्धि है।

अब स्पष्ट है कि वेदाग-ज्योतिष मे एक मौलिक त्रुटि थी , यह कि युग बहुत छोटा चुना गया था। पीछे जो ज्योतिष ग्रथ लिखे गये उनमे युग अत्यत लबा रखा गया। उदाहरणार्थ, 'आर्यभटीय' मे (जिसकी रचना पाँचवी शताब्दी ई० मे हुई) ४३,२०,००० वर्षो का युग माना गया था।

✶ भिन्न

ऐसा नही समझना चाहिये कि वेदाग-ज्योतिष मे कही भिन्न है ही नही। परतु जहाँ-जहाँ भिन्नो की आवश्यकता पडी है वहाँ सब से छोटे भिन्न को कोई विशेष नाम दे दिया गया है। उदाहरणत, एक नक्षत्र के एक सौ चौबीसवे भाग को एक भाश कहा गया है। जिसे हम अब $\frac{११}{१२४}$ भाश लिखेगे उसे वेदाग-ज्योतिष मे ११ भाश कहा गया है। इसी प्रकार एक दिन को ६०३ भागो मे बाट कर प्रत्येक को एक कला कहा गया है फिर एक कला को १२४ भागो मे बाँट कर प्रत्येक को एक काष्ठा कहा गया है और एक काष्ठा को पाँच भागो मे बाँट कर प्रत्येक को एक अक्षर कहा गया है। यह तो प्रत्यक्ष है कि ये नाम इसलिए नही रखे गये थे कि समय की पूर्वोक्त एकाइयाँ महत्त्वपूर्ण है। इन एकाइयो की कल्पना केवल इसलिए की गयी थी कि ग्रथकार को दिन के ऐसे भिन्नो की आवश्यकता पड गयी थी जिनके हर मे ६०३ × १२४ × ५ आता है और उस समय भिन्नो का प्रचलन कम था, और सभवत इसलिए भी कि छद रचने मे नामयुक्त भिन्नो से सुगमता होती थी। सौभाग्यवश भिन्नो की आवश्यकता बहुत कम पडी, अन्यथा नामो का एक बृहत समूह खडा हो जाता, जिसे गढने मे भी कठिनाई पडती और स्मरण रखने मे भी।

* 'वेदाग-ज्योतिष' मे क्या है

जैसा पहले बताया गया है, यजुर्वेद-ज्योतिष के ६ श्लोको का गणित से कोई सबध नही है। शेष श्लोको मे से २१ में या तो परिभाषाएँ हैं या तथ्य बताये गये हैं। शेष १६ श्लोको मे ज्योतिष-घटनाओ की गणना के लिए नियम दिये गये हैं।

परिभाषाओ में आढक, द्रोण, कुडव, नाडिका, पाद, काष्ठा, कला, मुहूर्त और ऋतुशेष की परिभाषाएँ हैं। तथ्यो में यह बताया गया है कि युग मे कितने वर्ष, मास और दिन होते हैं, एक युग मे तारो का उदय कितनी बार होना है, युग मे जो दो अधिमास (लौंद के महीने) लगते हैं उन्हे कब-कब लगना चाहिए, और इसी प्रकार की कुछ अन्य बाते। युग के आरभ वाले क्षण पर सूर्य और चद्रमा की क्या स्थितियाँ रहती हैं इनका भी स्पष्ट उल्लेख है। यह भी बताया गया है कि उत्तरायण और दक्षियाणन का आरभ कब-कब होता है। पाठक को ज्ञात होगा कि इन क्षणो पर सूर्य अपनी वार्षिक परिक्रमा मे[1] क्रमानुसार उत्तर और दक्षिण जाना आरभ करता है। तीन श्लोको मे २७ नक्षत्रो के देवताओ के नाम गिनाये गये है। यह नही समझना चाहिये कि यह गणित-ज्योतिष के लिए बेकार है, क्योकि आगे चलकर एक श्लोक मे सत्ताइसो नक्षत्रो को एक विशेष क्रम मे प्रदर्शित किया गया है और सक्षिप्तता के विचार से यह आवश्यक था कि एक-एक अक्षर से ही एक-एक नक्षत्र को इगित किया जाय। इस काम मे जहाँ दुविधा पडने का भय था वहाँ नक्षत्र के देवता के नाम से कोई लाक्षणिक अक्षर लेकर काम बडी सुन्दरता से पूरा किया गया है। इसलिए, यदि देवताओ का नाम न बताया जाता तो उस श्लोक को समझना ही असभव हो जाता, यही पूर्वोक्त श्लोको की महत्ता है। एक श्लोक का सबध विशुद्ध फलित ज्योतिष से है, उसमे बताया गया है कि कौन-कौन से नक्षत्र अशुभ हैं।

एक श्लोक मे बताया गया है कि सबसे लबे दिन का मान क्या है। यह महत्त्वपूर्ण है, क्योकि इमसे हम पता चला सकते है कि लेखक के निवास-स्थान का अक्षाश क्या था। इस पर आगे चलकर विचार किया गया है।

१. सभवतः कोई पाठक आपत्ति करेगा कि सूर्य तो स्थिर है, पृथ्वी परिक्रमा करती है। परन्तु इस बात को जानते हुए भी सुविधा रहने पर ज्योतिष मे यह कह देने की प्रथा है कि "सूर्य पृथ्वी की परिक्रमा करता है"। यह सूर्य की आभासी गति है और किसी को इससे भ्रम नहीं होता।

शेष १६ श्लोकों मे, जैसा ऊपर बताया गया है, गणना के नियम हैं। इनमें से एक श्लोक मे बताया गया है कि किन तिथियो का क्षय होता है। पाठक को ज्ञात होगा कि भारतीय पद्धति में सभी तिथियाँ क्रमानुसार नही आतीं। बहुधा एक तिथि छूट जाती है, छूटी हुई तिथि को ही क्षय तिथि कहते है। उदाहरणत, एक दिन तृतीया हो सकती है और आगामी दिन चतुर्थी न होकर पचमी हो सकती है। तब कहा जायगा कि चतुर्थी का क्षय हुआ। तिथियो के क्षय होने का कारण यह है एक चाद्र मास मे लगभग २९½ दिन होते है और ३० तिथियाँ होती है। इसलिए दो महीने मे ५९ दिन और ६० तिथियाँ होती हैं। इससे स्पष्ट है कि लगभग दो महीने मे औसतन एक तिथि का क्षय तो होगा ही ; अन्यथा तिथियो और मास का सबध टूट जायगा।

आठ श्लोको मे बताया गया है कि पूर्णिमा या अमावस्या पर अपने नक्षत्र मे चद्रमा किस स्थान पर रहता है। तीन श्लोको मे बताया गया है कि नक्षत्र मे सूर्य के स्थान का पता कैसे लगाया जाय। तीन श्लोको मे बताया गया है कि विषुव की गणना कैसे की जाय (विषुव पर दिन और रात दोनो बराबर होते है)। एक श्लोक मे बताया गया है कि योग का कैसे पता लगाया जाय। योग सूर्य और चद्रमा के भोगाशो का जोड है, और इस जोड के न्यूनाधिक होने के अनुसार इसे कई विशेष नाम दे दिये गये है। बाद मे योग के अनुसार शुभाशुभ विचार होने लगा, जो फलित ज्योतिष के अतर्गत है।

★ 'वेदाग-ज्योतिष' के अनुसार तिथि-नक्षत्र

'वेदाग-ज्योतिष' मे पचाग-पद्धति स्थूल रूप से वही है जो वर्तमान समय मे हिंदुओं मे प्रचलित है। महीने चद्रमा के अनुसार चलते थे, जैसे अब भी चलते है। एक मास को ३० भागो मे बाँटा जाता था और प्रत्येक को एक तिथि कहते थे। तिथि और चद्रमा की आकृति का सबध बनाये रखने के लिए कोई-कोई तिथियाँ छोड दी जाती थी, जिसका कारण ऊपर समझाया जा चुका है। वर्ष मे साधारणत, १२ महीने होते थे, परतु आवश्यकतानुसार वर्ष मे एक महीना बढा दिया जाता था, जिसमे वर्ष के आरभ और ऋतु का सबध न टूटने पाये।

★ एक अद्भुत सूत्र

दो पक्तियो के एक सूत्र मे सत्ताईसो नक्षत्र एक विशेष क्रम मे इगित किये गये हैं। उस श्लोक मे कोई नक्षत्र किस स्थान मे आता है इसे गिन कर तुरत जाना जा सकता है कि जब सूर्य उस नक्षत्र मे रहता है तो पूर्णिमा या अमावस्या के क्षण नक्षत्र के आदि बिंदु से सूर्य कितना हटा रहता है। २७ अक्षरो को इस

प्रकार चुनना कि उनसे बिना किसी प्रकार की दुविधा के सत्ताईसो नक्षत्रो का पता चले, फिर उन्हे उस क्रम से रखना जो गणना के अनुसार प्राप्त होता है, और उनसे एक श्लोक बना देना सूत्र बनाने की कला मे अवश्य ही आश्चर्यजनक निपुणता है। श्लोक यह है

ज्यौद्राग· खे श्वे ही रो षा चिन्मूषक्ण्य· सूमा धानः ।
रेमृघास्वापोज· कृष्योहज्येष्ठा इत्यृक्षालिंगैः या ॥

इस श्लोक मे नक्षत्र-सूचक अक्षर नक्षत्र के नाम का आदि, मध्य, या अत वाला अक्षर है। जहाँ ऐसा करने पर भ्रम होने का डर था, या जहाँ एक ही नाम के दो नक्षत्र थे, वहाँ नक्षत्र के देवता के नाम से अक्षर चुना गया है। नीचे प्रत्येक अक्षर का तात्पर्य दिया जाता है[1]—

१ ज्यौ = अश्वयुजौ = अश्विनी
२ द्रा = आर्द्रा
३ ग = भग (पूर्वा फाल्गुनी के देवता)
४ खे = विशाखे
५ श्वे = विश्वेदेवा (उत्तराषाडा के देवता)
६ हि = अहिर्बुध्न्य (उत्तरा भाद्रपदा के देवता)
७ रो = रोहिणी
८ षा = आश्लेषा
९ चित् = चित्रा
१० मू = मूल
११ षक् = शतभिषक्
१२ ण्य = भरण्य, भरणी
१३ सू = पुनर्वसू
१४ मा = अर्यमा (उत्तरा फाल्गुनी के देवता)
१५ धा = अनुराधा
१६ न = श्रवण
१७ रे = रेवती
१८ मृ = मृगशिरा
१९. घा = मघा

१. विज्ञान (पत्रिका), दिसम्बर १९४४; पृष्ठ ३४।

२० स्व=स्वाती
२१ प =अप (पूर्वाषाढा के देवता)
२२ अज =अजएकपात् (पूर्वा भाद्रपदा के देवता)
२३. कृ=कृत्तिका
२४ ष्य =पुष्य
२५ ह=हस्त
२६ ज्ये=ज्येष्ठा
२७ ष्ठा=श्रविष्ठा

★ वेदाग-ज्योतिष का काल

'वेदाग-ज्योतिष' मे यह बताया गया है कि विषुव के अवसर पर (जब दिन और रात दोनो बराबर होते है) तारो के सापेक्ष सूर्य कहाँ रहता है। देखने की बात है कि यह स्थिति सदा एक-सी नही बनी रहती। यह धीरे-धीरे बदलती रहती है और विषुव के इस चलने को 'अयन' कहते हैं। इसलिए वेदाग-ज्योतिष मे बतायी गयी स्थिति से उस ग्रथ का काल-निर्णय हो सकता है। गणना से पता चलता है कि यह लगभग १२०० ई० पू० की बात होगी। यूरोपीय विद्वानो मे स कई एक वेदाग-ज्योतिष की इतनी प्राचीनता स्वीकार करने को तैयार नहीं है। उनका कहना है कि तारो के सापेक्ष सूर्य की स्थिति नापना कठिन है और इसलिए इसमे अधिक त्रुटि हो जाने की सभावना है। फिर यह भी सभव है कि वेदाग-ज्योतिष के ग्रथकार ने अपने समय मे स्वय विषुव पर सूर्य की स्थिति का वेध न किया हो। उसने किसी प्राचीन प्रमाण के आधार पर सुनी-सुनायी बात लिख दी हो। यह तो मानना पडेगा कि त्रुटि की सभावना है और पुरानी बात के लिखे जाने की सभावना है, परन्तु निष्पक्ष विचार मे यह भी मानना पडेगा कि त्रुटि ऐसी भी हो सकती है जिसके कारण वेदाग-ज्योतिष की प्राचीनता कुछ कम निकली हो। कुछ भी हो, अन्य प्रमाण के अभाव मे यही मानना उचित होगा कि वेदाग-ज्योतिष का काल लगभग १२०० ई० पू० है। आगामी अध्याय मे इन बातो पर अधिक विस्तार से विचार किया जायगा।

★ वेदाग-ज्योतिष का लेखक

ऋग्वेद-ज्योतिष के श्लोक २ मे[1] और यजुर्वेद-ज्योतिष के श्लोक ४३ मे यह स्पष्ट रूप से बताया गया है कि पुस्तक के ज्योतिष का ज्ञान लेखक को महात्मा

१ कालज्ञान प्रवक्ष्यामि लगधस्य महात्मन ।

लगध से मिला है। यद्यपि इन दो श्लोकों की रचना भिन्न हैं तो भी अर्थ एक ही है। परंतु स्वयं लेखक कौन है इस विषय पर मतभेद है। पुस्तक के प्रथम श्लोक से कुछ लोग यह कहते हैं कि लेखक का नाम 'शुचि' था, परंतु इस अर्थ के बदले कि "मैं शुचि, बताऊँगा " यह अर्थ भी लग सकता है कि "मैं, शुद्ध होकर, बताऊँगा "।

यह कहना कठिन है कि लगध महात्मा कौन थे, क्योंकि संस्कृत साहित्य मे उनका नाम अन्यत्र कहीं नही आता। परतु लगध शब्द सस्कृत मूल से उत्पन्न हुआ नही जान पड़ता। इससे कुछ लोगो की धारणा है कि वे कोई विदेशी रहे होगे और भारत में ज्योतिष का ज्ञान विदेश से आया होगा।

'वेदाग-ज्योतिष' मे यह दिया हुआ है कि बडे-से-बडे दिन की लबाई क्या थी। इससे हम इसका पता लगा सकते हैं कि जिस स्थान मे ग्रथकार रहता था वहा का अक्षांश क्या था। गणना से पता चलता है कि अक्षाश लगभग ३५° रहा होगा। उत्तर कश्मीर या अफगानिस्तान के स्थानो मे यह अक्षाश सभव है। इसलिए सभावना यह है कि 'वेदाग-ज्योतिष' का ग्रथकार कही वही का निवासी था। दिनमान को अर्थात् दिन की लबाई को, लोग छेद वाली पेंदी के बरतन का पानी मे डूबना गिनकर सुगमता से नाप सकते थे। इसलिए ऐसा मानने मे कोई आपत्ति नही दिखाई पडती कि दिनमान त्रुटिहीन होगा और इसलिए उसके आधार पर निकाले गये अक्षांश पर भरोसा किया जा सकता है।

✱ केवल मध्यक गतियाँ

कुछ बाते 'वेदाग-ज्योतिष' में नही है जिनको रहना चाहिये था। ग्रथकार ने कही इसकी चर्चा नही की है कि चद्रमा और सूर्य समान कोणीय वेग मे नही चलते। यह मानकर कि चद्रमा और सूर्य समान कोणीय वेग से चलते है, जो यथार्थ नही है, सब गणना की गयी है। इसलिए 'वेदाग-ज्योतिष' में सब तिथियाँ बराबर लबाई की मानी गयी हैं। पीछे के सब ज्योतिष ग्रथो में (सूर्य-सिद्धान्त आदि मे) चद्रमा और सूर्य के असमान कोणीय वेगो पर विचार किया गया है, तिथियाँ छोटी-बडी मानी गयी हैं और उनकी गणना के लिए आवश्यक नियम दिये गये हैं। सभवत 'वेदाग-ज्योतिष' के ग्रथकार को इसका पता न रहा होगा कि चद्रमा और सूर्य असमान कोणीय वेग से चलते हैं। यह भी हो सकता है कि उसने गणना की सुगमता के लिए माना हो कि ये पिंड समान वेग से चलते हैं परतु ऐसा अधिक संभव नही जान पड़ता।

'वेदाग-ज्योतिष' के ग्रथकार को अयन का पता नहीं था और इसमे कुछ आश्चर्य भी नहीं है कि उस प्राचीन काल मे इस सूक्ष्म गति का ज्ञान नही था।

★ वेध और गणना मे अन्तर

एक बात अवश्य विचित्र है। यह कही नही बताया गया है कि यदि वेध और गणना मे अंतर पड जाय तो उसका समाधान कैसे करना चाहिये। हम देख चुके है कि युग के छोटे होने के कारण, और सभवत वेधो के पर्याप्त सूक्ष्म न होने के कारण, वर्ष और मास की लबाइयो में त्रुटियाँ थी, और वेदाग-ज्योतिष के नियमो के लगातार प्रयोग से कुछ वर्षों मे इतना अतर पड सकता था कि उसकी अवहेलना नही हो सकती थी। इसलिए कोई इस प्रकार का नियम अवश्य होना चाहिये था कि इतने वर्षों मे इतने दिन छोड दो, या वेध करके देख लो और आवश्यक दिन छोड दो।

हम अब केवल अनुमान कर सकते है कि क्या होता रहा होगा। या तो ऐसे नियम थे और अब उनका लोप हो गया है, जैसा लाला छोटेलाल का मत है, या कोई नियम नही थे और समय-समय पर गणना मे सशोधन करके गणना के परिणाम को आँख से देखी बातो के अनुसार कर दिया जाता था, जैसा डाक्टर शामशास्त्री का मत है। लाला छोटलाल ने बहुत जोरदार शब्दो मे अपने मत का समर्थन किया है कि वेदाग-ज्योतिष किसी बडे ज्योतिष-ग्रथ का साराश-मात्र है, परतु मुझे भी ऐसा लगता है कि सपूर्ण नियम न रहे होगे। केवल कभी-कभी गणना से कुछ घटती-बढती कर दी जाती रही होगी, जैसे पीछे बीज-सस्कार करके दृक्तुल्यता लायी जाती थी। डाक्टर शामशास्त्री का मत है कि एक श्लोक मे इसका सकेत है कि आवश्यकता पडने पर गणना मे घटती-बढती कर देनी चाहिये, परतु दूसरो को यह अर्थ स्वीकार नही है और निश्चयात्मक रूप से कुछ कहा नही जा सकता।

व्रत आदि के लिए दिन निश्चित करने वालो को इसका पता अवश्य रहा होगा कि वेदाग-ज्योतिष के नियम स्थूल है और वे आवश्यकता के अनुसार, आँख से देख कर, गणना मे सशोधन कर लेते रहे होगे, परन्तु सभवत वे ऐसे नियम नही बना पाये होगे जिसमे अधिक सच्ची गणना हो सके।

यह भी आश्चर्य की बात है कि 'वेदाग-ज्योतिष' मे एक वर्ष मे ३६६ दिन माने गये हैं, जब वर्ष की सच्ची लबाई लगभग ३६५$\frac{1}{4}$ दिन है। यह तो अवश्य सत्य है कि वर्ष का आरभ या अत ऋतु देखकर बताना बहुत कठिन है, एक वेध मे कई दिनो का अतर पड सकता है। परतु कई वर्षों का पडता बैठाने पर (औसत लेने पर) अधिक शुद्ध मान सुगमता मे निकल सकता था। वर्षमान अशुद्ध रहने से ऋतु और वर्ष के आरभ मे अतर लगातार बढता जाता है। यदि १०० वर्षों तक

सदा ३६६ दिन के वर्ष रखे जायँ तो अंत मे गणना से प्राप्त और परंपरागत ऋतुओं मे लगभग ७५ दिन का अंतर पड जायगा, अर्थात् बरसात का आरंभ तभी हो जायगा जब गणना के अनुसार केवल वैशाख या जेठ बीता रहेगा, और जब लू चलनी चाहिये। अवश्य ही वर्ष को ठीक रखने के लिए कुछ अन्य नियम रहे होंगे, या वेदांग-ज्योतिष के बाद बने होंगे, परंतु वे अब लुप्त हो गये है।

दुर्भाग्य की बात है कि १२०० ई० पू० और लगभग ५०० ई० के बीच बने ज्योतिष ग्रंथो का, या इस दीर्घ काल मे ज्योतिष की उन्नति का हमे, कुछ भी पता नही है। ५०० ई० के लगभग कई ग्रंथ बने और उनमे से महत्त्वपूर्ण ग्रंथो का वर्णन आगामी अध्यायो मे दिया जायगा।

६

वेद और वेदांग का काल

★ कृत्तिकाओ का पूर्व मे उदय

इस अध्याय मे वैदिक साहित्य के उन उल्लेखो पर विवेचन किया जायगा जिनसे वेद तथा अन्य ग्रथो के काल पर कुछ प्रकाश पडता है। कुछ उल्लेख इस सबध मे विशेष महत्त्वपूर्ण है। इनमे सबसे अधिक निश्चयात्मक शतपथ ब्राह्मण का वह वाक्य[1] है जो बताता है कि कृत्तिकाएँ "पूर्व दिशा से नही हटती, अन्य नक्षत्र पूर्व दिशा से हटते है।"[2] इसमे तो कोई सदेह है नही कि कृत्तिकाएँ तारो के उसी छोटे समूह की सदस्याएँ हैं जिसे आज भी वही नाम दिया जाता है और जिसे अँग्रेजी मे प्लाइडीज कहते है।[3] सभी इसे स्वीकार करते है कि दिशा उस समय की बतायी गयी है जब कृत्तिकाएँ पूर्व मे उदित होती है।[4] फिर, पूर्वोक्त नियम इस अभिप्राय से बताया गया है कि उसकी सहायता से यज्ञ की वेदी की दिशा ठीक की जाय। इसलिए इसमे कोई सदेह नही रह जाता कि ठीक पूर्व दिशा जानने के लिए ही कृत्तिकाओ के उदित होने की दिशा पूर्व दिशा बतायी गयी है।

१. २।१।२।३। २ एगलिग के अनुवाद के आधार पर (देखो सेक्रेड बुक्स ऑव दी ईस्ट, १२) ३ वैदिक इडेक्स, १, पृष्ठ ४१५।

४ दीक्षित इन्डियन एँटीक्वेरी, २५।२४५, और उसके बाद के लोग। जहाँ तक मैंने देखा है, केवल एक व्यक्ति ने इस उद्धरण से दूसरा परिणाम निकाला है। दीनानाथ चुलैट ने अपने 'वेदकाल-निर्णय' नामक (इन्दौर से प्रकाशित) ग्रथ मे यह सिद्ध करने की चेष्टा की है कि यह ३,०० ००० ई पू की बात है। इस पुस्तक का सारांश आई एच. क्यू ९(१९३३), ९२३ में छपा है।

यह बात और भी पक्की इससे हो जाती है कि कहा गया है कि अन्य नक्षत्र पूर्व से हटे रहते हैं। कृत्तिकाओं के पूर्व में उदित होने से हम यह ज्ञात कर सकते हैं कि यह किस काल की बात है, क्योंकि अयन के कारण (पृष्ठ ७२ देखो) कोई तारा पूर्व मे थोडे ही काल तक उदित होगा, और जैसे-जैसे समय बीतेगा वैसे-वैसे वह पूर्व से अधिक हट कर उदित होगा। अंतर साढे छः हजार वर्ष तक बढ़ता जायगा और तब घटने लगेगा। लगभग १३,००० वर्ष बाद तारा फिर पूर्व मे उदित होगा। इसलिए इस बात की गणना सुगमता से हो सकती है कि कृत्तिकाएँ कब पूर्व मे उदित होती थी। परिणाम यह निकलता है कि ऐसा २५०० ई० पू० में होता था।[1]

इस प्रश्न का उत्तर देना अधिक कठिन है कि 'शतपथ ब्राह्मण' अपने समय की बात बता रहा है या केवल किसी प्राचीन बात को दोहरा रहा है। दीक्षित[2] का विचार है कि यह बात लगभग शतपथ ब्राह्मण के ही समय की है, प्राचीन नही। उनका कहना है कि यह बात तब लिखी गयी होगी जब कृत्तिकाएँ वस्तुत पूर्व मे उदित होती थी, क्योकि वर्तमान काल का प्रयोग करके लिखा गया है कि कृत्तिकाएँ पूर्व मे उदित होती हैं। यदि केवल इसी एक तर्क पर भरोसा करना होता तो परिणाम को पक्का मानना कठिन होता, परतु, जैसा नीचे दिखाया गया है, अन्य तर्कों से भी यही समय प्राप्त होता है, और यह विश्वास करना कठिन हो जाता है कि प्रत्येक बार ब्राह्मण ग्रथ पुरानी ही बात दोहरा रहे हैं। परतु नवीन तर्कों पर विचार करने के पहले यह देख लेना अच्छा होगा कि पूर्वोक्त रीति से प्राप्त समय के विरुद्ध औरो को क्या आपत्तियाँ हैं।

✱ आपत्तियाँ

मैकडॉनेल और कीथ[3] ने आपत्तियो को इस प्रकार सक्षेप मे दर्शाया है—

'शतपथ ब्राह्मण' के पूर्वोक्त कथन पर इसलिए भरोसा न करना चाहिये कि

(क) बौधायन श्रौत सूत्र[4] मे भी ऐसी ही सूचना है, जिसके साथ एक अन्य सूचना भी है, जो बार्थ के अनुसार[5], केवल छठीं शताब्दी ई० या उसके बाद सच हो

१ दीक्षित ने, आई ए, २४। २४५-२४६ में गणना करके ३,००० ई पू. प्राप्त किया है, परन्तु अयन का जो मान उन्होंने लिया था वह कुछ अशुद्ध था। २,५०० ई. पू. अधिक ठीक तिथि है। देखो—के. हिंदू ऐस्ट्रानामी; दी मेमॉयर्स ऑव दि आर्कियोलॉजिकल सर्वे ऑव इण्डिया १८ (१९२४)।

२ वही, २४६; ३ वेदिक इंडेक्स, १।४२७; ४ १८।५;

५. देखो, कैलंड : ऊीबर डास रिचुएल सूत्र डेस बोधायन, ३७-३९।

सकती है, और (ख) वही बात जो 'शतपथ ब्राह्मण' मे है माध्यदिन पाठ[1] मे भी है, परन्तु उसके साथ यह भी लिखा है कि कृत्तिकाओ की सख्या अन्य नक्षत्रो के तारो की सख्या से अधिक है, अन्य नक्षत्रो मे केवल एक, दो, तीन, या चार तारे होते हैं, या काण्व पाठ[2] के अनुसार, चार तारे होते है।

मैंकडॉनेल और कीथ यह भी कहते है कि ब्राह्मण ग्रथो के इन उल्लेखो पर पूर्णतया विश्वास नही किया जा सकता, क्योकि हस्त मे पाँच तारे थे[3] (नाम भी हस्त इसलिए पडा कि हाथ मे पाँच अँगुलियाँ होती है) और सभवत ऋग्वेद[4] मे भी हस्त मे पाँच तारो के होने का सकेत है।

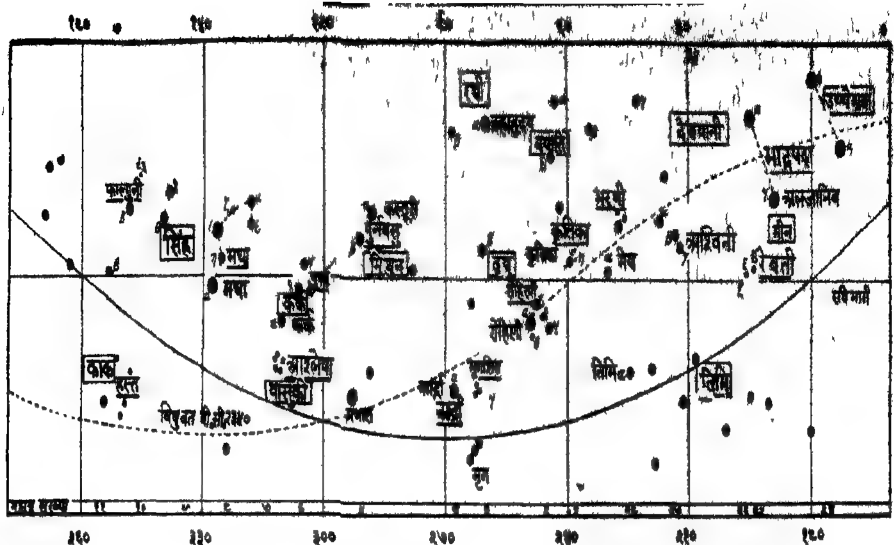
★ बौधायन श्रौत सूत्र

परतु ये आपत्तियाँ सबल और ग्राह्य नही जान पडती। 'बौधायन श्रौत सूत्र' मे जिस वाक्य का उल्लेख किया गया है वह यो है—

"शाला को यहाँ नापना चाहिये, जिसकी छानी की बल्लियाँ पूर्व की दिशा मे रहती है। कृत्तिकाएँ पूर्व की दिशा से नही हटती। उनकी ही दिशा मे इसे नापना चाहिये, यह एक रीति है। श्रोणा की दिशा मे नापे यह दूसरी है, चित्रा और स्वाती के मध्य नापे यह तीसरी।"

यहाँ पहली रीति तो वही है जो 'शतपथ ब्राह्मण' मे दी हुई है। परतु यह नियम वर्ष के सात-आठ महीनो तक लागू नही हो सकता था, क्योकि इतने समय तक कृत्तिकाओ का उदय प्रतिवर्ष दिन मे या उषा अथवा सध्या काल मे होता है इसीलिए बौधायन श्रौत सूत्र ने दो अन्य वैकल्पिक रीतियाँ भी बता दी है। 'शतपथ' को आदर के साथ देखने के कारण, और साथ ही अयन का ज्ञान न रहने के कारण, यह मान लिया गया होगा कि उदय होती हुई कृत्तिकाओ की दिशा मे शाला की बल्ली रखना ठीक है ही, और तब दो अन्य तारो को चुना होगा जो ठीक उसी दिशा मे उदित होते रहे होगे जिसमे कृत्तिकाएँ उदित होती थी। इससे हमे यह बहुमूल्य सूचना मिलती है कि 'बौधायन श्रौत सूत्र' के समय मे श्रोणा और कृत्तिकाओ का उदय एक ही दिशा मे होता था। इससे पता चलता है कि 'बौधायन श्रौत सूत्र' का समय लगभग १३३० ई० पू० रहा होगा।[5] तीसरा

१. शतपथ ब्राह्मण २।१।२।२; २. देखो एगलिंग : सेक्रेड बुक्स ऑव दि ईस्ट, १२।२८२। टिप्पणी २, ३ तुलना करो वेबर : नक्षत्र, २।३६८।३८१। ४ १।१०५।१०, ५ देखो, गोरखप्रसाद जरनल, रॉयल एशियाटिक सोसायटी, लदन, जुलाई, १९३६।



के महोदय की हिस्ट्री ऑफ हिन्दू ऐस्ट्रॉनोमी के आधार पर

इस चित्र में सत्ताईसों नक्षत्र दिखाये गये हैं। चन्द्रमार्ग लगभग वही है जो रविमार्ग है। नक्षत्रों के नाम रेखांकित हैं। राशियों तथा अन्य तारामण्डलों के नाम आयतों से घेर दिये गये हैं। जो नाम किसी तारा विशेष के हैं न रेखांकित हैं और न घेरे गये हैं। बिन्दुमय रेखा से २३५० ई० पू० में विषुवत की स्थिति दिखायी गयी है, और सतत वक्र रेखा से विषुवत की वर्तमान स्थिति। देखें कि २३५० ई० पू० में विषुवत और रविमार्ग का एक छेदन-बिंदु कृत्तिका नामक तारापुञ्ज के पास था।

विकल्प भी इस विवेचन के अनुसार ही है। उस समय चित्रा और स्वाती के ठीक बीच का बिंदु भी उसी दिशा में क्षितिज पर आता था जिस पर कृत्तिकाएँ आती थीं। कृत्तिकाएँ, श्रोणा और चित्रा-स्वाती का मध्यबिंदु ये तीनों आकाश में ऐसी स्थितियों में हैं कि वर्ष के प्रत्येक महीने में इनमें से एक-न-एक का उदय देखा जा सकता था।

सूत्र ग्रंथ ब्राह्मण ग्रंथों के बाद बने।[1] इसलिए बौधायन श्रौत सूत्र वाला १३३० ई० पू० शतपथ के लिए २५०० ई० पू० का समर्थन ही करता है।

इससे प्रत्यक्ष है कि बौधायन श्रौत सूत्र में दिये गये तीन विकल्प यह नहीं सिद्ध करते कि शतपथ का नियम भ्रममूलक था। फिर, विविध नक्षत्रों में तारों की गिनतियों से भी यह नहीं सिद्ध होता कि 'शतपथ' अविश्वसनीय है, क्योंकि मौलिक कथन कि कृत्तिकाओं में अन्य नक्षत्रों से अधिक तारे हैं, सत्य ही है। और यह भी नहीं कहा जा सकता कि अन्य नक्षत्रों के तारों की गिनती बताने में 'शतपथ' ने गलती की है, क्योंकि यह ज्ञात नहीं है कि उस समय हस्त में कितने तारे माने जाते थे। चीन वाले नक्षत्रों को स्यु कहते थे और हस्त वाले तारका-पुंज में वे केवल चार तारे गिनते थे।[2] ऋग्वेद १।१०५ में हस्त नक्षत्र में पाँच तारों के बारे में जिस वाक्य का संकेत किया गया है वह यो है—

अमी ये पञ्चोक्षणो मध्ये तस्थुर्महो दिवः।

देवत्रा नु प्रवाच्यं सध्रीचीना नि वावृतुर्वित्तं मे अस्य रोदसी ॥१०॥

[इसका अर्थ रामगोविंद त्रिवेदी और गौरीनाथ झा ने यह लगाया है—

विशाल आकाश में ये जो (अग्नि, वायु, सूर्य, इंद्र और विद्युत् आदि) पाँच अभीष्टदाता हैं, वे मेरे इस प्रशंसनीय स्तोत्र को शीघ्र देवों के पास ले जाकर लौट आयें। द्यावा-पृथिवी, मेरी यह बात जानो।]

दूसरों ने भी इस ऋचा के अनुवाद में हस्त में पाँच तारों के होने की बात नहीं लिखी है।[3] जान पड़ता है कि हस्त के तारों और इस ऋचा से कोई संबंध है ही नहीं, पाँच की संख्या आ जाने से यह समझना कि उस समय हस्त में पाँच तारे होते थे, भ्रम है।

१. मेकडोनेल : ए हिस्ट्री ऑफ संस्कृत लिटरेचर (१९००), ३५।

२. व्हिटनी : ओरियंटल एंड लिंग्विस्टिक स्टडीज़, २।३५३।

३. देखो ग्रिफिथ : दि हिम्स ऑफ दि ऋग्वेद, १।१०५; ग्रासमान : ऋग्वेद ऊबरज़ेत्सुंग, १।१०५।

स्वय शर्मा का यही कहना है कि शतपथ की बात उस समय के वेधों के आधार पर है जब कृत्तिकाएँ पूर्व मे उदित होती थी ।[१] इस प्रकार मैकडॉनेल और कीथ की सब आपत्तियाँ निर्मूल ही जान पडती हैं ।

★ विटरनिट्स की आपत्तियाँ

विंटरनिट्स[२] ने शतपथ ब्राह्मण के पूर्वोक्त वाक्य का अर्थ यह लगाया है कि कृत्तिकाएँ पूर्व की ओर बहुत अधिक समय तक—कई घटो तक—प्रति रात्रि दिखाई पडती हैं, और इसलिए यह बात लगभग ११०० ई० पू० की है । उनका कथन है कि इस अर्थ की सत्यता का प्रमाण बौधायन श्रौत सूत्र के वाक्य मे मिलता है ।

परन्तु विटरनिट्स का अर्थ निस्सदेह ठीक नही है । कारण यह है कि यदि स्थूल रूप से ही पूर्व दिशा बतानी होती तो किसी भी ऐसे तारे, या तारका-पुज से काम चल जाता जो विषुवत के आस-पास होता । यदि स्थूल रूप से ही पूर्व दिशा जाननी होती तो शतपथ ब्राह्मण यह क्यो कहता कि अन्य नक्षत्र पूर्व दिशा से हटे रहते है, और बौधायन श्रौत सूत्र यह कहने का कष्ट क्यो उठाता कि चित्रा और स्वाती का मध्य बिंदु भी एक विकल्प है । स्थूल माप के लिए केवल चित्रा से ही काम चल जाता, या स्वाती से काम चल जाता, और बीसो अन्य तारे इस काम के लिए उपयुक्त होते । फिर विटरनिट्स का यह कहना कि शतपथ मे बतायी बात लगभग ११०० ई० पू० की है, बहुत ही भ्रममूलक है । यदि उदय के बदले कई घटो तक की कृत्तिकाओ की औसत स्थिति ली जाय तो २५०० ई० पू० के दो-चार हजार वर्ष इधर या इतना ही उधर से भी काम चल जायगा ।

★ वैदिक काल मे वेध

अत मे, इस पर भी जोर दिया गया है[३], यद्यपि दिशा ज्ञात करने के सबध मे नही, कि वैदिक काल के हिंदू ज्योतिषी अच्छे वेधककर्ता न थे, क्योकि वे वर्ष मे दिनो की सख्या को भी ठीक-ठीक न नाप सके थे, यहाँ तक कि वेदाग-ज्योतिष में भी वर्ष में ३६६ दिन माने गये हैं और सूर्य-सिद्धात तक मे अयन का ज्ञान नही

१ वही, ३८ ।

२. ए हिस्ट्री ऑव इडियन लिटरेचर, श्रीमती केतकर द्वारा अनुवादित, १, २९८ । विंटरनिट्स के अर्थ की आलोचना सेनगुप्त ने भी की है . आई० एच० क्यू०, १० (१९३४), ५३९ ।

३. मैकडॉनेल और कीथ वेदिक इंडेक्स, १।४२३-२४ ।

है । परन्तु यदि ये सब आक्षेप ठीक भी हों[1], तो इनसे यह नहीं समझा जा सकता कि पूर्व दिशा ज्ञात करना, जो अपेक्षाकृत अति सरल है, वैदिक कालीन आर्यों को ठीक-ठीक न आता था । यदि कोई व्यक्ति सदा एक ही स्थान से वेध करे[2] (स्मरण रहे कि यज्ञ के लिए प्राचीन समय में वेदी नियत स्थान में बनी ही रहती थी) और क्षितिज मील भर पर या अधिक दूरी पर रहे (जैसा भारतवर्ष मे साधारणत: रहता है), तो उदित होते समय सूर्य या चमकीले तारे की दिशा बिना किसी यन्त्र के ही कम-से-कम आधे अश (डिगरी) तक ज्ञात तो की ही जा सकती है ।[3] इसमे भी सदेह नही कि क्षितिज के उस बिंदु को ध्यान से देखा जाता था जहाँ सूर्य का उदय होता था, क्योकि कौषीतकी-ब्राह्मण में इस बिंदु के उत्तर-दक्षिण हटने का सूक्ष्म वर्णन है ।[4] वहाँ बताया गया है कि किस प्रकार यह बिंदु दक्षिण हटता है, फिर कुछ समय तक स्थिर जान पडता है और तब उत्तर जाता है । यदि सूर्योदय के उन दो बिदुओ को देख लिया जाय, जो महत्तम उत्तर और महत्तम दक्षिण की ओर रहते है, और क्रियात्मक ज्यामिति[5] से, या दिनो की सख्या गिनकर, या केवल अनुमान से ही, पूर्व दिशा का निर्धारण किया जाय तो इस निर्धारण में एक-दो

१ देखो बार्हस्पत्य (छोटेलाल), ज्योतिष वेदाग (१९०७), १९, जहाँ उन्होने सिद्ध किया है कि ३६६ दिन विशेष प्रयोजन से चुना गया था । फिर, सूर्य सिद्धान्त मे अयन की चर्चा है (३।९) और जितना लिखा है उस समय के लिए पर्याप्त था, परंतु गुरुत्वाकर्षण न जानने के कारण सूर्य-सिद्धान्त यह नहीं बता सकता था कि सुदूर भविष्य में क्या होगा ।

२ तीस फुट इधर-उधर हटने से कोई हानि न होगी । यदि क्षितिज एक मील पर हो तो इतने से एक-तिहाई अश (डिगरी) से कम का अंतर पड़ेगा और यदि क्षितिज अधिक दूरी पर हो तो उसी हिसाब से और कम अतर पड़ेगा ।

३ चद्रमा का व्यास लगभग आधे अंश का है ।

४ १।२।३ ।

५. शुल्व-सूत्र के काल मे पुरोहितो को सरल क्रियात्मक ज्यामिति का अच्छा ज्ञान था । देखो थीबो : दि पंडित, पुरानी श्रेणी, ९ और १० (१८७४-७५), अथवा दत्त : सायंस ऑव दि शुल्व, कलकत्ता, १९३२ । यह तो प्रत्यक्ष ही है कि यह ज्ञान एक-दो वर्ष में उत्पन्न नहीं हुआ होगा । इसलिए बहुत संभव है कि इनमे से कई एक रीतियाँ अति प्राचीन हैं ।

अंश से अधिक की त्रुटि न रहेगी।[1] यह भी संभव है कि शतपथ के काल में शंकु की परछाइयों को प्रातः और संध्या समय ऐसे क्षणों पर देखकर जब वे बराबर रहती हैं उत्तर दिशा को निर्धारित करने की रीति ज्ञात रही हो, और ठीक पूर्व दिशा का निर्धारण किया जा सकता रहा हो। परंतु शंकु के प्रयोग में झंझट रहता है और अधिक समय लगता है, इसलिए सर्वसाधारण के लिए बता दिया गया हो कि कृत्तिकाओं के उदय-बिंदु से शाला की बल्ली को ठीक दिशा में रखो, क्योंकि इस रीति में कोई असुविधा नहीं रहती।

ब्राह्मण ग्रन्थों का काल

हम देखते हैं कि कोई कारण है ही नहीं जिससे शतपथ के वाक्य पर विश्वास करने में बाधा पड़े, और इसलिए यह मानना पूर्णतया न्यायसंगत होगा कि ब्राह्मण ग्रंथों का काल लगभग २५०० ई० पू० है।

यजुर्वेद संहिताओं[2] और ब्राह्मण ग्रंथों[3] में जहाँ कहीं भी नक्षत्रों की सूचियाँ हैं सब कृत्तिका (या कृत्तिकाओं) से आरंभ होती हैं। अवश्य ही इसके लिए कोई कारण होगा। यह कल्पना और भी प्रत्यक्ष तब हो जाती है जब हम विचार करते हैं कि कई बातें जो अन्य देशों में मनमानी रीति से चुन ली गयी थीं भारत में वैज्ञानिक सिद्धांतों पर निर्धारित की गयी थीं। उदाहरणतः, भारत में वर्णमाला बहुत सोच-विचार के बाद स्वर और व्यंजनों को पृथक् करके और उनको उच्चारण के अनुसार क्रमबद्ध करके रखी गयी थी।[4] अन्य देशों की वर्णमाला में यह गुण नहीं पाया जाता। फिर, ऋग्वेद में ऋचाओं का क्रम एक विशेष पद्धति पर है, अनियमित रूप में उनको नहीं रखा गया है।[5] फिर, पंचांग वैज्ञानिक ढंग से बनना

१ पूर्व दिशा के निर्धारण में एक अंश की अशुद्धि से उससे निकाले गये तिथ्यंक में लगभग १७५ वर्ष का अंतर पड़ेगा। इसमें यह मान लिया गया है कि स्थान लगभग २४ अंश के अक्षांश में है।

२ तैत्तिरीय संहिता, ४।४।१०।१-३, मैत्रायणी संहिता,२।१३।२०, काठक संहिता, ३९।१३।

३ तैत्तिरीय ब्राह्मण, १।५।१, ३।१।४।१ और तत्पश्चात्, अथर्ववेद, १९।७।१ और तत्पश्चात्।

४ इसे तो सभी जानते हैं, तो भी देखो मैकडॉनेल ए हिस्ट्री ऑव संस्कृत लिटरेचर, १७।

५ मैकडॉनेल ए हिस्ट्री ऑव संस्कृत लिटरेचर, ४१-४५।

था[1], जिसकी तुलना में वर्तमान यूरोपीय पचांग भी अविकृष्ट जान पड़ता है। वैदिक पचांग में मासो का निर्धारण ठीक-ठीक चद्रमा से होता था और वर्ष का निर्धारण सूर्य से।

अब ध्यान देने योग्य बात है कि कुछ काल बाद अश्विनी नक्षत्र से आरभ करके नक्षत्र-सूचियाँ बनने लगी और यह निश्चित है कि ऐसा इसलिए किया गया कि उस समय विषुव-बिंदु (अर्थात् वह बिंदु जहाँ सूर्य के रहने पर दिन और रात दोनों बराबर होते हैं और वसत की ऋतु रहती है) अश्विनी के आरम्भ मे था।[2] नवीन शैली लगभग छठी शताब्दी ई० मे चली। इससे अवश्य ही यह धारणा होती है कि सभवत पहली सूची भी कृत्तिका से इसलिए आरभ होती थी कि उस समय विषुव-बिंदु कृत्तिका के आरभ मे था। वेबर[3] का भी यही मत है।

यदि वसत का विषुव-बिंदु वही था जहाँ कृत्तिकाएँ थी तो अवश्य ही कृत्तिकाएँ ठीक पूर्व मे उदित होती रही होगी। इसलिए नक्षत्र-सूचियो का कृत्तिकाओ मे आरभ होना शतपथ ब्राह्मण मे कृत्तिकाओ के पूर्व मे उदित होने की बात का पूर्ण समर्थन करता है और हम इससे परिणाम निकाल सकते हैं कि नक्षत्र-सूचियाँ लगभग २५०० ई० पू० मे बनी।[4]

कुछ पाश्चात्य विद्वानो[5] का विश्वास है कि कृत्तिकाएँ नक्षत्र-सूचियो के आरभ मे केवल सयोगवश रखी गयी, या सभवत वे आरभ मे इसलिए रखी गयी कि उनकी पहचान बहुत सरल थी। यह स्वीकार करने मे कि कृत्तिकाएँ और वसत विषुव दोनो साथ थे उन्हे निम्नलिखित आपत्तियाँ है—

१ व्हिटनी, ओरियटल ऐंड लिग्विस्टिक स्टडीज, २।३४५।

२. देखो कोलब्रुक इसेज २।२४६; वेबर · इंडिशे स्टुडीन, १०।२३४।

३. नक्षत्र, २।३६२-३६४, इडिशे स्टुडीन, १०।२३५, इडियन लिटरेचर, २, सख्या २, इत्यादि।

४ देखो वेबर, वही; बूलर, आई ए० २३।२४८, सख्या २०; तिलक : ओरायन, ४० और तत्पश्चात्।

५ थीबो, आई० ए० २४।९६, ओल्डेनबर्ग, जेड० डी० एम० जी०, ४८, ६३१; ४९- ४७३; ५०, ४५१-५२, वेदिशेन नाखरिख्टेन, ६।१९०९, ५६४, कीथ, जे० आर० ए०, एस० १९०९, ११०३; बार्थ, कैलांड के योवर डास रिचुयल सूत्रडेस बोधायन, ३७-३९।

(क) इस बात को स्वीकार करने मे कि कृत्तिकाएँ वसत विषुव पर थी, यह मानना पड़ेगा कि उस समय नक्षत्रो का सबध सूर्य से रहता था, न कि चंद्रमा से।[1] परतु यह स्पष्ट है कि इस कल्पना की आवश्यकता ही नही है। केवल यह मानना पर्याप्त होगा कि चद्रमा और सूर्य दोनो का सबध नक्षत्रो से था। आज भी तो यही बात ठीक है। यह कि प्राचीन समय मे भी सूर्य और नक्षत्रो मे सबध माना जाता था, प्राचीन ग्रथो से सिद्ध किया जा सकता है। जैसा याकोबी[2] ने बताया, नक्षत्रो का देव और यम इन दो वर्गों मे तैत्तिरीय ब्राह्मण[3] का विभाजन इस बात का स्पष्ट प्रमाण है।[4]

इसके अतिरिक्त, तैत्तिरीय ब्राह्मण मे[5] वेध से तारो के बीच सूर्य की स्थिति ज्ञात करने की रीति बतायी गयी है। अवश्य ही, नक्षत्रो और सूर्य के बीच सबध पर विचार उस समय मे किया जाता रहा होगा।

(ख) थीबो[6] का कहना है कि वैदिक साहित्य मे विषुवो की चर्चा कही नही की गयी है और तिलक ने विषुवत का अर्थ जो विषुव लगाया है उसके लिए कोई प्रमाण नही है, पीछे विषुओ को महत्त्व इसलिए दिया जाने लगा कि भारतीय ज्योतिषियो पर यूनानियो का प्रभाव पडा, वेदाग-ज्योतिष मे तारो का भोगाश अयनात से नापा गया था, न कि विषुव से, और यह कि पीछे की नक्षत्र-सूचियाँ विषुव से आरभ हुई थी, कोई कारण नही है कि पहले की भी नक्षत्र-सूचियाँ इसी प्रकार से आरभ होती रही होगी।

यह कहना कठिन है कि इन नकारात्मक तर्कों को कितना महत्त्व दिया जाय, परतु यह स्मरण रखना चाहिये कि याकोबी और तिलक ने विवेचन करके सिद्ध करने की चेष्टा की है कि कृत्तिकाओ से आरभ होने वाली नक्षत्र-सूची पुनर्व्यवस्थित सूची है, और उसमे कृत्तिकाओ को जान-बूझ कर सर्वप्रथम इसलिए रखा गया था कि वे उस समय विषुव पर थी और बूलर[7] का विश्वास है कि याकोबी

१ मैकडॉनेल और कीथ, वेदिक इडेक्स, १।४२१।

२ जेड० डी० एम० जी०, ५०।७२। ३ १।५।२।८।

४ दूसरे मत के लिए देखें ओल्डेनबर्ग जेड० डी० एम० जी०, ३८।६३१।

५ १।५।२।१। तिलक ने अपने ग्रंथ ओरायन में इसका उल्लेख किया है, पृष्ठ १८। ६ आई० ए०, २४।९६।

७ आई० ए०, २३।२३९। इस लेखक के नाम का उच्चारण वस्तुत लगभग बीलर है, परंतु अक्षर-विन्यास के अनुसार लोग इसे साधारणतः बूलर ही लिखते हैं।

और तिलक ने अपना कथन सतोषजनक रीति से सिद्ध कर दिया है कि कृत्तिकाओ से आरभ होने वाली सूची हिंदुओं की प्राचीनतम सूची नही है, इससे भी एक प्राचीन सूची कभी थी जिसमे वसत विषुव पर मृगशिरा था।

(ग) व्हिटनी[1] और थीबो[2] दोनो के मत मे यदि कृत्तिकाएँ नक्षत्रो में सर्व-प्रथम इसलिए रखी गयी थी कि वसत विषुव से उनका सबध था, तो सभवत' वे केवल वसत विषुव के समीप थी, ठीक वसत विषुव पर नही थी। वेदाग-ज्योतिष बताता है कि शिशिर अयनात[3] तब होता है जब सूर्य श्रविष्ठा के आदि बिंदु पर रहता है। इसलिए उस समय कृत्तिकाएँ वसत विषुव से कुल १८ अश पर थी। व्हिटनी और थीबो कहते हैं कि वसत विषुव से कृत्तिकाओ का इतना समीप रहना उनके सर्वप्रथम रखे जाने के लिए पर्याप्त है। इसलिए वे यह मानने के लिए तैयार नही हैं कि नक्षत्र-सूचियाँ अवश्य ही वेदाग-ज्योतिष से पुरानी हैं। 'वेदाग-ज्योतिष' का काल, जैसा हम पहले देख चुके है लगभग बाहरवी शताब्दी ई० पू० है, और, जैसा नीचे बताया जायगा, व्हिटनी और थीबो कहते हैं कि इस दिनाक मे लगभग १००० वर्ष की अशुद्धि हो सकती है। इसलिए वे कहते हैं कि ऐसा हो सकता है कि ब्राह्मण-ग्रथ ८००-६०० ई० पू० से अधिक प्राचीन न हो।[4]

उनका तर्क वस्तुत यह है कि यदि कृत्तिकाएँ वसत विषुव पर रही हो तो भी सभव है कि वेध की सब त्रुटियाँ इस प्रकार एकत्रित हो गयी हो कि जिन वेधो से साधारणत २५०० ई०पू० का समय निकलता उनसे केवल ७००ई० पू० या ऐसा ही कोई दिनाक निकले। यद्यपि सब विपरीत परिस्थितियों के एक ओर जा जुटने की सभावना बहुत ही कम होती है, तो भी यह कहा नही जा सकता कि ऐसा होना पूर्णतया असभव है। परतु स्मरण रखना चाहिए कि ७०० ई० पू० मे कृत्तिकाएँ पूर्व से ११ श हटकर उदित होती थी, और ऐसी परिस्थिति मे अग्निशालाओ की बल्लियो को कृत्तिकाओ की दिशा मे रखने का विचार ही किसी के मन मे न उठता।

★ विवाह-सस्कार का साक्ष्य

कृत्तिकाओ के पूर्व मे उदित होने तथा नक्षत्र-सूचियो में उनके सर्वप्रथम रहने से जो दिनाक प्राप्त होता है उसका समर्थन पूर्णतया स्वतत्र रीति से एक दूसरी

१ ओरियंटल ऐंड लिंग्विस्टिक, स्टडीज २।३८३। २. आई०ए० २४।९७।

३. शिशिर अयनात तब होता है जब रात सब से छोटी होती है। इसके बाद सूर्य उत्तर जाने लगता है और दिन धीरे-धीरे बढ़ना आरंभ करता है।

४. मैकडॉनेल और कीथ : वैदिक इंडेक्स, ४२४।

बान मे होता है। विवाह-सस्कार के वर्णनो मे इस प्रथा का भी उल्लेख मिलता है कि वर, वधू को, स्थैर्य के प्रतीक रूप, ध्रुवतारा दिखाये। सब प्रधान गृह्य सूत्रो मे[१] इस बात का आदेश दिया गया है। इसलिए अवश्य ही यह प्रथा सारे भारत मे प्रचलित रही होगी और इसलिए यह विशेष नवीन प्रथा न रही होगी।[२] ध्रुव शब्द का अर्थ है वह जो अपने स्थान से न हटे। इसलिए अवश्य ही उस काल मे कोई तारा ऐसा रहा होगा जो अपने स्थान से न हटता रहा होगा। परन्तु अयन के कारण ध्रुवतारा कभी रहता है, कभी नही रहता। इसलिए हम यह ज्ञात कर सकते हैं कि पूर्वोक्त प्रथा का आरम्भ कब हुआ होगा।

इस प्रश्नको अच्छी तरह समझने के लिए यह स्मरण रखना चाहिये कि वह गणितीय बिंदु जिसके परित आकाश के सब तारे चक्कर लगाते हैं, ध्रुव कहलाता है, और अयन के कारण यह बिंदु तारो के बीच धीरे-धीरे चलता रहता है (आगे दिया गया चित्र देखे जहाँ "ध्रुव का मार्ग" अकित है)। जब कभी यह बिंदु किसी चमकीले तारे के पास रहता है तो हम उस तारे को ध्रुव-तारा (या सक्षेप मे केवल ध्रुव) कहते हैं। अब महत्त्वपूर्ण बात यह है कि तीसरी श्रेणी[३] का प्रथम कालिय (एल्फा ड्रैको-निस) नामक तारा गणितीय ध्रुव से निकटतम लगभग २७८० ई० पू०[४] मे था। इस दिनाक के लगभग ढाई सौ वर्ष इधर या उधर तक यह तारा गणितीय ध्रुव के इतना समीप था कि हम उस समय का उसे ध्रुव-तारा मान सकते है। २००० ई० पू० से लेकर ५०० ई० तक कोई भी चमकीला तारा—पाँचवी श्रेणी का या इससे अधिक चमकीला -गणितीय ध्रुव के इतना समीप नही था कि उसे ध्रुव-तारा कहा जा सकता[५]। पाँचवी श्रेणी के या अधिक चमकीले तारो मे से केवल

१ पारस्कर गृह्य सूत्र, १।८।१९, आपस्तब गृह्य सूत्र, २।६।१२, हिरण्यकेशी गृह्य सूत्र, १।२२।१४, मानव गृह्य सूत्र, १।१४।९, बोधयान गृह्य सूत्र, १।५।१३; गोभिल गृह्य सूत्र, २।३।८। २ याकोबी जे० आर० ए०एस० (१९१०), ४६१।

३ आकाश के सबसे अधिक चमकीले तारे प्रथम श्रेणी के माने जाते है, उनसे कम चमकीले तारे द्वितीय श्रेणी के, इत्यादि। वे तारे जो मदतम हैं परन्तु आँख से दिखा ई पड़तेहैं छठी श्रेणी के कहे जाते हैं। वर्तमान ध्रुव-तारा द्वितीय श्रेणी का है। ४ याकोबी, आई० ए०, २३।१५७।

५ पूर्वोक्त चित्र से यह बात स्पष्ट हो जायगी। उसमें तारों के सापेक्ष ध्रुव का मार्ग दिखाया गया है। ध्रुव एक पूरा चक्कर लगभग २६००० वर्ष में लगाता है। यह चित्र नॉरटन के स्टार एटलस (गैल और इगलिस) के आधार पर खींचा गया है।

एक तारा इस दीर्घकाल मे गणितीय ध्रुव के कुछ पास आया[1], परन्तु निकटतम पहुँचने पर भी वह ध्रुव से लगभग पाँच अंश पर था। यह सन् १३०० ई० पू० की बात है। लोगो ने देखा होगा कि एक रात्रि मे वह तारा अपने उच्चतम स्थान से १० अंश नीचे उतर आता है।[2] इतनी दूर तक हटने की उपेक्षा लोगो ने कैसे की होगी, विशेष कर उत्तर प्रदेश के आर्यों ने, जहाँ ध्रुव की क्षितिज से ऊँचाई कुल २५ अंश है। इससे स्पष्ट है कि यदि हम क्षीणतम तारो की उपेक्षा करे, अर्थात् उन तारो मे से किसी एक को ध्रुवतारा न माने जो इतने मंद प्रकाश के है कि बस दिखाई भर पड जाते हैं, तो इसके अतिरिक्त और कोई विकल्प नही है कि माना जाय कि विवाह की पूर्वोक्त रीति लगभग २७८० ई० पू० मे प्रचलित हुई होगी, जब आकाश मे वस्तुत कोई ध्रुवतारा रहा होगा। ध्यान देने योग्य बात यह है कि यह दिनांक अन्य तर्कों से निकाले गये दिनांक के अनुकूल ही है। याकोबी का भी यही मत है।[3]

इस मत के विरोधी[4] कहते हैं कि हो सकता है कि पूर्वोक्त रीति, जिसका सर्वप्रथम उल्लेख गृह्य सूत्रो मे आया है, बहुत प्राचीन न हो, क्योकि विवाह-संस्कार के लिए किसी भी तारे से काम चल जायगा जो गणितीय ध्रुव से बहुत दूर न रहा हो। परतु यह बात न्यायसंगत नहीं जान पडती, क्योकि बहुत मंद तारा या गणितीय ध्रुव से कुछ दूर पर स्थित तारा कभी लोगो का ध्यान इतना आकर्षित ही न करता कि लोग उसे ध्रुव कहते और विवाह के अवसर पर उसे देखने-दिखाने की आवश्यकता समझते। यहाँ यह भी कह देना उचित होगा कि २७८० ई० पू० के कई हजार वर्ष पहले तक कोई भी चमकीला तारा गणितीय ध्रुव के इतना समीप नही था कि उसे ध्रुव-तारा कहा जा सकता।[5]

१ याकोबी आई० ए० २३।१५७।

२ "सन् १३०० ई० पू०" वाले ध्रुव-तारे के चित्र मे एक विमरात में इसका मार्ग दिखाया गया है। उसके पहले वाले चित्र मे वर्तमान ध्रुवतारे का मार्ग दिखाया गया है। ये दोनों चित्र मोटे हिसाब से पैमाने के अनुसार बने हैं (इन चित्रो मे द्रष्टा का अक्षांश २५° मान लिया गया है)।

३. आई० ए० २३।१८७; जे० आर० ए० एस० (१९१०) ४६१।

४. मैकडॉनेल और कीथ, वैदिक इंडेक्स, १।४२७।

५ "ध्रुव का मार्ग" वाला चित्र देखें, अथवा मोल्टन: ऐन इन्ट्रोडक्शन टू ऐस्ट्रॉनोमी, मानचित्र १ देखें।

★ अन्य उल्लेख

अन्य कई ऐसे उल्लेख हैं जिनका ज्योतिष से सबंध है और जिनसे काल का ज्ञान हो सकता है, परतु दुर्भाग्यवश वे सभी थोडे-बहुत अधूरे हैं और प्रत्येक के दो अर्थ लगाये गये हैं। एक अर्थ तो वेबर, याकोबी, बूलर, बार्थ, विंटरनिट्स, पूसिन[१], तिलक, दीक्षित इत्यादि ने लगाया है, जिससे २००० ई० पू० से लेकर ६००० ई० पू० तक का काल प्राप्त होता है, और दूसरा अर्थ व्हिटनी, ओल्डेनबर्ग, थीबो, कीथ और दूसरो ने लगाया है और उसके अनुसार वैदिक साहित्य बहुत प्राचीन नही है। सक्षेप मे, उल्लेख निम्नलिखित हैं—

ब्राह्मण ग्रथो के समय मे फाल्गुन का महीना वर्ष का आरभ माना जाता रहा होगा, क्योकि कई स्थानो पर फाल्गुन की पूर्णिमा को वर्ष का मुख कहा गया है[२]। काल-निर्णय के लिए इस कथन मे कमी यह है कि पता नही वर्ष का आरभ किस ऋतु मे तब होता था। याकोबी[३] का कहना है कि वर्ष आरभ करने की तीन वैकल्पिक प्रथाएँ थी, जिनमे से एक यह थी कि वर्ष शिशिर अयनात से आरभ होता था। पीछे ऐसी प्रथा थी इसमे कोई सदेह नही है[४] और अवश्य ही यह प्रथा पहले से चली आयी होगी। इसे सत्य मान कर गणना करने पर ब्राह्मण ग्रथो का काल लगभग ४००० ई० पू० निकलता है। तिलक[५] का मत भी यही है, परतु ओल्डेनबर्ग[६] और थीबो[७] का कहना है कि फाल्गुन को वर्ष का मुख इसलिए कहा गया होगा कि यह वसत ऋतु का प्रथम मास था[८], उनका कहना है कि प्राचीन

१ लुई डि ला वॅलो पूसिन वेदिस्मे, पेरिस १९०९, जिसका उल्लेख जे० आर० ए० एम० (१९०९) ७२१ मे है।

२ तैत्तिरीय सहिता, ७।४।८।१-२, पंचविंश ब्राह्मण, ५।९।९, इत्यादि।

३ आई० ए०, २३।१५६, जेड० डी० एम० जी०, ४९।२२३, ५०।७२-८१।

४ शिशिर अयनांत से वेदांग-ज्योतिष के पंचवर्षीय युग का भी आरभ होता था और इस युग का प्रथम वर्ष भी इसी क्षण से आरभ होता था। देखें वेदांग-ज्योतिष, यजु०, ५। ५ ओरायन, २७।

६ जेड० डी० एम० जी०, ४८, ६३० और तत्पश्चात्, ४९,४७५-७६; ५०, ४५३-५७। ७ आई० ए०, २४।८६।

८. देखें वेबर, नक्षत्र, २।३२९ और तत्पश्चात्; इससे तुलना करो शतपथ ब्राह्मण, १।६।३।३६, कौषीतकी ब्राह्मण,५।१। अन्यत्र भी ऐसे ही उल्लेख हैं। पूर्ण विवरण के लिए देखें वैदिक इंडेक्स, १।४२५।

समय में वर्ष को चातुर्मास्यों[1] के अनुसार तीन ऋतुओं में विभक्त करने की भी प्रथा थी, इस प्रथा मे एक ऋतु वसत थी। उनका यह भी कहना है कि यह मत 'कौषीतकी ब्राह्मण'[2] के कथन के अनुकूल है जो यह बताता है कि शिशिर अयनात माघ की पूर्णिमा पर होता था और यही बात 'वेदाग-ज्योतिष'[3] में भी है। यद्यपि यह निश्चित नहीं है कि सौर वर्ष के किस दिनांक से वसत वस्तुत आरभ हुआ करता था, तो भी उत्तर भारत की ऋतुओ पर विचार करके थीबो ने इसे लगभग ७ फरवरी को माना है। इस कल्पना के अनुसार ब्राह्मणो का काल लगभग बारहवी शताब्दी ई० पू० निकलता है।

बात यही नही समाप्त होती। 'तैत्तिरीय सहिता'[4] तथा 'ताण्डय ब्राह्मण'[5] के उन स्थानो मे, जहाँ गवाम्-अयन यज्ञ के आरभ का दिनाक दिया गया है और फाल्गुन को वर्ष का मुख कहा गया है, आरभ के लिए दो दिनाक बताये गये हैं—चैत्र की पूर्णिमा और एक विशेष पूर्णिमा के चार दिन पहले, परतु यह नही बताया गया है कि वह विशेष पूर्णिमा कौन-सी है।

★ तिलक का मत

तिलक[6] और याकोबी[7] यह मान लेते है कि यज्ञ के आरभ के लिए तीन दिनाक सभव थे और वर्ष का आरभ इन तीनो दिनाको से होता था, परतु विभिन्न कालो में और प्रत्येक काल मे वर्ष का आरभ शिशिर अयनात से होता था। इस कल्पना के अनुसार तिलक और याकोबी दोनो यह कहते हैं कि पूर्वलिखिति वर्षारभ, अर्थात् चैत्र की पूर्णिमा से वर्षारभ, प्राचीनतर काल का अवशेष है। उस प्राचीनतर काल मे चैत्र-पूर्णिमा से वर्ष का आरभ इसलिए होता था कि चैत्र-पूर्णिमा शिशिर अयनात पर होती थी। इस कल्पना से समय ६००० ई० पू० निकलता है। मीमासाकारो[8] से सहमत होकर तिलक यह भी कहते हैं कि पूर्णिमा के चार दिन पहले का अर्थ माघ की पूर्णिमा के चार दिन पहले है, इसलिए यह मानना होगा कि जब वर्ष माघ की पूर्णिमा के चार दिन पहले आरभ होता था तो शिशिर अयनात लगभग उसी समय होता था। यह बात इसके अनुकूल है कि

१. तैत्तिरीय सहिता, १।६।१०।३, तैत्तिरीय ब्राह्मण, १।४।९।५, २।२।२।२; इत्यादि। २. १९।२।३।

३. वेदांग-ज्योतिष, यजु०, ५-६। ४. ७।४।८।१। ५. ५।९। ६. ओरायन, अध्याय ४। ७. आई० ए०, २३।१५६। ८. जैमिनि, ६।५।३०-३७; इत्यादि; देखो ओरायन, ५२ और तत्पश्चात्।

तब कृत्तिकाएँ वसंत विषुव पर थीं, और इसलिए इससे समय २५०० ई० पू० निकलता है।

परंतु थीबो का कहना है कि इस प्रकार का अर्थ लगाना व्यर्थ है; एक ही समय में किसी प्रदेश में वर्ष किसी दिनांक से आरंभ होता रहा होगा, अन्यत्र किसी अन्य दिनांक से।[1]

प्राप्य सामग्री से निश्चित रूप से पता चलाना कि सच्ची बात क्या है असंभव जान पड़ता है। जब एक ही बात से इतने विभिन्न दिनांक निकाले जाते हैं, और दोनों ओर तर्कसंगत बातें कही जाती हैं तब यही स्वीकार करना उचित जान पड़ता है कि वह सामग्री दिनांक निकालने के लिए पर्याप्त नहीं है।

★ आग्रहायण

लोग यह भी मानते हैं कि वर्ष का आरंभ कभी मार्गशीर्ष से भी हुआ करता था, क्योंकि इस मास का दूसरा नाम आग्रहायण[2] है (जिससे ही इसे हिंदी में अगहन कहते हैं) 'आग्रहायण' का अर्थ है वर्ष का अग्र (आरंभ)। परंतु इससे भी कोई निश्चित दिनांक नहीं निकाला जा सकता, क्योंकि इसका पता नहीं है कि जब अगहन से वर्ष का आरंभ होता था तब आकाश में सूर्य तारों के सापेक्ष कहाँ रहता था, या दूसरे शब्दों में, ऋतु क्या रहती थी। याकोबी[3] और तिलक[4] का कहना है कि तब सूर्य शरद विषुव पर रहता रहा होगा, क्योंकि यह शिशिर अयनांत पर फाल्गुनी पूर्णिमा होने के अनुकूल है (जिससे समय लगभग ४००० ई० पू० निकलता है)। परंतु थीबो[5] का कहना है कि यह तृतीय चातुर्मास्य का आरंभ होगा, क्योंकि चातुर्मास्यों के अनुसार भी ऋतुओं के नामकरण की प्रथा का उल्लेख मिलता है। उनका यह भी कहना है कि याकोबी की आपत्ति में कि वर्ष तृतीय अर्थात् अंतिम चातुर्मास्य से कभी न आरंभ होता रहा होगा कोई विशेष तथ्य नहीं है।

★ अध्ययन का आरंभ

याकोबी[6] ने बताया है कि वेद का अध्ययन तब आरंभ होता था जब घास पहली बार उगने लगती थी, अर्थात् वर्षा ऋतु के प्रथम मास में। 'पारस्कर गृह्य

१ आई० ए० २४।९४। २ थीबो, आई० ए० २४।९४-९५; वेबर, २।३३२ और तत्पश्चात्। ३ आई० ए० २३।१५६। ४ ओरायन, ६२ और तत्पश्चात्। ५. आई० ए० २४।९४-९५। ६ आई० ए० २३।१५५।

सूत्र'[1] में श्रावण की पूर्णिमा को उपाकरण संस्कार[2] के लिए नियत किया गया है और २००० ई० पू० में श्रावण ही वर्षा का प्रथम मास था। परन्तु 'गोभिल गृह्य-सूत्र'[3] मे वही संस्कार प्रौष्ठपद की पूर्णिमा पर करने का आदेश है। (प्रौष्ठपद प्राचीन काल मे भाद्रपद को कहते थे।) यह ज्ञात है कि पाठशालाएँ श्रावण की पूर्णिमा को खुलती थी। इसलिए भाद्रपद मे उपाकरण करने की बात उस प्राचीन काल से चली आयी होगी जब भाद्रपद ही वर्षा-ऋतु का प्रथम मास रहा होगा, और ऐसा ४००० ई० पू० मे होता था। परतु ह्विटनी[4] और अन्य विद्वान् इसे स्वीकार नही करते। उनका कहना है कि वर्षा ऋतु और विद्यारभ मे सबध रखना आवश्यक न था, परतु बूलर[5] का मत वही है जो याकोबी का।

★ ग्रीष्म अयनात

(४) सभी जानते है कि उत्तर भारत मे वर्षा ऋतु ग्रीष्म अयनात से आरभ होती है। ऋग्वेद[6] मे एक ऋचा है जो, याकोबी[7] के अनुसार, यह बताती है कि ऋग्वेदीय काल मे वर्ष का आरभ वर्षा ऋतु से होता था। वर्षा ऋतु स वर्ष के आरभ होने का समर्थन वर्ष नाम से भी होता है, क्योंकि यह वर्षा से प्रत्यक्षत सबधित है। वर्ष को अब्द भी कहते है जिसका अर्थ है जल देने वाला। फिर, ऋग्वेद की एक अन्य ऋचा[8] से याकोबी ने यह परिणाम निकाला है कि वर्ष का आरभ तब होता था जब पूर्णमासी का चद्रमा फाल्गुनी मे रहता था। इन दोनो ऋचाओ मे यह फल निकलता है कि वैदिक काल मे शिशिर अयनात पर फाल्गुन वाली पूर्णिमा होती थी, और, जैसा ऊपर बताया गया है, इससे समय ४००० ई० पू० निकलता है। परतु याकोबी ने प्रथम ऋचा के द्वादश का अर्थ लगाया है बारहवाँ महीना, और दूसरो ने[9] इसका अर्थ लगाया है वह जिसके बारह भाग हो, अर्थात् वर्ष, और यद्यपि याकोबी ने व्याकरण से नियम उद्धृत करके दिखाया है कि बारहवाँ महीना अर्थ लगाना अधिक उपयुक्त है, और उन्हे वर्ष और अब्द से भी सहायता मिलती है, तो भी इस तर्क पर बहुत भरोसा नही किया जा सकता,

१ २।१०। २ अर्थात् वेदपाठ आरम्भ करने का सस्कार। ३. ३।३।
४. जे० ए० ओ० एस०, २६।८४ और तत्पश्चात्।
५. आई० ए० १३।२४२ और तत्पश्चात्। ६. ७।१०३।९।
७. आई०ए०, २३।१५४। ८. १०।८५।१३।
९. केगी और गेल्डनर, ग्रासमान इत्यादि।

क्योंकि विद्वानो मे मतभेद है और कुल एक शब्द के अर्थ बदल देने से परिणाम पूर्णतया बदल जाता है।[1]

★ शिशिर अयनांत

(५) 'कौषीतकी ब्राह्मण'[2] स्पष्ट रूप से बताती है कि शिशिर अयनांत माघ की अमावस्या पर होता था। यह काल-निर्णय के लिए बहुमूल्य होता, परतु एक बात ऐसी है जिसमे हम इसका उपयोग नही कर पाते हैं हमे यही नही ज्ञात है कि माघ की अमावस्या से क्या अभिप्राय था। पता नही कि उस समय मास अमावस्या पर समाप्त होता था (अमात पद्धति) या पूर्णिमा पर (पूर्णिमान पद्धति)। टीकाकरो[3] का विश्वास था कि मास का अत पूर्णिमा से होता था और इसलिए माघ अमावस्या वह अमावस्या होगी जो मघा नक्षत्र मे होने वाली पूर्णिमा के पहले होती थी। परतु इसका भी साक्ष्य है कि अमात पद्धति ही अधिक प्रचलित थी। कारण यह है कि शुक्ल पक्ष को पूर्व पक्ष (पहले आने वाला पक्ष) कहा जाता था

१ जिस सूक्त मे यह ऋचा है वह मेढको के बारे मे है। सदर्भ समझाने के लिए दो पूर्वगामी ऋचाओ का अर्थ नीचे दिया जाता है

"एक वर्ष का अत करने वाले स्तोता की तरह वर्ष भर तक सोये हुए रह कर मडूक (मेढक) मेघ के आने पर हर्षनाद करते हैं।"

"मेढकों मे किसी की ध्वनि गौ की तरह है और किसी की बकरे की तरह, कोई धूम्र वर्ण का है, कोई हरे रग का। नाम तो सबका एक है, किन्तु रूप नाना प्रकार के है। ये अनेक देशों मे ध्वनि करते हुए प्रकट होते है।"

विवादग्रस्त ऋचा यो है—

देवहिति जुगुपुर्द्वादशस्य ऋतु नरो न प्रमिनन्त्यते।
सवत्सरे प्रावृष्यागतायां तप्ता घर्मा अश्नुवते विसर्गम् ॥ ९ ॥

अर्थ—मडूक दैवी नियम की रक्षा करते हैं। वे वर्ष की [या बारहवें महीने की ?] ऋतु की अवहेलना नही करते। [एक] वर्ष पूरा होने पर, वर्षा ऋतु के [फिर] आने पर, ग्रीष्म के ताप से पीडित मडूक गड्ढो के बधन से छूटते हैं।

२. १९। ३। इसकी चर्चा पहले-पहल वेबर ने की, देखो "नक्षत्र", २। ३४५ और तत्पश्चात्।

३ कौषीतकी ब्राह्मण पर विनायक की टीका, अथवा शांखायन श्रौत सूत्र पर आनर्तीय की टीका, १३। १९। १।

और कृष्ण पक्ष को अपर पक्ष।[1] अब यदि माना जाय कि उस समय मास अमांत होते थे तो माघ की अमावस्या वह होगी जो मघा नक्षत्र की पूर्णिमा के बाद पड़ती है और इस समय शिशिर अयनांत मानने से प्राप्त दिनांक 'ज्योतिष-वेदांग' के दिनांक से लगभग १९०० वर्ष अधिक प्राचीन हो जाता है, अर्थात् हमें तब ३१०० ई० पू० से प्राप्त होता है।[2]

परन्तु यदि माना जाय कि उस समय पूर्णिमांत पद्धति प्रचलित थी तो माघ की अमावस्या का अर्थ होगा वह अमावस्या जिसे अमात पद्धति मे पौष की अमावस्या कहते हैं[3], और तब परिस्थिति वह हो जाती है जो 'वेदाग-ज्योतिष' मे बतायी गयी है, और उससे समय लगभग १२०० ईसवी पूर्व निकलता है। कुछ विद्वान् पूर्णिमात पद्धति को ही अधिक सभव मानते हैं, क्योकि टीकाकारो की भी वही सम्मति है। फिर, जैसा थीबो ने बताया है, 'कौषीतकी ब्राह्मण' के समय मे हो सकता है कि अमावस्या का अर्थ ठीक-ठीक वही न रहा हो जो पीछे लगाया जाने लगा, अर्थात् वह तिथि जिसका अत चद्रमा और सूर्य की सयुति पर होता है। हो सकता है कि मास अमावस्या से आरभ होता रहा हो, और यह भी हो सकता है कि माघ की अमावस्या का अर्थ रहा हो वह अमावस्या जिससे माघ का महीना आरभ हुआ, अर्थात् मघा मे होने वाली पूर्णिमा से पहले वाली अमावस्या। परतु यदि हम इस बात को स्वीकार भी कर ले तो यह मानना आवश्यक नही है कि 'कौषीतकी ब्राह्मण' और 'वेदाग-ज्योतिष' ठीक समकालीन हैं। 'वेदाग-ज्योतिष' का कथन पूर्णतया निश्चित है, वहाँ जो लिखा है उसका अर्थ है कि शिशिर अयनात तब होता है जब सूर्य रविमार्ग के उस सत्ताइसवे भाग के प्रथम बिंदु पर रहता है जिसका नाम श्रविष्ठा है। इसके विपरीत, 'कौषीतकी ब्राह्मण' का कथन ऐसा है जो एक वर्ष से अधिक के लिए पूर्णतया सत्य नही हो सकता था। कारण यह है कि यदि किसी वर्ष शिशिर अयनात ठीक माघ की अमावस्या पर होता तो आगामी वर्षों मे यह ठीक माघ की अमावस्या पर हो नही सकता था।

१. देखो वेदिक इंडेक्स, २। १५८, जहाँ पूर्ण विवरण मिलेगा।

२ कीथ के अनुसार कौषीतकी ब्राह्मण का लगभग वही काल है जो शतपथ का है या उससे थोड़े ही समय पहले का है (एच० ओ० एस०, २५।४७।४८)। परन्तु सम्भव है कि यह वाक्यशेष कौषीतकी ब्राह्मण से पहले का हो।

३ थीबो के लेख से तुलना करो : आई० ए०, २४।८९।

आगामी वर्ष मे यह लगभग ११ दिन पिछड कर होता, एक वर्ष और बीतने पर यह माघ की अमावस्या हो जाने के २२ दिन बाद होता। फिर, बीच में अधिमास लग जाने से आगामी वर्ष माघ की अमावस्या के तीन दिन पहले होता, तब आगामी वर्ष मे ८ दिन का अतर पडता, और इसी प्रकार आगामी वर्षों मे भी कुछ न कुछ अतर पडा करता। प्रत्यक्ष है कि 'कौषीतकी ब्राह्मण' का कथन केवल स्थूल रूप से शुद्ध है और इस इच्छा के रहने पर कि शिशिर अयनात तथा कोई अमावस्या साथ पडे (क्योकि धार्मिक दृष्टिकोण से यह महत्त्वपूर्ण है), 'कौषीतकी ब्राह्मण' ने कह दिया हो कि शिशिर अयनात माघ की अमावस्या पर पडता है, यद्यपि शिशिर अयनात और औसत माघी अमावस्या मे कुछ दिनो का अतर रहा हो। इसके अतिरिक्त 'वेदाग-ज्योतिष' के दिनाक मे एक हजार वर्षों की अनिश्चितता बतायी जाती है[1], इसलिए पूर्वोक्त विवेचनो के आधार पर निकाले गये कौषीतकी ब्राह्मण के दिनाक मे कम-से कम उतनी ही अनिश्चितता होगी।[2] फिर, निश्चित रूप से 'कौषीतकी' और 'शतपथ' ब्राह्मणो के सापेक्षिक दिनाक ज्ञात नही है, और इनमे मे एक भी समूचा एक ही समय की रचना नही है। इसलिए 'कौषीतकी ब्राह्मण' के कथन से कोई ध्वनि ऐसी नही निकलती जो 'शतपथ ब्राह्मण' तथा अन्य पुस्तको से निकाले गये दिनाक से बेमेल पडे।

★ वेदाग-ज्योतिष मे शिशिर अयनात

'वेदाग-ज्योतिष' मे शिशिर अयनात की स्थिति श्रविष्ठा का आदि-बिंदु बतायी गयी है।[3] वेदाग-ज्योतिष का दिनाक जानने के लिए इतना पर्याप्त है। परतु इसमें भी कुछ अनिश्चितता हैं, क्योकि ठीक-ठीक यह ज्ञात नही है कि श्रविष्ठा का आदि-बिदु कहाँ था। इसलिए विविध विद्वानो ने विविध दिनाक निकाले हैं। जोन्स[4] और प्रैट[5] ने ११८१ ई० पू० निकाला है, परतु डेविस[6] और कोलब्रुक[7] ने १३९१ ई०

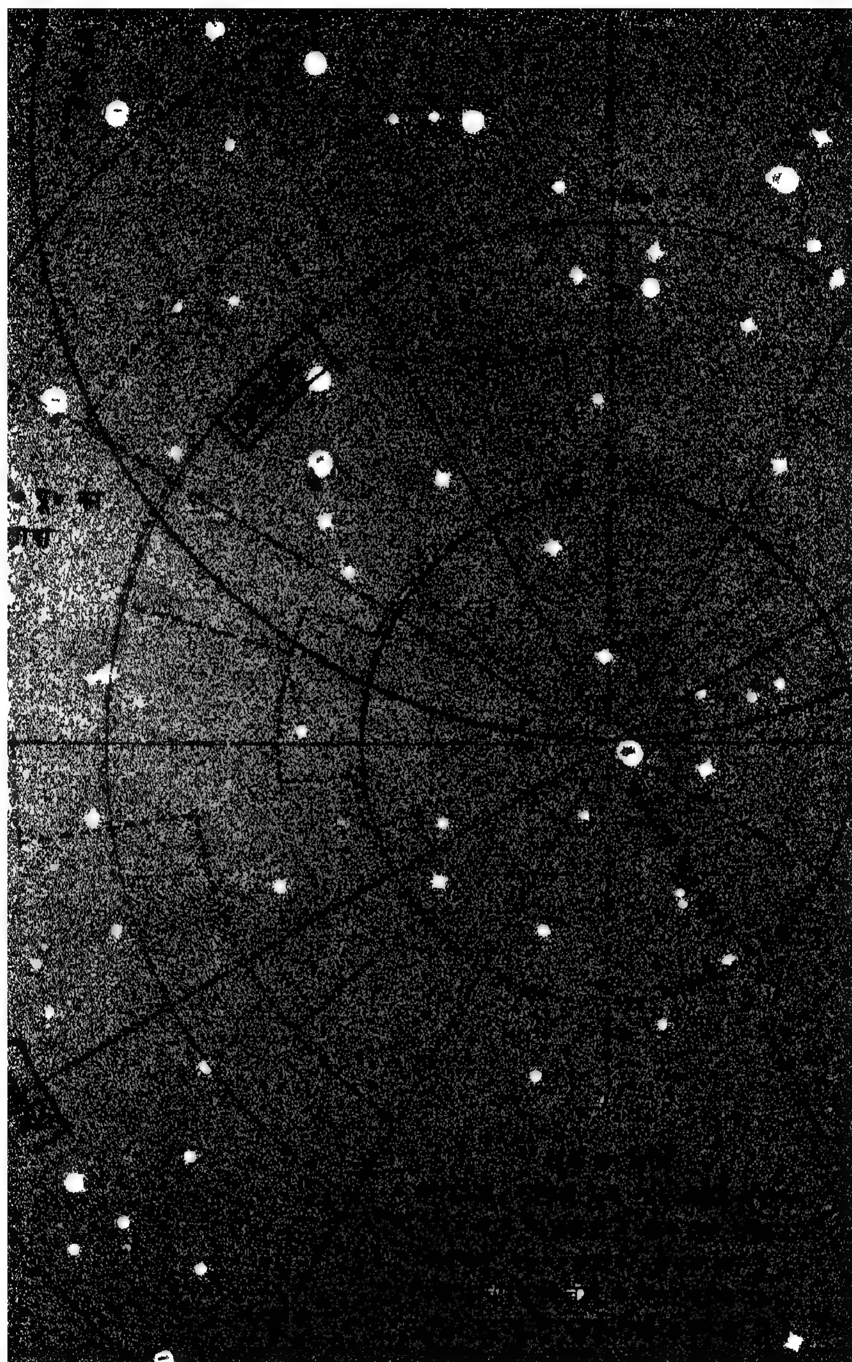
१. ह्विट्नी, ओरियण्टल ऐण्ड लिंग्विस्टिक स्टडीज, २।३८४, थीबो, आई० ए०, २४।९८, इत्यादि। १००० वर्ष की अनिश्चितता अवश्य ही अतिशयोक्ति है।

२ इस सम्बन्ध मे देखें गोरखप्रसाद, जनरल ऑव दि बिहार ऐण्ड उड़ीसा रिसर्च सोसायटी, २१ (१९३५), सख्या ३। ३. वेदांग-ज्योतिष, यजु०, ७।

४ एशियाटिक रिसर्चेज, २।३९३। ५ जे० ए० एस० बी०, ३१।४९।

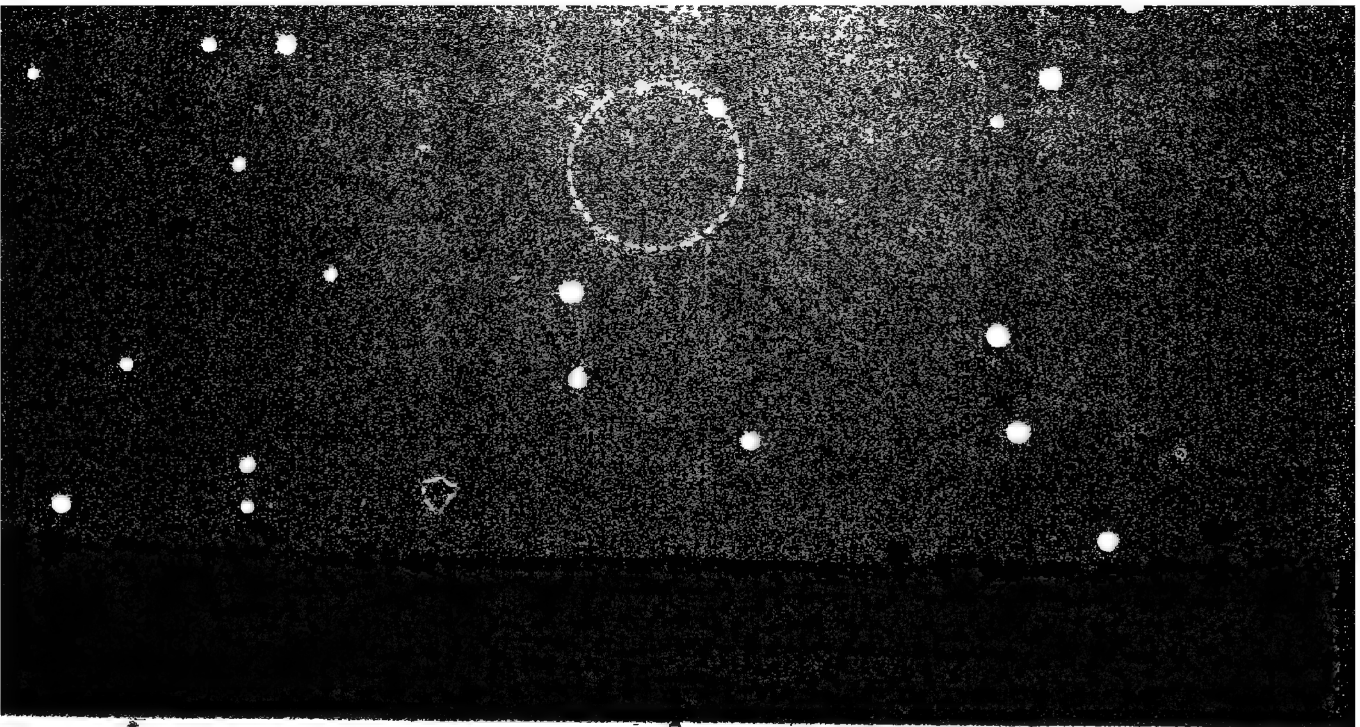
६ एशियाटिक रिसर्चेज, २।२६८, ५।२८८।

७ इसेज, १।१०९-१०।



वर्तमान ध्रुव तारा

वर्तमान ध्रुव-तारा पूर्णतया अचर नहीं है। यह बहुत छोटे वृत्त में प्रति दिन एक चक्कर लगाता है।



सन् १३०० ई० पू० में ध्रुव-तारा

गणितीय ध्रुव से समीपतम तारा बहुत फीका था और प्रति दिन इतने बड़े वृत्त में चलता था कि कोई उसे ध्रुव नहीं मान सकता था ।

पू० निकाला है, अन्य विद्वानो के दिनाक भी इसी प्रकार के हैं। छोटेलाल[1] का मत है कि निस्संदेह वेदांग-ज्योतिष के वेध सन् १०९८ ई० पू० के जाडे मे लिये गये थे, परतु उन्होने उस समय बृहस्पति ग्रह के सबध मे अति विवादग्रस्त कथन का आश्रय लिया है और इसलिए उनकी गणना पर विशेष भरोसा नहीं किया जा सकता। इन विवेचनो से प्रत्यक्ष है कि हम सभवतः ठीक-ठीक दिनाक ज्ञात नही कर सकते हैं, परतु इतना निश्चित है कि बारहवी शताब्दी ई० पू० 'वेदाग-ज्योतिष' के वेधो के दिनाक से बहुत दूर नही है। सभी मानते है कि वेदांग-ज्योतिष की रचना ब्राह्मण ग्रथो के बाद हुई[2], इसलिए अन्य आधारो पर निकाले गये दिनाक का इन विवेचनो से समर्थन ही होता है।

* साराश

यदि हम इस सभावना का बहिष्कार करे कि वैदिक साहित्य मे केवल बहुत पहले की ही सुनी-सुनाई बातो का सग्रह है—और ऐसा होना प्राय असभव जान पडता है—तो कहा जा सकता है कि इस साहित्य मे प्रबल प्रमाण है कि वेद २५०० ई० पू० से पहले के है। उनका काल ४००० ई० पू० हो सकता है, इसके लिए *कुछ प्रमाण भी है, परतु वह ऐसा नही है कि उससे पूर्णतया सतोष हो जाय।* साथ ही यह भी है कि इस दिनाक के विरुद्ध कोई प्रमाण नही है।

१ ज्योतिष-वेदांग, इलाहाबाद, ८३।
२ थीबो : ऐस्ट्रानोमी, ऐस्ट्रालोजी उण्ड मैथिमेटीक, १९–२०।

७

महाभारत में ज्योतिष

★ समय की बडी इकाइयाँ

महाभारत मे ज्योतिष विषयो की चर्चा कई स्थानो पर है, जिन पर विचार करने से पता चल सकता है कि उस समय मे ज्योतिष का कितना ज्ञान था।

महाभारत मे समय की बडी इकाइयो के नाम और सबध वे ही है जो मनुस्मृति मे है। विश्व के जीवन-काल को चार युगो मे बाँटा गया है जिनके नाम कृत, त्रेता, द्वापर और कलि है। हम कलियुग मे है, अन्य तीन युग बीत चुके है। कलियुग के अत मे प्रलय होगी और तब नयी सृष्टि होगी—ऐसा मनुस्मृति, पुराण और महाभारत आदि का विश्वास है। प्रत्येक युग के आरभ मे सध्या है और अत मे सध्याश है। इनमे वर्षों की सख्या इस प्रकार है[1]

युग		वर्ष	युग		वर्ष
कृत	सध्या	४००	द्वापर	सध्या	२००
	मुख्य भाग	४०००		मुख्य भाग	२०००
	सध्याश	४००		सध्याश	२००
त्रेता	सध्या	३००	कलि	सध्या	१००
	मुख्य भाग	३०००		मुख्य भाग	१०००
	सध्याश	३००		सध्याश	१००

चारो युग मिल कर = १ दैवयुग = १२,००० वर्ष

१००० दैवयुग = ब्रह्मा का १ दिन

१. मनुस्मृति, प्रथम अध्याय।

टीकाकारो के अनुसार ऊपर जिन वर्षों की सख्या दी गयी है वे मानव वर्ष नही है, दैव वर्ष हैं और प्रत्येक दैव वर्ष ३६० मानव वर्षों के बराबर होता है।

आधुनिक विज्ञान बताता है कि पृथ्वी का जन्म आज से लगभग अरब (अर्बुद) वर्ष पहले हुआ होगा। ऊपर की सारिणी से पता चलता है कि हमारे प्राचीन ऋषियो के मत मे भी सृष्टि कई अरब वर्ष पहले हुई थी। इसका महत्त्व तब दिखाई पडता है जब इसकी तुलना अन्य धर्मों के मतो से की जाती है। कुछ ही सौ वर्ष पहले यूरोप मे प्रचलित धर्म ग्रथ के अनुसार राजाओ की वश-परपरा देखकर पृथ्वी की आयु ४००० वर्ष आँकी जाती थी।

महाभारत मे पाँच वर्षों के युग की चर्चा है[1]। पाडवो के जन्म के सबध मे यह उल्लेख है—

अनुसवत्सर जाता अपि ये कुरुसत्तमा.।
पाडुपुत्रा व्यराजत पच सवत्सरा इव ॥ २२ ॥—आदिपर्व, अ० १२४

[अर्थ—एक-एक वर्ष के अन्तर से उत्पन्न हुए कुरुओ मे श्रेष्ठ पाडु के वे पाँचो पुत्र (युग के) पाँच वर्षों के समान लगते थे।]

★ वर्ष

वर्ष की लबाई के सबध में भी महाभारत के एक कथन से हमें सहायता मिलती है। पाठक को ज्ञात होगा कि जुआ मे हारने पर पाडवो को १२वर्ष वनवास और एक वर्ष अज्ञातवास स्वीकार करना पडा था, परतु अज्ञातवास के लगभग अत मे अपने आश्रयदाता पर विपत्ति पडने पर अर्जुन को दुर्योधन आदि के विरुद्ध लडने के लिए लाचार होना पडा। जब दुर्योधन आदि ने अर्जुन को पहचान लिया तब उन्हे यह जानने की आवश्यकता पडी कि वनवास के आरभ से उस दिन तक पूरे १३ वर्ष बीत गये थे या नही। आपस मे मतभेद होने के कारण यह प्रश्न भीष्म के सम्मुख रखा गया। तब उन्होने दुर्योधन से कहा

तेषां कालातिरेकेण ज्योतिषां च व्यतिक्रमात्।
पंचमे पंचमे वर्षे द्वौ मासावुपजायतः ॥३॥
एषामभ्यधिका मासाः पंच च द्वादश क्षपा.।
त्रयोदशानां वर्षाणामिति मे वर्तते मतिः ॥४॥ विराटपर्व, अ. ५२.

1 युग शब्द किसी भी दीर्घकाल के लिए प्रयुक्त होता था, चाहे वह पाँच वर्ष का हो, चाहे वह लाखों वर्ष का हो।

[अर्थ—समय के बढ़ने तथा नक्षत्रो के हटने से प्रति पाँचवें वर्ष दो अधि-मास (मलमास) होते हैं ॥३॥ मेरी समझ मे तो (वन गये हुए) इन (पाण्डवो) को तेरह वर्ष से पाँच मास और बारह दिन अधिक हो गये ॥ ४ ॥]

★ अयन का परिणाम

ऊपर की गणना वेदाग-ज्योतिष के अनुसार की गयी है। स्पष्ट है कि महा-भारत के समय भी वेदाग-ज्योतिष के ही नियम चालू थे। परतु जान पडता है कि अयन[1] के कारण जो अतर पड गया था उसके लिए किसी प्रकार का सशोधन कर लिया गया था, क्योकि यहा नक्षत्रो के हटने की बात भी कही गयी है। हम देख चुके हैं कि वेदाग-ज्योतिष के समय में उत्तरायण तब आरभ होता था जब सूर्य धनिष्ठा के आरभ मे रहता था। अयन के कारण उत्तरायण के आरभ होने का स्थान लगभग १००० वर्षों मे एक नक्षत्र (१ चक्कर का सत्ताइसवाँ भाग) हट जाता है। इसलिए महाभारत के समय मे उत्तरायण धनिष्ठा के आरभ-बिन्दु से न होता रहा होगा। महाभारत के कुछ वाक्यो से अधिक स्पष्ट प्रमाण मिलता है कि आवश्यक सशोधन हो गया था, क्योकि लिखा है—

चकारान्य च लोक वै क्रुद्धो नक्षत्रसपदा ॥
प्रतिश्रवणपूर्वाणि नक्षत्राणि चकार य ॥ ३४ ॥ आदिपर्व, अ ७१

[अर्थ—(विश्वामित्र ने) क्रुद्ध होकर दूसरे लोक तथा 'श्रवण' से आरभ होने वाले नक्षत्रो का निर्माण किया।]

फिर, यह भी वाक्य आता है —

अह पूर्वंततो रात्रिर्मासा. शुक्लादय स्मृता ॥
श्रवणादीनि ऋक्षाणि ऋतव शिशिरादय ॥२॥ अश्वमेधपर्व, अ ४४

१ आकाश का वह बिन्दु जहाँ सूर्य के रहने पर दिन और रात दोनों बराबर रहते हैं और ऋतु वसत रहती है 'वसत विषुव' कहलाता है। वसत विषुव तारों के सापेक्ष धीरे-धीरे पीछे मुँह (अर्थात् सूर्य के चलने से उलटी दिशा मे) खिसकता रहता है और एक चक्कर लगभग २६००० वर्ष मे लगाता है। वसत विषुव के इस प्रकार चलने को अयन कहते हैं। इसी अयन के कारण आकाशीय ध्रुव भी चलता रहता है (पृष्ठ ५९)। उत्तरायण और दक्षिणायन मे अयन शब्द का प्रयोग हुआ है, परतु विषुव के चलने और उत्तरायण-दक्षिणायन मे विशेष सबध नहीं है। भ्रम दूर करने के लिए कुछ लोग विषुव के चलने को अयन-चलन कहते हैं, परन्तु यह उचित नहीं है, क्योंकि स्वय अयन का अर्थ है चलना। विषुव-अयन अधिक उपयुक्त है।

[अर्थ—ऐसा कहा जाता है कि पहले दिन, अनन्तर रात, तदनन्तर शुक्ल इत्यादि पक्ष, मास, श्रवण इत्यादि नक्षत्र, एवं शिशिर आदि ऋतुएँ उत्पन्न हुईं ।]

श्रवण इत्यादि नक्षत्र कहने से स्पष्ट है कि नक्षत्र श्रवण से आरभ होते थे, और नक्षत्रो का श्रवण से आरभ होना यह सूचित करता है कि वहाँ या तो विषुव रहा होगा या उत्तरायण-बिंदु या दक्षिणायन-बिंदु, क्योंकि ऐसी ही प्रथा पहले से चली आ रही थी । अन्य बातो के सभव न होने के कारण मानना ही पडता है कि श्रवण नक्षत्र में उत्तरायण-बिंदु था ।

श्रवण के आरभ-बिंदु पर उत्तरायण लगभग ४५० ई० पू० मे होता था ।

★ सप्ताह

सप्ताह और दिनो के नाम (रविवार, सोमवार, ..) का उल्लेख कही भी नही है । महाभारत मे अन्य-अन्य रीतियो से (नक्षत्र आदि बता कर) दिनाक इतनी बार बताया गया है कि रविवार आदि नाम न रहने से यह परिणाम अनिवार्य हो जाता है कि उस समय दिनो का नामकरण नही हुआ था । योग, करण या राशि का नाम भी कही नही आया है । निस्सदेह इन सब इकाइयो का जन्म महाभारत-युग के बाद हुआ होगा ।

★ उत्तरायण और दक्षिणायन

महाभारत मे दिनाक अधिकतर चद्रमा की स्थिति से बताये गये है, परतु कही-कही पर सूर्य की स्थिति से भी दिनाक बताये गये हैं । उदाहरणार्थ एक स्थान पर यह कहा गया है —

पर्वसु द्विगुणं दानमृतौ दशगुणं भवेत् ।।१२४।।
अयने विषुवे चैव षडशीतिमुखेषु च ।।
चद्रसूर्योपरागे च दत्तमक्षयमुच्यते ।।१२५।। वनपर्व, अ २००,

[अर्थ—पर्व-दिनो मे, अर्थात् अमावस्या या पूर्णिमा के दिन दिया गया दान दुगुना पुण्य उत्पन्न करता है, ऋतु (के आरभ) मे दिया गया दान दस-गुना पुण्य उत्पन्न करता है । उत्तरायण, दक्षिणायन और विषुवों पर, तथा षडशीतिमुखो और चन्द्र तथा सूर्य के ग्रहणो पर दिया गया दान अक्षय कहा जाता है ।]

उत्तरायण और दक्षिणायन वे ही हैं जो अब मकर-सक्राति और कर्क-सक्राति कहलाते हैं, विषुव वे अवसर हैं जब मेष और तुला सक्रातियाँ होती हैं । षडशीतियाँ वे समय हैं जब सूर्य रविमार्ग के उन खडो मे रहता है जिन्हे अब मिथुन, कन्या, धनु और मीन राशि कहते हैं । इससे प्रत्यक्ष है कि महाभारत के समय में रविमार्ग को १२ भागो मे विभक्त किया जाता था । यह स्वाभाविक भी है, क्योंकि वर्ष

मे १२ महीने माने जाते थे। परतु महाभारत मे राशियो के नाम नही दिये गये हैं। इससे भी इस बात की पुष्टि होती है कि उस समय रविमार्ग के बारह खडो का नामकरण नही हुआ था, अर्थात् मेष आदि नाम बाद मे रखे गये।

★ ग्रहण

ऊपर के उद्धरण मे ग्रहणो का उल्लेख है, इसके अतिरिक्त अन्यत्र भी ग्रहणो की चर्चा है। यह लोगोको ज्ञात था कि ग्रहण केवल अमावस्या या पूर्णिमा को लग सकते थे। अमावस्या या पूर्णिमा को वे पर्व कहते थे। अनहोनी-सी बात का होना अशुभ समझा जाता था। इसलिए जब पाडव वनवास जाने लगे तब ऐसा लिखा है कि अपर्व पर ही सूर्य-ग्रहण हुआ—

राहुरग्रसदादित्यमपर्वणि विशांपते ॥१९॥ —सभापर्व अ ७९.

[अर्थ—हे राजन्! (उस समय) बिना पर्व (अमावस्या) के ही राहु ने सूर्य का ग्रहण कर लिया।]

महाभारत-युद्ध के आरभ मे एक ग्रहण के बाद दूसरे ग्रहण का १३ दिन पर ही हो जाना महाअनिष्ट होने के लक्षण-स्वरूप लिखा गया है

अलक्ष्य प्रभया हीन पौर्णमासीं च कार्तिकीं।
चन्द्रोभूदग्निवर्णश्च पद्मवर्णे नभस्तले ॥ भीष्मपर्व, अ २
चतुर्दशी पचदशीं भूतपूर्वां तु षोडशीं ॥
इमा तु नाभिजानेऽहममावास्या त्रयोदशीं ॥
चन्द्रसूर्यावुभौ ग्रस्तावेकमासीं त्रयोदशीं ॥३२॥ भीष्मपर्व, अ ३

[अर्थ—कार्तिक की पूर्णिमा के दिन चन्द्रमा प्रकाशहीन होकर अदृश्य हो गया, फिर कमल के समान नीले आकाश मे अग्नि के रग का (अर्थात् लाल) हो गया।[1] पहले समय मे चौदहवे, पन्द्रहवे अथवा सोलहवें दिन अमावस्या होती थी, परतु तेरहवे दिन अमावस्या का होना मुझे ज्ञात नही है। पर इस बार तो एक मास के भीतर ही (पूर्णिमा पर) चन्द्रमा का और त्रयोदशी को सूर्य का ग्रहण हुआ है।]

इससे प्रत्यक्ष है कि ग्रहणो के सबध मे पूर्ण रूप से ज्ञात था कि दो ग्रहणो के बीच केवल १३ दिन का अतर नही हो सकता है। वास्तव मे उस समय १३ दिनो के अन्तर पर दूसरा ग्रहण लगा था, या लेखक ने अशुभ लक्षणो में इसे भी दिखा देना उत्तम समझा, कहा नही जा सकता, क्योकि कभी-कभी पक्ष (अर्ध-मास) १४ दिन से कम का भी होता है, और तब उसे १३ दिन का गिना जा सकता है।

१ सर्व चद्रग्रहण के अवसर पर ऐसा ही होता है।

शकर बालकृष्ण दीक्षित ने बताया है कि शक १७९३ में फाल्गुन का कृष्ण पक्ष कुल १३ दिन का था। इसी प्रकार शक १८०० के ज्येष्ठ का शुक्ल पक्ष फिर कुल १३ दिन का था। ये १३ दिन के पक्ष विरले अवसरो पर ही आते हैं। आधुनिक ज्योतिष के अनुसार पक्ष का न्यूनतम मान १४ दिनो से थोडा ही कम निकलता है। इस सबंध में पाठक को स्मरण रखना चाहिये कि न तो सूर्य सदा एक वेग से चलता है और न चद्रमा ही। इसलिए पक्षो की लबाई बराबर नही होती। यदि १४ दिन से कुछ कम का पर्व हुआ तो, भारतीय गणना के अनुसार, दो ग्रहण १३ दिन पर लग सकते हैं। उदाहरणार्थ, यदि किसी दिन (स्पष्टता के लिए मान लें १ जनवरी को) सूर्योदय के कुछ मिनट बाद तक ग्रहण लगा रहा तो अवश्य ही कहा जायगा कि उस दिन (अर्थात् १ जनवरी को) सूर्यग्रहण लगा था। १३ दिन बाद १४ जनवरी हो जायगी। उस दिनांक को यदि रात बीतने के दस-पाँच मिनट पहले चद्रग्रहण आरम्भ हुआ तो अवश्य ही लोग कहेगे कि १४ जनवरी को चद्रग्रहण लगा, क्योकि विशुद्ध भारतीय पद्धति मे दिनाक सूर्योदय के क्षण बदलता है, अर्धरात्रि के क्षण नही। इस उदाहरण मे १ जनवरी वाले सूर्यग्रहण के मध्य से १४ जनवरी वाले चद्रग्रहण के मध्य तक १३ दिन से कई घटे अधिक बीत चुके रहेगे, यद्यपि साधारण लोगो की भाषा मे १३ दिन पर ही ग्रहण लग गया। इसलिए १३ दिनो पर ग्रहण लगना अवश्य सभव है।

तो भी, सभव होना एक बात है, वस्तुत घटित होना दूसरी बात है। मुझे तो महाभारत-युद्ध के आरम्भ मे पूर्वोक्त दो ग्रहणो का लगना केवल कवि की कल्पना जान पडती है। इस सदेह का समर्थन यो भी होता है कि दुर्योधन के मरने पर भी वही बात लिखी गयी है—

राहुश्चाग्रसदादित्यमपर्वणि विशांपते ॥१०॥ गदापर्व, अ २७

युद्ध के एक महीने पहले सूर्यग्रहण लग चुका था।[१] युद्ध के अत मे फिर सूर्यग्रहण का लगना असभव था। अपर्व मे ग्रहण लगना तो सर्वदा असभव है ही। इसलिए दुर्योधन के मरते समय अपर्व मे ग्रहण लगना कवि की कल्पना ही हो सकती है। अत ग्रहण-संबधी अन्य चर्चाएँ भी अवास्तविक हो तो कोई आश्चर्य नही है।

परतु इन उल्लेखो से यह तो स्पष्ट ही है कि ग्रहण कितने-कितने दिनो पर लग सकते हैं, इसका अच्छा ज्ञान उस समय भी था।

१. दीक्षित · भारतीय ज्योतिषशास्त्र, पृष्ठ ११५

राहु सूर्य को निगल जाता है, इससे सूर्यग्रहण लगता है; इस कथन से पता नही चलता कि सूर्यग्रहण और चद्रग्रहण का वास्तविक कारण महाभारत के समय के ज्योतिषियो को ज्ञात था या नही। परतु ग्रहो के सबध मे महाभारत मे कही उन्हे पाँच माना गया है, कही सात। सात ग्रह तभी सभव हैं जब राहु और केतु भी उनमे गिने जायँ। परतु राहु और केतु का भी ग्रह माना जाना सूचित करता है कि उनकी गतिया ज्ञात थी। इससे बडी सभावना हो जाती है कि ग्रहणो का ठीक कारण भी उस समय ज्ञात था।

★ ग्रह

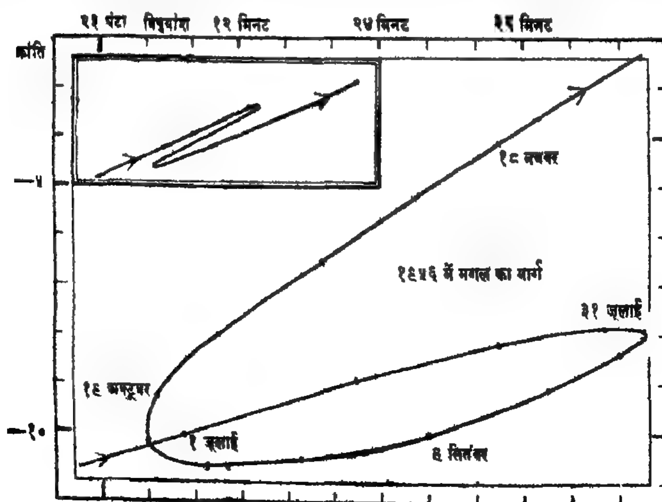
ग्रहो की सख्या के सबध मे एक उद्धरण नीचे दिया जाता है

ते तु क्रुद्धा महेष्वासा द्रौपदेया. प्रहारिण ॥
राक्षस दुद्रुवु सख्ये ग्रहा पच रविं यथा ॥३७॥ भीष्मपर्व, अ १००

[अर्थ–जैसे पांच ग्रह सूर्य को घेरते है, वैसे ही द्रौपदी के पाँचो महान् धनुर्धर पतियो ने क्रुद्ध होकर अलम्बुष नामक राक्षस को घेर कर उस पर आक्रमण किया।]

ग्रहो की अनुदिश तथा प्रतिदिश (वक्र) गतियाँ, अर्थात् उनका आगे और पीछे चलना भी, महाभारत के समय लोग जानते थे।[१] लिखा है

१. पाठको की जानकारी के लिए नीचे १९५६मे तारों के सापेक्ष मगल का मार्ग दिखाया गया है। देखें कि लगभग ५ जुलाई से ९ अक्टूबर तक मगल की गति वक्र (अर्थात् उलटी दिशा मे) है। [कोने मे अन्य ग्रह का मार्ग दिखाया गया है।]



प्रत्यागत्य पुनर्जिष्णुर्जघ्ने संसप्तकान् बहून् ।।
वक्रातिवक्रगमनादंगारक इव ग्रहः ।। १ ।। —कर्णपर्व, अ. १४

[अर्थ—फिर अर्जुन ने पीछे लौटकर बहुत-से ससप्तकों पर उसी प्रकार प्रहार किया जैसे तीव्र वक्र गति से चलता हुआ मगल नामक ग्रह ।]

तारों के बीच कौन ग्रह कहाँ है, इसका उल्लेख बीसों स्थान पर है । यहाँ एक उदाहरण पर्याप्त होगा

श्वेतो ग्रहस्तथा चित्रां समतिक्रम्य तिष्ठति ।।१२।।
धूमकेतुर्महाघोरः पुष्यं चाक्रम्य तिष्ठति ।।१३।।
मघास्वंगारको वक्रः श्रवणे च बृहस्पतिः ।।
भग नक्षत्रमाक्रम्य सूर्यपुत्रेण पीड्यते ।।१४।।
शुक्र. प्रोष्ठपदे पूर्वे समारुह्य विरोचते ।।१५।।
रोहिणीं पीडयत्येवमुभौ च शशिभास्करौ ।।
चित्रास्वात्यन्तरे चैव विष्ठितः परुषग्रह. ।।१७।।
वक्रानुवक्रं कृत्वा च श्रवणं पावकप्रभः ।।
ब्रह्मराशिं समावृत्य लोहितांगो व्यवस्थितः ।।१८।।
संवत्सरस्थायिनौ च ग्रहौ प्रज्वलितावुभौ ।।
विशाखायाः समीपस्थौ बृहस्पतिशनैश्चरौ ।।२७।। भीष्मपर्व, अ ३

[*अर्थ—(व्यासजी ने धृतराष्ट्र से कहा कि हे राजन् ! कार्तिकी के बाद संग्राम* का आरभ होगा, क्योंकि उस समय) श्वेतग्रह (केतु) चित्रा को पार करके (स्वाती पर) रहेगा । महाभयकर धूमकेतु (पुच्छल तारा) पुष्य के पार पहुँचेगा । मघा पर मगल तथा श्रवण पर बृहस्पति वक्र होंगे एव पूर्वा फाल्गुनी को पकड कर शनि उसे पीडित करेगा । पूर्वा भाद्रपदा नक्षत्र पर समारूढ होकर शुक्र प्रकाशमान् होगा । सूर्य और चन्द्रमा दोनो रोहिणी मे रहेंगे और परुषग्रह (निर्दय ग्रह) चित्रा और स्वाती के बीच रहेगा । वक्रानुवक्र (अर्थात् अति वक्र) होकर श्रवण में अग्नि के समान लाल लोहिताग (मगल) ब्रह्मराशि (तारा विशेष) को भलीभाँति ढक लेगा । अत्यत प्रज्वलित बृहस्पति और शनैश्चर विशाखा के समीप वर्ष भर तक रहेंगे । (ग्रहो की ये स्थितियाँ अत्यत अनिष्टकारी हैं ।)

इन सब उद्धरणो से स्पष्ट है कि महाभारत के समय मे लोगो को ग्रहो का अच्छा ज्ञान था । आकाश में ग्रहो की स्थितियाँ क्या हैं, यह अवश्य ही बराबर देखा जाता रहा होगा ।

८

आर्यभट

★ वेदाग-ज्योतिष के बाद

वेदाग-ज्योतिष के बाद लगभग एक हजार वर्ष तक का हमे कोई भारतीय ज्योतिष-ग्रथ नही मिलता, तब कौटिल्य के 'अर्थशास्त्र' से (जो लगभग ३०० ई० पूर्व का है) पता चलता है कि उस समय भी ज्योतिष मे विशेष उन्नति नही हो पायी थी। कौटिल्य के 'अर्थशास्त्र' के लगभग १०० वर्ष बाद की एक पुस्तक 'मूर्य-प्रज्ञप्ति' है जिसमे जैनियो के मतानुसार विश्व की रचना दी गयी है। इसके ज्योतिष सम्बन्धी नियम 'वेदाग-ज्योतिष' से मिलते-जुलते है। इसके बाद लगभग ७०० वर्ष के भीतर का लिखा हमे कोई ग्रथ नही मिलता। तब हमे सन् ४९९ ईसवी का आर्यभट-लिखित 'आर्यभटीय' मिलता है। 'तंत्र' नामक ग्रथ भी आर्यभट का लिखा है। ये दोनो ग्रथ आज भी उपलब्ध है। आर्यभट का जन्म सन् ४७६ ई० मे हुआ था। उनके बाद वराहमिहिर हुए जिनकी एक रचना 'पचसिद्धान्तिका' है। इसकी विशेषता यह है कि इसमे लेखक ने अपना सिद्धान्त न देकर उस समय के पाँचो प्रचलित सिद्धान्तो का वर्णन दिया है। ये है पौलिश, रोमक, वासिष्ठ, सौर और पैतामह। वराहमिहिर ने लिखा है कि "इन पाँच मे से पौलिस और रोमक के व्याख्याकार लाटदेव हैं। पौलिश सिद्धान्त स्पष्ट है, रोमक सिद्धान्त उसी के निकट है, सूर्यसिद्धान्त सब से अधिक स्पष्ट है, शेष दोनो बहुत भ्रष्ट है।" वराहमिहिर की मृत्यु सन् ५८७ ई० मे हुई। 'पचसिद्धान्तिका' मे दिये हुए पैतामह सिद्धान्त मे गणना करने के लिए सन् ८० ई० को आदि काल माना गया है, जिससे अनुमान किया जाता है कि असली पैतामह सिद्धान्त लगभग उसी समय रचा गया होगा। 'पैतामह सिद्धान्त' भी 'ज्योतिष-वेदाग' से बहुत आगे नही बढ पाया है, इसलिए वराहमिहिर ने इसे भ्रष्ट बताया है।

वराहमिहिर के बाद सन् ५९८ ई० में ब्रह्मगुप्त उत्पन्न हुए, जिनकी लिखी पुस्तकें 'ब्राह्मस्फुट-सिद्धान्त' और 'खंडखाद्यक' आज भी प्राप्य हैं। भास्कराचार्य ने अपनी रचना 'सिद्धान्त शिरोमणि' को ११५० ई० मे तैयार किया। उनके बाद फिर किसी भारतीय ज्योतिषी ने विशेष ख्याति नही प्राप्त की।

✱ आर्यभट से पहले के ज्योतिषी

जैसा ऊपर बताया गया है, आर्यभट की पुस्तक 'आर्यभटीय' आज भी प्राप्य है। परतु आर्यभट के पहले भी कुछ प्रसिद्ध ज्योतिषी हो गये हैं जिनकी पुस्तकें अब लुप्त हो गयी हैं। इन ज्योतिषियो मे से गर्ग की चर्चा कई स्थानो पर आती है। महाभारत मे लिखा है कि गर्ग महर्षि राजा पृथु के ज्योतिषी थे। उनको काल का ज्ञान विशेष रूप से अच्छा था। उनकी गार्गी-सहिता अब लुप्त हो गयी है, परतु सम्भव है गणित-ज्योतिष के बदले इसमे फलित ज्योतिष की बाते ही अधिक रही हो। वराहमिहिर ने पचसिद्धान्तिका के अतिरिक्त 'बृहत्सहिता' नामक ग्रथ भी लिखा है जो फलित ज्योतिष पर है। उसमे उन्होंने गर्ग से कई अवतरण दिये हैं जिनमे से दो तीन यहाँ दिये जाते हैं[1]

"वृद्ध गर्ग के प्रमाण पर मैं कहता हूँ कि सप्तऋषि मघा मे थे[2]।"

"देवताओ के निवास-स्थान मेरु पर्वत की इस वाटिका मे नारद ने रोहिणी योग के नियमो की शिक्षा बृहस्पति को दी। उन्ही नियमो की शिक्षा गर्ग, पराशर, कश्यप और मय अपने अनेक शिष्यो को देते रहे हैं। उनके तथ्यो का निरीक्षण कर मैं सक्षिप्त पुस्तक लिखता हूँ।"[3]

"मैंने केतुओ की चर्चा की है, परतु पहले मैंने गर्ग, पराशर और असित देवल की पुस्तको का, तथा अन्य सब पुस्तको का, चाहे वे गिनती मे कितनी भी अधिक हो, अध्ययन कर लिया है।[4]

पुलिश, जिसके पौलिशसिद्धान्त को सक्षेप मे वराहमिहिर ने अपनी पच-सिद्धान्तिका मे दिया है, सभवत कोई यवन था, क्योकि अलबीरूनी ने (सन् १०३१

१. के. महाशय की पुस्तक हिन्दू 'ऐस्ट्रानोमी' मे दिये गये अवतरणों से सकलित।

२. बृहत्संहिता २। ३।

३. बृहत्सहिता २४। २। पराशर तथा कश्यप के बारे में हमें अन्य कोई ज्ञान नहीं है। मय ने सूर्य-सिद्धान्त की घोषणा की थी।

४. बृहत्संहिता ११। १। असित देवल का भी पता अब नहीं चलता।

ई० में) अपने 'भारतवर्ष' मे लिखा है कि पौलिश सिद्धान्त को पुलिश ने बनाया है, जो सत्र (सम्भवत अलेकजैण्ड्रिया) का निवासी था।

★ ज्योतिष पर बौद्ध धर्म के विचार

बौद्ध धर्म फलित ज्योतिष को, और अशत गणित ज्योतिष को भी, बहुत हीन दृष्टि से देखता था। लिखा है

"कुछ ब्राह्मण और शर्मा लोग अपनी जीविका का उपार्जन नीच वृत्तियो से करते हैं और भय द्वारा दिये गये अन्न का भोग करते हैं। वे भविष्यवाणी करते हैं कि सूर्य-ग्रहण लगेगा, चद्रग्रहण लगेगा, नक्षत्रो का ग्रहण लगेगा, चद्रमा और सूर्य पथ मे चलेंगे, चद्रमा और सूर्य उपपथ मे चलेंगे, नक्षत्र पथ मे चलेंगे, नक्षत्र उपपथ मे चलेंगे, उल्कापात होगा, दिशा-दाह (?) होगा, भूचाल होगा, देवदुदुभि बजेगी, सूर्य, चद्रमा और नक्षत्र का उलटा-पलटा उदय होगा, अस्त होगा, सब पर विपत्ति पडेगी।"[1]

★ आर्यभट

जब बौद्ध धर्म का ह्रास होने लगा गुप्तकाल मे हिंदू धर्म का उत्थान हुआ और यवनो के ज्योतिष का भी भारतवर्ष मे आगमन हुआ, तब भारतीय ज्योतिष का भी अध्ययन-अध्यापन जोरो से होने लगा।[2] इसका फल यह हुआ कि विक्रम की छठी शताब्दी मे ज्योतिष के कई आचार्य उत्पन्न हो गये। किसी ने भारतीय ज्योतिष का मथन करके ज्योतिष पर ग्रथ रचे, किसी ने यवन ज्योतिष का सार लेकर ग्रथ बनाये, किसी ने दोनो का सार लेकर ज्योतिष के ग्रथो की रचना की (और किसी ने खोजो से प्राप्त नवीन ज्ञान का भी समावेश किया)। इनमे सबसे प्रमुख आर्यभट हुए, जिन्होने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'आर्यभटीय' मे अपना जन्म-काल कलियुग सवत् ३५७७ बताया है और ग्रहो की गणना के लिए ३६०० कलि सवत् निश्चय किया है। इनकी पुस्तक मे शक काल अथवा विक्रम सवत् की चर्चा नही है। इस नाम के एक और ज्योतिषी ९५० ई० के लगभग हो गये हैं जिन्होने 'महासिद्धान्त' नामक ज्योतिष-ग्रथ की रचना की है। इसलिए इन्हे हम प्रथम आर्यभट कहेगे।

१ दीघनिकाय १।६८ (पाली टेक्स्टबुक सोसायटी)।

२. यहाँ से इस अध्याय के अत तक पूरी की पूरी सामग्री मेरे द्वारा सपादित 'सरल विज्ञानसागर' नामक ग्रथ के एक अध्याय से ली गयी है, जिसके लेखक स्वर्गीय महावीर प्रसाद श्रीवास्तव थे।

★ आर्यभटीय के ध्रुवाक

प्रथम आर्यभट के समय मे ६० सवत्सरो के युग का प्रचार अच्छी तरह हो गया था, क्योंकि इन्होने अपना जन्म-काल बताते हुए ६० सवत्सरो के युग का प्रयोग किया है और लिखा है कि ६०सवत्सरो के ६० युग और तीन युगपाद(सतयुग, त्रेता, द्वापर) जब बीत गये तब मेरे जन्म से २३ वर्ष बीत चुके थे ।[1] इन्होने कुसुमपुर[2] में, जिसे आजकल पटना कहते है, अपने ग्रथ आर्यभटीय का निर्माण किया था । यह बडे ही प्रतिभाशाली ज्योतिषी थे और प्राचीन ग्रथो को अपने अनुभवो से शोधकर आर्यभटीय ग्रथ की रचना की ।[3] पीछे के आचार्यों, वराहमिहिर, ब्रह्मगुप्त आदि के कथनो[4] से प्रकट होता है कि इन्होने एक और ग्रथ की रचना की थी जिसके ध्रुवाङ्क आर्यभटीय के ध्रुवाङ्क से कुछ भिन्न थे, युग का आरभ, अर्द्ध-रात्रि से माना गया था और महायुगीय सावन दिनो का मान ३०० दिन अधिक था । ब्रह्मगुप्त ने अपने 'खण्डखाद्यक' नामक ज्योतिष-ग्रथ की रचना इन्ही ध्रुवाङ्को के आधार पर की थी । अब इस बात का स्पष्ट प्रमाण मिल गया है कि आर्यभट ने दो ग्रथो की रचना की थी, एक मे युग का आरभ आधी रात से और युग मे सावन दिनो की सख्या ३०० अधिक मानी गयी थी और दूसरे मे युग का आरभ सूर्योदय

१ षष्ट्यब्दानां षष्टिर्यदा व्यतीतास्त्रयश्च युगपादाः ।
त्र्यधिका विंशतिरब्दास्तदेह मम जन्मनोऽतीताः ॥१॥
—कालक्रियापाद ।

२ ब्रह्मकुशशिबुधभृगुरविकुजगुरुकोणभगणान्नमस्कृत्य ।
आर्यभटस्त्विह निगदति कुसुमपुरेऽभ्यर्चितं ज्ञानम् ॥१॥
—गणितपाद ।

३. सदसज्ज्ञानसमुद्रात् समुद्धृतं देवताप्रसादेन ।
सज्ज्ञानोत्तमरत्नं मया निमग्नं स्वमतिनावा ॥४९॥
—गोलपाद ।

४ युगरविभगणाः ख्युघृ इति यत् प्रोक्तं तत्तयोर्युगं स्पष्टम् ।
त्रिशती ख्युदयानां तदन्तरं हेतुना केन ॥
—ब्राह्मस्फुट-सिद्धान्त, ११, ५ ।

लङ्कार्धरात्रसमये दिनप्रवृत्तिं जगाद चार्यभटः ।
भूयः स एव सूर्योदयात् प्रभृत्याह लङ्कायाम् ॥
—पंचसिद्धान्तिका, १५, २० ।

से माना गया था। पहली गणना को 'अर्द्ध-रात्रिक' गणना और दूसरी को 'औदयिक' गणना कहते हैं। यह प्रमाण 'महाभास्करीय' और 'लघुभास्करीय' नामक ग्रंथो से मिलता है। इन पुस्तको की रचना भास्कर नामक किसी ज्योतिषी ने की थी जो आर्यभट की शिष्यपरंपरा में था और 'सिद्धान्तशिरोमणि' के रचयिता प्रसिद्ध भास्कराचार्य से भिन्न था। इसलिए इसका नाम भास्कर प्रथम लिखना ठीक होगा। प्रथम पुस्तक मे पहले औदयिक[1] विधि से गणना करने के ध्रुवाङ्क दिये गये हैं, फिर अर्द्धरात्रिक विधि से जान पडता है कि आर्यभट का पहले का लिखा हुआ ग्रन्थ वही था जो किसी प्रकार से लुप्त हो गया और 'आर्यभटीय' दूसरा ग्रंथ है जिसकी रचना २३ वर्ष की अवस्था मे नही की गयी थी, वरन् अधिक अवस्था मे की गयी थी, जब आर्यभट ने बार-बार के वेधो से अपनी पहली रचना मे संशोधन कर लिये थे। 'आर्यभटीय' की रचना-पद्धति बहुत ही वैज्ञानिक और भाषा बहुत ही संक्षिप्त तथा मँजी हुई है। इसलिए इनका जन्म-काल बताने वाले श्लोक का अर्थ केवल इतना ही है कि ३६०० कलियुग मे उनकी अवस्था २३ वर्ष की थी जब ग्रहो के ध्रुवाङ्को की गणना निश्चय की गयी थी। यही बात 'आर्यभटीय' के टीकाकारो[2] ने भी स्वीकार की है।

★ संख्या लिखने की अनोखी रीति

'आर्यभटीय' मे कुल १२१ श्लोक है जो चार खण्डो मे विभाजित किये गये है (१) गीतिकापाद, (२) गणितपाद, (३) कालक्रियापाद और (४) गोलपाद। गीतिकापाद सबसे छोटा, केवल ११ श्लोको का है, परतु इसमे इतनी सामग्री भर

१ निबन्धः कर्म्मणा प्रोक्तो योऽसावौदयिको विधिः।
अर्द्धरात्रेस्त्वयं सर्वो यो विशेषः स कथ्यते ॥२१॥
त्रिशती भूदिने क्षेप्या ह्रासयेमेभ्यो विशोध्यते।
मनुर्वोभंगणेभ्योऽपि विंशतिश्च ततोऽप्ययं ॥२२॥
अन्यस्याप्येवमेव स्यात् शेषा प्रागुक्तकल्पना।
एतत्सर्वं समासेन तन्त्रान्तरमुदाहृतम् ॥२३॥

२ एतदेवाचार्य्यार्य्यभटस्य शास्त्रव्याख्यानसमये वा पाण्डुरङ्गस्वामिलाटदेवनिःशङ्कुप्रभृतिभ्यः प्रोवाच। —भास्कर प्रथम

अस्यायमभिप्रायः। अस्मिन् काले गीतिकोक्तभगणैस्त्रैराशिकेनानीता ग्रहमध्यमोच्चपाताः स्फुटाः स्युः।

—सूर्यदेव यज्वा की 'प्रकाशिका' टीका।

दी गयी है जितनी 'सूर्यसिद्धांत' के पूरे मध्यमाधिकार और कुछ स्पष्टाधिकार मे आयी है। इसके लिए आर्यभट ने अक्षरो द्वारा सक्षेप में सख्या लिखने की एक अनोखी रीति का निर्माण किया है जो इस श्लोक से प्रकट की गयी है—

वर्गाक्षराणि वर्गेऽवर्गेऽवर्गाक्षराणि कात् ङ्मौ यः ।
खद्विनवके स्वरा नव वर्गेऽवर्गे नवान्त्यवर्गे वा ॥

[अर्थ—क से आरभ करके वर्ग अक्षरो को वर्ग स्थानो और अवर्ग अक्षरो को अवर्ग स्थानो मे (व्यवहार करना चाहिये), (इस प्रकार) ङ और म मिलकर य (होता है)। वर्ग और अवर्ग स्थानो के ९ के दूने शून्यो को ९ स्वर प्रकट करते हैं। यही (क्रिया) ९ वर्ग स्थानो के अन्त के पश्चात् (दुहरानी) चाहिये[1]।]

इकाई, सैकडा, दस हजार, दस लाख आदि विषम स्थानो को वर्ग स्थान और दहाई, हजार, लाख आदि सम स्थानो को अवर्ग स्थान कहते हैं क्योंकि १, १००, १००००आदि के वर्गमूल पूर्णाङ्को मे जाने जा सकते हैं, परतु १०,१०००,१००००० आदि के वर्गमूल पूर्णाङ्को मे नही निकल सकते। सस्कृत या हिन्दी व्याकरण मे वर्णमाला के अक्षर दो भागो मे बाँटे गये है, १६ स्वर और ३३ व्यजन। फिर, व्यजन दो भागो मे बाँटे गये है वर्ग और अवर्ग। क से म तक के अक्षर पाँच वर्गो मे, अर्थात् कवर्ग, चवर्ग, टवर्ग, तवर्ग और पवर्ग मे, बाँटे गये हैं। शेष ८ अक्षरो को (अर्थात् य, र, ल, व, श, ष, स, ह को) अवर्ग कहा गया है। आर्यभट ने वर्ग अक्षरो को १, २,. , २५ तक की सख्याओ को सूचित करने के लिए निर्धारित किया, अवर्ग अक्षरो से ३०, ४०, ,१०० को निरूपित किया, और शून्य लगाने के लिए स्वरो से काम लिया।

१. इस श्लोक के अर्थ पर अनेक पाश्चात्य विद्वानों विह्श, जान्हाउस, कर्न, बार्थ, रोडे, के, फ्लीट, क्लार्क और भारतीय विद्वानों में दत्त, गनोली, दास और लहरी ने अच्छी तरह विचार किया है। 'ख' का अर्थ क्लार्क और फ्लीट ने 'स्थान' किया है, परतु इसका अर्थ शून्य युक्तियुक्त और परम्परा के अनुसार है, और आर्यभटीय के व्याख्याकार भास्कर प्रथम, सूर्यदेव यज्वा आदि ने यही अर्थ किया है। देखें, विभूतिभूषण दत्त और अवधेशनारायण सिंह की हिस्टरी आव हिन्दू मैथिमैटिक्स, भाग १, पृष्ठ ६५। [इसका हिन्दी रूपान्तर "हिन्दू गणितशास्त्र का इतिहास" शीर्षक से हिन्दी समिति द्वारा प्रकाशित किया गया है।]

१६ स्वरों मे केवल ९ स्वर अ, इ, उ, ऋ, ऌ, ए, ऐ, ओ औ इस काम के लिए प्रयुक्त होते हैं और वे क्रमानुसार $१००^{०}$, $१००^{१}$,$१००^{२}$,$१००^{३}$, $१००^{४}$, . प्रकट करते हैं ।

★ रीति का स्पष्टीकरण

पूर्वोक्त कल्पना के अनुसार अक्षरो से सख्या लिखने की रीति यह है

क = १	ट = ११	फ = २२
ख = २	ठ = १२	ब = २३
ग = ३	ड = १३	भ = २४
घ = ४	ढ = १४	म = २५
ङ = ५	ण = १५	य = ३०
च = ६	त = १६	र = ४०
छ = ७	थ = १७	ल = ५०
ज = ८	द = १८	व = ६०
झ = ९	ध = १९	श = ७०
ञ = १०	न = २०	ष = ८०
	प = २१	स = ९०
		ह = १००

अ = १,
इ = १००,
उ = $१००^{२}$ अर्थात् १००००,
ऋ = $१००^{३}$ अर्थात् १००००००,
ऌ = $१००^{४}$ अर्थात् १००००००००,
ए = $१००^{५}$ अर्थात् १००००००००००,
ऐ = $१००^{६}$ अर्थात् १००००००००००००,
ओ = $१००^{७}$ अर्थात् १००००००००००००००,
औ = $१००^{८}$ अर्थात् १००००००००००००००००,

★ उदाहरण

नियम का अधिक विस्तार न करके केवल तीन उदाहरण देकर बताया जायगा कि आर्यभट ने अपनी रीति का व्यवहार कैसे किया है । एक महायुग मे सूर्य पृथ्वी



आधुनिक याम्योत्तर यंत्र

'इस यंत्र से तारों की स्थिति बताने वाले निर्देशांक (विषुवांश और क्रांति) नापे जाते हैं। ['स्प्लेंडर ऑव दि हेवेन्स' से]

को ४३,२०,००० चक्कर (भगण)[1] लगाता हुआ माना गया है, चन्द्रमा ५,७७,५३,३३६ और पृथ्वी १,५८,२२,३७,५०० बार घूमती हुई मानी गयी है। इन तीन संख्याओं को आर्यभट ने इस प्रकार प्रकट किया है—

ख्युघृ, चयगियिङुशुछ्लृ और ङिशिबुण्ऌष्खृ

ख २ के लिए लिखा गया है और य ३० के लिए। दोनों अक्षर मिलाकर लिखे गये हैं और उनमें उ की मात्रा लगी है जो $१००^२$ या १०००० के समान है, इसलिए ख्यु का अर्थ हुआ ३२×१००^२ या ३२०००० । घृ के घ का अर्थ है ४ और ऋ का $१००^३$ या १००००००, इसलिए घृ का अर्थ हुआ ४००००००, इसलिए ख्युघृ = खु + यु + घृ। अब

	खु =	२००००
	यु =	३०००००
	घृ =	४००००००
इसलिए	ख्युघृ =	४३२००००
इसी प्रकार	च =	६
	य =	३०
	गि =	३००
	यि =	३०००
	ङु =	५००००
	शु =	७०००००
	छ्लृ =	५७००००००
		५७७५३३३६

यहाँ छ में ऌ की मात्रा नहीं लगी है वरन् छ और ल में ऋ की मात्रा लगी है, इसलिए छ्ल का अर्थ हुआ = ५७।

ऐसे ही,

ङि =	५००
शि =	७०००
बु =	२३००००
ण्ऌ =	१५००००००००
ष्खृ =	८२००००००
	१५८२२३७५००

१. भगण के 'भ' का अर्थ है नक्षत्र; इसीलिए भचक्र का अर्थ हुआ नक्षत्रमण्डल या राशिचक्र के २७ नक्षत्र, जिन पर एक बार चलने से ग्रहों का एक चक्कर पूरा होता है। इसलिए भगण का अर्थ हुआ चक्कर, और भगणकाल का अर्थ हुआ एक चक्कर या परिक्रमा करने का समय।

संख्या लिखने की इस रीति मे सबसे बड़ा दोष यह है कि यदि अक्षरों में थोड़ा-सा भी हेर-फेर हो जाय तो बड़ी भारी भूल हो सकती है। ऊपर के तीसरे उदाहरण में कर्न की पुस्तक में ख्यु के स्थान मे ख्षु छप गया है, जिसका अर्थ हुआ ८,००,०००, जब ख्यु का अर्थ होता है २,३०,०००।

दूसरा दोष यह है कि ल में ऋ की मात्रा लगाई जाय तो अब इसका रूप वही होता है जो ऌ स्वर का, परन्तु दोनो के अर्थों मे बड़ा अंतर पड़ता है। दूसरे उदाहरण में छ्लृ में छ और ल अलग-अलग अक्षर है और इन दोनो मे ऋ की मात्रा लगायी गयी है, परन्तु तीसरे उदाहरण में ण मे ऌ की मात्रा लगी है, ल स्वतंत्र अक्षर नही है। दूसरे उदाहरण का अक्षर छ सात की सख्या सूचित करता है, इसलिए यह ल के साथ, जो ५० की सख्या सूचित करता है, जोड़ा जा सकता है और दोनो मे ऋ की मात्रा लगायी जा सकती है, परंतु तीसरे मे पहला अक्षर ण १५ की सख्या सूचित करता है, इसलिए इसमे ल अक्षर नही जोड़ा जा सकता, परंतु ऌ की मात्रा लगायी जा सकती है। निस्सदेह, हाथ से लिखने मे पहले ल मे ऋ की मात्रा और ऌ की मात्रा मे अतर स्पष्ट कर दिया जाता रहा होगा, परन्तु आधुनिक छपाई मे यह अतर मिट गया है।

★ आर्यभटीय की विषय-सूची

इन दोषो के होते हुए भी इस प्रणाली के लिए आर्यभट की प्रतिभा की प्रशसा करनी ही पड़ती है। इसमे उन्होंने थोड़े ही श्लोको मे बहुत-सी बातें लिख डाली है। गागर में सागर भर दिया है।

ऊपर के उद्धृत श्लोक तथा इससे पहले के प्रथम श्लोक की, जिसमे ब्रह्मा और परमब्रह्म की वन्दना की गयी है, कोई क्रमसख्या नहीं दी गयी है, क्योंकि ये प्रस्तावना के रूप मे है और गीतिकापाद मे सम्मिलित नही किये गये है, जैसा कि गीतिकापाद के ११वें श्लोक[1] मे आर्यभट ने स्वय लिखा है। इसके बाद के श्लोक की क्रमसख्या १ है जिसमे सूर्य, चन्द्रमा, पृथ्वी, शनि, गुरु, मगल, शुक्र और बुध के महायुगीय भगणो की सख्या बतायी गयी है। यहाँ एक बात ध्यान देने योग्य है कि आर्यभट ने एक महायुग में पृथ्वी के घूर्णन की सख्या भी दी है, क्योंकि उन्होंने पृथ्वी का दैनिक भ्रमण माना है और इसके लिए आगे गोलपाद के ९वें श्लोक में नौका के चलने का उदाहरण भी दिया है। इस बात के लिए पीछे के आचार्यों ने,

१. दशगीतिकासूत्रमिदं भूग्रहचरितं भपञ्जरे ज्ञात्वा।
ग्रहभगणपरिभ्रमणं स याति भित्त्वा परं ब्रह्म॥

जैसे वराहमिहिर, ब्रह्मगुप्त आदि ने, इनकी निन्दा की है। इससे भी आर्यभट की स्वतंत्रता का पता चलता है।

अगले श्लोक में ग्रहों के उच्च और पात के महायुगीय भगणों की संख्या बतायी गयी है। तीसरे श्लोक में बताया गया है कि ब्रह्मा के एक दिन में कितने मन्वन्तर और युग होते हैं और युधिष्ठिर के महाप्रस्थान के दिन (गुरुवार) के पहले कितने युग और युगपाद बीत चुके थे। इस श्लोक में भी एक नवीनता है। प्रत्येक महायुग में सत्ययुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग भिन्न-भिन्न परिमाण के माने जाते है। परंतु आर्यभट ने सबको समान माना है, उन्होंने लिखा है कि वर्तमान महायुग के तीन युगपाद (=युग के चतुर्थांश) बीत गये थे तब कलियुग लगा। आगे के सात श्लोकों मे राशि,अंश, कला आदि का संबंध; आकाश-कक्षा का विस्तार; पृथ्वी, सूर्य, चंद्र आदि की गति, अंगुल, हाथ, पुरुष और योजन का संबंध; पृथ्वी के व्यास तथा सूर्य, चन्द्रमा और ग्रहों के बिम्बो के व्यास के परिमाण; ग्रहों की क्रान्ति और विक्षेप, उनके पातों और मन्दोच्चो के स्थान, उनकी मंद परिधियों और शीघ्र परिधियो के परिमाण तथा ३ अंश ४५ कला के अंतरों पर ज्याओ के मानो की सारणी है। इस प्रकार प्रकट है कि आर्यभट ने अपनी नवीन संख्या-गणना की पद्धति से ज्योतिष और त्रिकोणमिति की बहुत-सी बातें दस श्लोकों में भर दी हैं।

★ अंकगणित और रेखागणित

आर्यभट पहले आचार्य हुए है जिन्होंने अपने ज्योतिष सिद्धान्त-ग्रंथ मे अंकगणित, बीजगणित और रेखागणित के प्रश्न दिये हैं। उन्होंने बहुत-से कठिन प्रश्नो को तीस श्लोको मे भर दिया है। एक श्लोक तो श्रेढ़ी-गणित के पाँच नियम आ गये है। पहले श्लोक में अपना नाम और स्थान भी बता दिया है। स्थान कुसुमपुर है, जिसे आजकल पटना कहते हैं। दूसरे श्लोक मे संख्या लिखने की दशमलव पद्धति की इकाइयो के नाम हैं। इसके आगे के श्लोकों में वर्ग, वर्गक्षेत्र, घन, घनफल, वर्गमूल, घनमूल, त्रिभुज का क्षेत्रफल, त्रिभुजाकार शंकु का घनफल, वृत्त का क्षेत्रफल, गोल का घनफल, विषम-चतुर्भुज क्षेत्र के कर्णों के सम्पात से भुज की दूरी और क्षेत्रफल तथा सब प्रकार के क्षेत्रों की मध्यम लम्बाई और चौड़ाई जानकर क्षेत्रफल जानने के साधारण नियम दिये गये हैं।

एक जगह बताया गया है कि परिधि के छठे भाग की ज्या उसकी त्रिज्या के समान होती है। एक श्लोक में बताया गया है कि वृत्त का व्यास दो हजार हो तो उसकी परिधि ६२८३२ होती है। इससे परिधि और व्यास का संबंध चौथे दशमलव स्थान तक शुद्ध आ जाता है। दो श्लोकों मे ज्याओं के जानने की व्युत्पत्ति

बतायी गयी है, जिससे सिद्ध होता है कि ज्याओ की सारणी आर्यभट ने कैसे बनायी थी। आगे वृत्त, त्रिभुज और चतुर्भुज खीचने की रीति, समतल के परखने की रीति, लबक (साहुल) प्रयोग करने की रीति, शकु और छाया से छाया-कर्ण जानने की रीति, किसी दीपक और उससे बनी हुई शकु की छाया से दीपक की ऊँचाई और दूरी जानने की रीति, एक ही रेखा पर स्थित दीपक और दो शकुओ के सबध के प्रश्न की गणना करने की रीति, समकोण त्रिभुज के भुजो और कर्ण के वर्गों का सबध, जिसे पाइथागोरस का नियम कहते है, परन्तु जो शुल्वसूत्र मे हजारो वर्ष पहले लिखा गया था, वृत्त की जीवा और शरो का सबध, दो काटते हुए वृत्तो के सामान्य खण्ड और शरो का सबध, दो श्लोको मे श्रेढी-गणित के कई नियम, एक श्लोक मे एक-एक बढती हुई सख्याओ के वर्गों और घनो का योगफल जानने का नियम, यह नियम कि

$$(क + ख)^2 - (क^2 X ख^2) = २ कख,$$

दो राशियो का गुणनफल और अतर जानकर राशियो को अलग-अलग करने की रीति, ब्याज की दर जानने का एक कठिन प्रश्न जो वर्गसमीकरण का उदाहरण है, त्रैराशिक का नियम, भिन्न के हरो को सामान्य हर मे बदलने की रीति, भिन्नो के गुणा और भाग देने की रीति, बीजगणित के कुछ कठिन समीकरणो के सिद्ध करने के नियम, दो ग्रहो के युतिकाल जानने का नियम[1] और कुट्टक नियम बताये गये है।

जितनी बाते ३० श्लोको मे बतायी गयी है उनको यदि आजकल की परिपाटी के अनुसार विस्तार करके लिखा जाय तो एक बडी-सी पुस्तक बन सकती है और उन सबको समझने के लिए हाई स्कूल तक की शिक्षा पाये हुए विद्यार्थी भी कठिनाई का अनुभव करेगे।

❋ कालक्रियापाद

कालक्रियापाद नामक अध्याय मे ज्योतिष सबधी बाते है। पहले दो श्लोको मे काल और कोण की इकाइयो का सबध बताया गया है। आगे के ६ श्लोको मे अनेक प्रकार के मासो, वर्षों और युगो का सबध बताया गया है। यहाँ एक विशेषता है जिसकी चर्चा पहले की जा चुकी है। ब्रह्मा का दिन या कल्प १००८ महायुगो का बताया गया है जो 'गीता', 'मनुस्मृति' तथा अन्य सिद्धान्त-ग्रथो के प्रतिकूल है, क्योकि वे एक हजार महायुगो का कल्प मानते है। नवे श्लोक मे

१ अर्थात् इनडिटर्मिनेट समीकरणो के हल करने का नियम।

बताया गया है कि युग का प्रथमार्ध उत्सर्पिणी और उत्तरार्ध अवसर्पिणी काल है और इनका विचार चन्द्रोच्च से किया जाता है। परन्तु इसका अर्थ समझ मे नहीं आता। किसी टीकाकार ने इसकी सतोषजनक व्याख्या नही की है। दसवे श्लोक की चर्चा पहले ही हो चुकी है जिसमे आर्यभट ने अपने जन्म का समय बताया है। इसके आगे बताया गया है कि चैत्र शुक्ल-प्रतिपदा से युग, वर्ष, मास और दिवस की गणना आरभ होनी है। आगे के २० श्लोको मे ग्रहो की मध्यम और स्पष्टगति सबधी नियम है।

★ गोलपाद

गोलपाद 'आर्यभटीय' का अतिम अध्याय है। इसमे ५० श्लोक है। पहले श्लोक से प्रकट होता है कि रविमार्ग के जिस बिन्दु को आर्यभट ने मेषादि माना है वह वसन्त-विषुव बिन्दु था, क्योकि वे कहते है कि मेष के आदि से कन्या के अत तक रविमार्ग उत्तर की ओर हटा रहता है और तुला के आदि से मीन के अत तक दक्षिण की ओर। आगे के दो श्लोको मे बताया गया है कि ग्रहो के पात और पृथ्वी की छाया, ये रविमार्ग पर भ्रमण करते है। चौथे श्लोक मे बताया गया है कि सूर्य से कितने अतर पर चन्द्रमा, मगल, बुध आदि दृश्य होते है। पाँचवा श्लोक बताता है कि पृथ्वी, ग्रहो और नक्षत्रो का आधा गोल अपनी ही छाया से अप्रकाशित है और आधा सूर्य के सम्मुख होने से प्रकाशित है, यद्यपि नक्षत्रो के सबध मे यह बात ठीक नही है। श्लोक ६, ७ मे बताया गया है कि पृथ्वी के चारो ओर जल-वायु आदि फैले हुए है। ८ वे श्लोक मे यह विचित्र बात बतायी गयी है कि ब्रह्मा के दिन मे पृथ्वी की गोलाई एक योजन बढ जाती है और ब्रह्मा की रात्रि मे एक योजन घट जाती है। श्लोक ९ मे बताया गया है कि जैसे चलती हुई नाव पर बैठा हुआ मनुष्य किनारे के स्थिर पेडो को उलटी दिशा मे चलता हुआ देखता है, वैसे ही लका (भूमध्य रेखा) से स्थिर तारे पच्छिम की ओर चलते हुए दिखाई पडते है। परतु १० वे श्लोक मे यह भी बताया गया है कि प्रवह वायु के कारण नक्षत्र-चक्र और ग्रह पच्छिम की ओर चलते हुए उदय-अस्त होते है।

श्लोक ११ मे सुमेरु पर्वत (उत्तरी ध्रुव) का आकार और श्लोक १२ मे कुमेरु और बडवामुख (दक्षिणी ध्रुव) की स्थिति बतायी गयी है। श्लोक १३ मे विषुवत् रेखा पर नब्बे-नब्बे अश की दूरी पर स्थित चार नगरो का वर्णन है। श्लोक १४ मे लका से उज्जैन का अतर बताया गया है जिससे लका का अक्षाश ज्ञात होता है। श्लोक १५ मे बताया गया है कि भूगोल की मोटाई के कारण खगोल आधे भाग से कम क्यो दिखाई पडता है। १६ वे लोक मे बताया गया है कि उत्तरी ध्रुव और दक्षिणी ध्रुव पर खगोल किस प्रकार घूमता हुआ दिखाई

पडता है। श्लोक १७ में देवताओ, असुरो, पितरो और मनुष्यो के दिन-रात का परिमाण है। श्लोक १८ से २१ तक खगोल-गणित की कुछ परिभाषाएँ हैं। श्लोक २२,२३ में भू-भगोल यन्त्र का वर्णन है। श्लोक २४-३३ मे त्रिप्रश्नाधिकार के प्रधान सूत्रो का वर्णन है, जिनसे लग्न, काल आदि जाने जाते हैं। श्लोक ३४ मे लम्बन, ३५ मे दृक्कर्म और ३६ मे अयन दृक्कर्म का वर्णन है। श्लोक ३७ से ४७ तक में सूर्य और चद्रमा के ग्रहणो की गणना करने की रीति है। श्लोक ४८ में बताया गया है कि क्षितिज और सूर्य के योग से सूर्य के, सूर्य और चद्रमा के योग से चन्द्रमा के, और चन्द्रमा, ग्रह तथा तारो के योग से सब ग्रहो के मूलाङ्क जाने गये है। श्लोक ४९ मे बताया गया है कि सत् और असत् ज्ञान के समुद्र से बुद्धि रूपी नाव मे बैठकर सद्ज्ञान रूपी प्रथरत्न किस प्रकार निकाला गया है। श्लोक ५० में बताया गया है कि 'आर्यभटीय' ग्रथ वैसा ही है जैसा आदि काल मे स्वयम्भू का था, इसलिए जो कोई इसकी निन्दा करेगा उसके यश और आयु का नाश होगा।

'आर्यभटीय' के इतने वर्णन से स्पष्ट हो जाता है कि इसमे ज्योतिष-सिद्धात की प्राय सभी बाते और उच्च गणित की कुछ बातें सूत्र रूप मे लिखी गयी है। इसमे तिथि, नक्षत्र आदि की गणना तथा नक्षत्रो की सूची और उनकी स्थितियो के सबध मे कुछ नही कहा गया है। जान पडता है कि इन सब बातो का विशद विवेचन आर्यभट ने अपने दूसरे ग्रथ मे किया था जिसका पता अब नही है।

★ आर्यभटीय की टीकाएँ

दक्षिण भारत मे 'आर्यभटीय' के आधार पर बने हुए पचाग वैष्णव धर्म वालो को मान्य होते है। ब्रह्मगुप्त ने, जो आर्यभट के बडे तीव्र समालोचक थे, अत मे इसी के आधार पर 'खण्डखाद्यक' नामक करण-ग्रथ लिखा था। हिन्दी मे आर्यभटीय' की कोई अच्छी टीका नही है। सस्कृत मे इसकी चार टीकाएँ है। प्रथम भास्कर, सूर्यदेव यज्वा, परमेश्वर और नीलकठ की टीकाओ की चर्चा हिस्ट्री ऑव हिन्दू मैथिमैटिक्स[1] मे है। इनमे से परमेश्वर या परमादीश्वर की 'भटदीपिका' टीका के साथ उदयनारायण सिंह ने अपनी हिन्दी की टीका सवत् १९६३ मे प्रकाशित की थी। सूर्यदेव यज्वा की सस्कृत टीका का नाम आर्यभटप्रकाश है। यह टीका भटदीपिका से बहुत अच्छी है, परन्तु अभी तक छपी नही है। अँग्रेजी मे 'आर्यभटीय' की एक टीका डाक्टर कर्न ने भटदीपिका के साथ सन् १८७४ ई० मे लाइडेन (हालैण्ड) मे छपायी थी।

१ विभूतिभूषण दत्त तथा अवधेश नारायण सिंह कृत।

६

वराहमिहिर

★ पचसिद्धातिका

भारतीय ज्योतिष के इतिहास मे वराहमिहिर-लिखित 'पचसिद्धातिका' का विशेष महत्त्व है, क्योकि इस अकेले ग्रथ से पाँच विभिन्न सिद्धातो का परिचय मिलता है, जिनमे से कुछ तो वराहमिहिर के समय से बहुत प्राचीन समय के थे और कुछ उसी समय के। बहुत दिनो तक यह ग्रथ अप्राप्य था, परतु प्रोफेसर बूलर, जिनको बबई की सरकार ने सस्कृत की हस्तलिखित पोथियो की खोज का काम सिपुर्द किया था, इसकी दो प्रतियाँ प्राप्त करने मे सफल हुए। डाक्टर थीबो और महामहोपाध्याय पडित सुधाकर द्विवेदी ने इसे अग्रेजी अनुवाद और सस्कृत टीका सहित सन् १८८९ मे प्रकाशित किया। डाक्टर थीबो ने इस अनुवाद के साथ एक विस्तृत भूमिका भी लिखी है। नीचे दी हुई बातें अधिकतर थीबो के अनुसार हैं।

पुस्तक की मूल दोनो प्रतियाँ बहुत स्थानो मे अशुद्ध थी, यहाँ तक की उनका अर्थ लगाना कठिन था। अनुमान से पाठ का सशोधन करके सशोधित पाठ छापा गया है। परंतु कही-कही तो इस प्रकार का अनुमान लगाना भी कठिन हो गया। यदि 'पचसिद्धातिका' का कोई प्राचीन भाष्य होता तो इतनी कठिनाई न होती, परतु दुर्भाग्यवश कोई भी भाष्य उपलब्ध न था।

'सूर्य-सिद्धात' मे लिखा है कि सूर्य ने स्वय इस पुस्तक मे बतायी गयी विद्या को मयासुर को बताया और उसने दूसरो को। इस प्रकार पाठको के हृदय मे यह बात जम जाती है कि उस पुस्तक मे कोई त्रुटि नही हो सकती, क्योकि उसमे स्वय सूर्य भगवान् की बतायी हुई बातें हैं। इसी प्रकार अन्य सिद्धातों मे भी प्रामा-

णिकता प्राप्त करने की कोई-न-कोई कथा रहती है। वराहमिहिर भी चाहते तो अपना सिद्धात ही लिखते, उनके पाडित्य मे कोई भी शका नही है। परंतु उन्होने उसके बदले अपने समय के पाँच प्रमुख सिद्धातो का साराश दिया। इतिहास की दृष्टि से यह बहुत ही अच्छा हुआ।

★ करण ग्रन्थ

यद्यपि ग्रथ का नाम 'पचसिद्धातिका' है, जिससे बोध होता है कि इसमे पाँच सिद्धात दिये गये हैं, तो भी यह करण ग्रथ है। 'करण ग्रथ' का अर्थ है काम-चलाऊ पुस्तक। करण ग्रथो मे ऐसे नियम दिये रहते है जिनमे ज्योतिष की प्रमुख गणनाएँ चटपट हो जाती है, चाहे उत्तर पूर्णतया शुद्ध होने के बदले केवल मोटे ही हिसाब से शुद्ध निकले। सिद्धान्त-ग्रथो मे नियमो के सिद्धात दिये रहते है और ऐसे नियम दिये रहते है जिनसे उत्तर यथासभव शुद्ध निकले, चाहे उन्हें निकालने मे बहुत अधिक समय क्यो न लगे। परतु पचसिद्धान्तिका मे कई स्थानो मे ऐसे विषय भी हैं जो साधारणत करण ग्रथो मे नही रहते, केवल सिद्धातो मे रहते हैं।

★ विवादग्रस्त अध्याय

'पचसिद्धान्तिका' मे पैतामह, वासिष्ठ, रोमक, पौलिश और सौर (सूर्य) इन पाँच सिद्धातो का साराश दिया गया है। वराहमिहिर ने यह भी लिख दिया है कि इन सिद्धातो मे सबसे उत्तम कौन-सा है और शेष के स्थान क्या है। उन्होने कहा है कि सूर्यसिद्धात सबसे उत्तम है, उसके बाद रोमक और पौलिश लगभग समकक्ष है और शेष दो सिद्धात इनसे बहुत हीन है। 'पचसिद्धान्तिका' मे इन सिद्धातो का विस्तार भी लगभग इसी क्रम मे है। परतु थीबो और सुधाकर द्विवेदी यह ठीक-ठीक निर्णय नही कर पाये कि प्रत्येक सिद्धात का विस्तार 'पचसिद्धातिका' मे कहाँ तक है, क्योकि कुछ अध्याय ऐसे है जिनके न आरभ मे और न अत मे, या कही अन्यत्र, बताया गया है कि किस सिद्धान्त के अनुसार वह अध्याय लिखा गया है। अधिकाश अध्यायो के बारे मे कोई सदेह नही है। विवादग्रस्त अध्याय सभवत वराहमिहिर के निजी हैं, या सभवत वे दो या अधिक सिद्धातो मे सर्वनिष्ठ है।

★ सूर्य-सिद्धात

'सूर्यसिद्धात' नामक ग्रथ हमे अलग से भी उपलब्ध है और इस ग्रथ का साराश 'पचसिद्धातिका' मे भी है। तुलना करने से पता चलता है कि दोनो मे बहुत अतर है। ऐसा जान पडता है कि पुराने 'सूर्यसिद्धात' मे, जो वराहमिहिर के समय मे प्रचलित था, पीछे से सशोधन कर दिये गये हैं, जिनका उद्देश्य यह था

कि सूर्य, चन्द्रमा आदि के भगण (चक्कर लगाने का काल) वेध-प्राप्त (अर्थात् आँख से देखे गये या यत्रों से नापे गये) मानों के यथासभव निकट आ जायँ। सशोधित 'सूर्यसिद्धात' पुराने ग्रथ से अधिक शुद्ध फल देता है, इसमे सदेह नही। इस सशोधित 'सूर्यसिद्धात' को हम 'आधुनिक सूर्यसिद्धात' कहा करेंगे, यद्यपि सशोधन हुए लगभग १००० वर्ष हो गये हैं। कई बातो के सूक्ष्म विवेचन से थीबो और सुधाकर द्विवेदी इस निर्णय पर पहुँचे कि वराहमिहिर ने अपने समय मे प्रचलित 'सूर्यसिद्धात' का सच्चा साराश दिया है, उसमें कोई मनमाना परिवर्तन नही किया है। इससे उनको विश्वास हो गया कि अन्य चार सिद्धातो का साराश भी वराहमिहिर ने बिना कोई महत्त्वपूर्ण परिवर्तन किये ही दिया होगा।

सिद्धात ग्रथो मे कलियुग के आरभ से गणना करने की परिपाटी है। आधुनिक 'सूर्यसिद्धात' मे दी हुई बातो के अनुसार हम कलियुग के आरभ की गणना कर सकते है। इस प्रकार कलियुग का आरभ ३१०२ ईसवी पूर्व की १८ वी फरवरी के प्रारभ वाली अर्धरात्रि पर होना ठहरता है। सिद्धातो मे यह भी बताया जाता है कि कलियुग के आरभ मे सूर्य, चद्रमा, मगल, बुध आदि ग्रह, राहु और वसत विषुव का क्या स्थान था। यह भी दिया रहता है कि एक युग मे कितने वर्ष और कितने अहोरात्र होते है, चद्रमा कितने चक्कर लगाता है, मगल कितने, इत्यादि। इस प्रकार सूर्य आदि पिडो का कोणीय वेग ज्ञात रहता है, उनकी प्रारभिक स्थिति ज्ञात रहती है और यह भी ज्ञात रहता है कि कलियुग के आरभ से इष्ट समय तक कितने दिन बीते है। इसलिए सरल अकगणित से ज्ञात किया जा सकता है कि इष्ट समय पर उस पिड की स्थिति क्या है, अर्थात् चलते-चलते अपने आकाशीय मार्ग मे वह पिड कहाँ पहुँचा होगा।

★ लबी गणनाएँ

थोडा विचार करने मे पाठक सुगमता से देख सकता है कि ऊपर की रीति मे बहुत-सा परिश्रम बेकार करना पडता है। पिड ने जितने समूचे चक्कर लगा लिये है उनसे हमारा कुछ प्रयोजन नही रहता। इसलिए कलियुग के आरभ से गणना करने के बदले क्यो न किसी निकटतर क्षण से गणना आरभ की जाय? उदाहरणार्थ, यह भी तो सभव है कि हम किसी सुविधाजनक दिनाक को चुन ले, उस दिन के किसी सुविधाजनक क्षण को चुन लें और सब आवश्यक आकाशीय पिडो की स्थितियो की गणना उस क्षण के लिए कर लें। यह काम बस एक बार करना पडेगा। फिर यह देखें कि चुने गये क्षण से इष्ट क्षण तक (आज स्थिति जाननी हो तो आज तक) कितने दिन बीते हैं। फिर, पिडो का कोणीय वेग ज्ञात है ही,

अर्थात् यह ज्ञात है कि एक दिन मे वह कितने अंश (कितनी डिगरी) चलता है। इस प्रकार हम गणना कर सकते हैं कि इष्ट क्षण पर पिंड की स्थिति क्या होगी। इस गणना मे विशेष सुविधा यह है कि चुने हुए प्रारंभिक क्षण से इष्ट क्षण तक थोड़े ही दिन बीते रहेगे (कुछ सौ या कुछ हजार दिन) और इसलिए यदि पिंडो की दैनिक गति मे थोड़ी-बहुत त्रुटि भी रहेगी तो इष्ट क्षण पर गणना द्वारा प्राप्त स्थिति मे उपेक्षणीय ही अन्तर पड़ेगा। पाठक सुगमता से समझ सकता है कि जब कलियुग के आरभ से गणना की जाती है तो तब से आज तक के दिनो की सख्या, जिसे ज्योतिष मे अहर्गण कहते है, बहुत ही बड़ी हो जाती है, और पिंड मे तनिक-सी भी त्रुटि रहने से पिंड की इष्टकालिक स्थिति में अनुपेक्षणीय अशुद्धि आ जाती है।

करण ग्रथो मे ठीक वही काम किया जाता है जो ऊपर बताया गया है. एक क्षण चुन लिया जाता है जो इष्ट समय के पर्याप्त निकट रहता है और तभी से गणना की जाती है। वस्तुत., कुछ लोग इसी बात को करण ग्रथ का मुख्य लक्षण समझते है। उनके विचार मे वह ग्रथ सिद्धात है जिसमे कलियुग के आरभ से गणना हो और वह करण ग्रथ है जिसमे किसी निकटस्थ विशिष्ट कालमे गणना हो।[१] यह विशिष्ट काल (जिसे हम आदिकाल कहेगे) ग्रथकार की रुचि के अनुसार ग्रथ आरभ करने का दिन होता है, या ग्रथकार का जन्म दिन होता है, या उस समय के राजा के राजगद्दी पाने का दिन होता है, या इसी प्रकार का कोई महत्त्वपूर्ण अवसर चुना जाता है। इसलिए आदिकाल ज्ञात होने से ग्रन्थ के रचनाकाल का भी अनुमान लग जाता है। 'पचसिद्धातिका' के आदिकाल पर नीचे विचार किया जायगा।

★ पितामह-सिद्धात

'पचसिद्धातिक' का बारहवाँ अध्याय पितामह-सिद्धात का साराश देता है। इस अध्याय मे कुल पाँच श्लोक है। प्रथम तीन का अर्थ नीचे दिया जाता है, जिससे 'पचसिद्धातिका' की शैली का नमूना मिल जायगा —

१ पितामह के अनुसार रवि और शशी का युग पाँच वर्ष का होता है। तीस महीने में एक अधिमास होता है और बासठ दिनो में एक तिथि का क्षय होता है।

१ कुछ लोग कलियुग से गणना करने वाले ग्रथो को तंत्र कहते हैं, और केवल उन ग्रथो को सिद्धांत कहते हैं जिनमे कल्प के आदि से गणना की जाती है, परतु अधिकांश लोग सिद्धांत और तत्र को पर्यायवाची समझते हैं।

२. शकेंद्र काल (शकों के राजा के अनुसार चलने वाले वर्ष) से २ घटा दो और उसे पाँच से भाग दो। जो शेष बचे उससे अहर्गण बनाओ, और वह (अहर्गण) माघ शुक्ल पक्ष से आरम्भ होगा।

३ यदि अहर्गण में उसी का इकसठवाँ भाग जोड़ दिया जाय तो योगफल तिथियाँ बतायेगा। यदि अहर्गण को ९ से गुणा किया जाय और गुणनफल को १२२ से भाग दिया जाय तो फल सूर्य का नक्षत्र बतायेगा। अहर्गण को ७ से गुणा करो, फिर ६१० से भाग दो और फल को (अहर्गण से) घटाओ। फल चन्द्रमा का नक्षत्र होगा, जो धनिष्ठा के आरम्भ से गिना जायगा।

ऊपर के अनुवाद में बहुत से शब्द आ गये हैं जो मूल संस्कृत में नहीं हैं। मूल पाठ तो बहुत ही संक्षिप्त है, उदाहरणार्थ तीसरा श्लोक[1]—

सैकषष्टयंशो गणे तिथिर्भमार्कं नवाहतेऽभ्यर्के.।
द्विघ्नसमांशे. सप्तभिरून शशिभं धनिष्ठाद्यम् ॥३॥

'पंचसिद्धांतिका' में १८ अध्याय हैं और कुल ४४२ श्लोक हैं।

ऊपर के उद्धरण से स्पष्ट है कि पैतामह-सिद्धान्त में वेदांग-ज्योतिष की तरह पाँच वर्ष का युग था। अन्य बातों में भी यह वेदांग-ज्योतिष से मिलता-जुलता है। वर्ष में महत्तम दिनमान १८ मुहूर्त माना गया है और लघुतम दिनमान १२ मुहूर्त।

★ रोमक-सिद्धान्त

'पंचसिद्धांतिका' के प्रथम अध्याय के पन्द्रहवें श्लोक में रोमक-सिद्धांत के युग का संक्षिप्त वर्णन है। यह युग भी सूर्य और चन्द्रमा का युग कहा गया है, परन्तु इसमें २८५० वर्ष हैं। कहा गया है कि एक युग में १०५० अधिमास होते हैं और १६५४७ क्षय तिथियाँ। यदि हम इन संख्याओं को १५० से भाग दे दें तो रोमक-सिद्धांत के अनुसार १९ वर्ष में ठीक-ठीक ७ अधिमास होते हैं। ये संख्याएँ ठीक वे ही हैं जिनका प्रचार प्रसिद्ध यवन ज्योतिषी मेटन ने लगभग ४३० ई० पू० में—वराहमिहिर के समय से लगभग एक हजार वर्ष पहले—किया था। रोमक-सिद्धान्त के कर्त्ता ने १९ वर्ष का युग न मानकर २८५० वर्षों का युग इसलिए लिया कि युग में केवल वर्षों और मासों की ही संख्याएँ पूर्ण संख्याएँ न हों, दिनों की संख्या भी पूर्ण संख्या हो। रोमक-सिद्धान्त में दी हुई बातों के आधार पर गणना करने से पता चलता है कि उसके कर्ता के अनुसार वर्ष का मान—

३६५ दिन ५ घण्टा ५५ मिनट १२ सेकण्ड

१ यह संशोधित पाठ है।

था। आधुनिक ज्योतिष के अनुसार वर्ष[1] लगभग ३६५ दिन ५ घंटा ४८ मिनट ४६ सेकंड का होता है। रोमक का वर्षमान ठीक वही है जो यवन ज्योतिषी हिपार्कस का था।[2]

कुछ अन्य बातो मे भी रोमक-सिद्धान्त और यवन (अर्थात् ग्रीस देश के) ज्योतिष मे समानता है, परन्तु कई बातो मे भिन्नता भी है।

★ रोमक-सिद्धान्त का लेखक

रोमक-सिद्धान्त को श्रीषेण ने लिखा था। परन्तु थीबो का मत है कि श्रीषेण ने कोई मौलिक पुस्तक नही लिखी थी। उसने किसी पुराने रोमक-सिद्धात को केवल नवीन रूप दिया था। ब्रह्मगुप्त ने अपने 'स्फुट-सिद्धान्त' मे श्रीषेण के नाम का कई बार उल्लेख किया है और इन स्थानो पर टीका करते समय ब्रह्मगुप्त के टीकाकार ने स्पष्ट रूप से और कई बार लिखा है कि रोमक-सिद्धान्त का लेखक श्रीषेण था। परन्तु थीबो ने 'स्फुट-सिद्धान्त' के पाठ का कुछ सशोधन करके निम्न अर्थ लगाया है—

"श्रीषेण, विष्णुचन्द्र, प्रद्युम्न, आर्यभट, लाट और सिंह की ग्रहणादि विषयो पर बाते एक दूसरे के विपरीत होने से यह प्रति दिवस सिद्ध है कि वे अज्ञानी है। (इस अध्याय के पूर्वगामी खण्ड मे) मैने जो दूषण आर्यभट के सम्बन्ध मे बताये है वे थोडे हर-फेर से पूर्वोक्त सभी आचार्यों पर लागू है। परन्तु मै श्रीषेण आदि पर कुछ और आलोचना करता हूँ।" "लाट से श्रीषेण ने सूर्य और चन्द्रमा की मध्य गतियाँ ली, चन्द्रोच्च और पात भी लिया, फिर मगल, बुध-शीघ्र, बृहस्पति, शुक्र-शीघ्र और शनि की गतियाँ भी ली, वसिष्ठ से व्यतीत वर्षों की सख्या और युगो का भगण लिया, आर्यभट से मन्दोच्च, परिधि और पात सम्बन्धी नियम लिये और ग्रहो की स्पष्ट गतियाँ भी, और इस प्रकार रत्नो के ढेर रोमक को श्रीषेण ने गूदड बना डाला।"

★ रोमक-सिद्धान्त का काल

'पञ्चसिद्धान्तिका' मे दिये हुए रोमक-सिद्धात के अनुसार अहर्गण बनाने के लिए यह आदेश है कि शक वर्ष से ४२७ घटाया जाय। इसका अर्थ यह है कि शक ४२७ आदिकाल माना गया है जहाँ से अहर्गण आदि की गणना प्रारभ की गयी

१ यह सायन वर्ष का मान है, सायन वर्ष वह वर्ष है जो ऋतुओं के अनुसार चलता है।

२ हिपार्कस का काल सन् १४६-१२७ ई० पू० के लगभग है।

है। इसलिए शक ४२७ को ही लोग वराहमिहिर का समय मानते हैं। अलबरूनी ने भी इसी को 'पचसिद्धातिका' का समय माना है। डाक्टर कर्न का मत है कि शक ४२७ (= सन् ५०५ ईसवी) वराहमिहिर के जन्म का वर्ष है। उसका देहान्त शक ५०९ में हुआ, ऐसा आमराज ने लिखा है, और दोनो मे सामजस्य है। यह भी विचार योग्य है कि आर्यभट का जन्म शक ३९८ मे हुआ था और उसने अपनी पुस्तक 'आर्यभटीय' की रचना शक ४२१ मे की थी। आर्यभट का उल्लेख 'पचसिद्धातिका' मे है। इसलिए इतना तो प्रत्यक्ष है कि 'पचसिद्धातिका' शक ४२१ वर्षों के बाद लिखी गयी होगी।

प्रश्न यह उठता है कि शक ४२७ स्वय रोमक-सिद्धात का ही आदिकाल तो नही था। परन्तु बात ऐसी नही जान पडती। एक तो वराहमिहिर ने बहुत अर्वाचीन सिद्धात को पर्याप्त प्रामाणिक नही माना होगा, दूसरे, ब्रह्मगुप्त के स्फुट-सिद्धात मे लाटदेव का नाम आया है जिससे श्रीषेण ने सूर्य, चन्द्रमा आदि की गतियाँ ली। वराहमिहिर ने स्वय अध्याय १५, श्लोक १८ मे लिखा है—"लाटाचार्य ने कहा है कि यवनपुर के सूर्यास्त से अहर्गण की गणना की जाती है।" इससे स्पष्ट है कि लाटाचार्य अवश्य थे और वे श्रीषेण से पर्याप्त पहले रहे होगे, अन्यथा श्रीषेण को नवीन सिद्धात लिखने की आवश्यकता ही नही रहती। इन सब बातो से यही अनुमान किया जाता है कि रोमक-सिद्धात और भी पुराना रहा होगा, और शक ४२७ रोमक-सिद्धात का निजी आदिकाल नही है, इसे वराहमिहिर ने चुना होगा।

'पचसिद्धातिका' मे रोमक सिद्धात के अतिरिक्त रोमक देश का भी नाम आया है, यवनपुर, यवनाचार्य आदि शब्द भी आये है। यवनपुर का देशान्तर भी दिया है, जिससे पता चलता है कि यवनपुर अलेक्जेंड्रिया[1] नामक नगर रहा

१ सन् ३३२ ई० पू० मे इस नगर की नीव अलेक्जेंडर महान् (सिकन्दर) ने डाली थी और अब यह मिस्र देश (ईजिप्ट) का प्रमुख नौकाशय (बन्दरगाह) है। नींव पडने के सौ वर्ष के भीतर ही यह बहुत बडा शहर हो गया था। यह यूरोप तथा अरब और भारतवर्ष के बीच वाणिज्य का केन्द्र था। यहाँ पर यवनों का सबसे बडा विश्वविद्यालय था। परन्तु सन् ८० ई० पू० मे यह रोमन लोगों के हाथ मे चला गया। ऑगस्टस सीजर के काल में इसकी जनसंख्या ३ लाख थी। सन् ६१६ मे इस पर अरब वालो का अधिकार हो गया। अरब सेनापति अम्र ने अपने नरेश को अलेक्जेंड्रिया जीतने पर लिखा था—"४,००० महल, ४,००० स्नानागार, १२,००० तेल बेचने वाले, १२,००० माली ४०,००० यहूदी जो कर देते हैं और ४०० नाट्यशालाएँ है।" दसवें अध्याय के दूसरे चित्र मे इस नगर की स्थित दिखायी गयी है।

होगा। फिर, जैसा ऊपर बताया गया है, रोमक-सिद्धांत के मुख्य स्थिरांक वे ही थे जो यवन ज्योतिष मे प्रचलित थे। इन सब बातों से स्पष्ट हो जाता है कि रोमक-सिद्धात यवन ज्योतिष पर आश्रित था।

★ पुलिश-सिद्धात

'पचसिद्धातिका' की प्राप्य प्रतियो मे उस श्लोक का पाठ जिसमे पुलिश-सिद्धात के अनुसार अहर्गण बनाने का नियम है, इतना अशुद्ध था कि थीबो और सुधाकर ठीक से उसका अर्थ न लगा सके। परन्तु इसमे एक स्थान पर ९७६ की सख्या है (ऋतु सप्त नव नवत), अवश्य ही यह उन दिनो की संख्या होगी जिसके पश्चात् एक अधिमास पडता है। इसी प्रकार ६३ (त्रिऋतु) सम्भवतः उन दिनो की सख्या है जिसके पश्चात् एक तिथि का क्षय होता है। जान पडता है कि पुलिश-सिद्धात ने किसी बडे युग को लेकर उसमे कुल अधिमासो और क्षय तिथियो को बताने की रीति को नही अपनाया। उसने यही बताकर काम चला लिया कि कितने-कितने दिनो पर अधिमास पडता है या क्षय तिथि पडती है। पुलिश-सिद्धांत मे वर्ष ३६५ दिन ६ घटा १२ मिनट का माना गया है।

पुलिश-सिद्धात मे ग्रहणो की गणना के लिए भी नियम दिये गये है, परन्तु वे सूर्य-सिद्धात और रोमक-सिद्धात के नियमों की अपेक्षा बहुत स्थूल है। गणना की सुविधा के लिए सन्निटक मानो और सन्निकट नियमो से काम चलाया गया है। पुलिश-सिद्धात मे उज्जयिनी (उज्जैन) और काशी (बनारस) से यवनपुर का देशान्तर दिया गया है, जिससे स्पष्ट हो जाता है कि यवनपुर अलेक्जैड्रिया ही रहा होगा।

'पुलिश-सिद्धात' नामक ग्रन्थ का उल्लेख भट्टोत्पल ने वराहमिहिर की 'बृहत्सहिता' की टीका मे और पृथूदक स्वामी ने ब्रह्मगुप्त के 'स्फुट-सिद्धात' की टीका मे किया है। परन्तु इन दोनों टीकाकारो ने जिस पुलिश-सिद्धात का उल्लेख किया है वह कोई और ही ग्रन्थ रहा होगा, क्योकि उसमे एक महायुग था जिसमे वर्षों, मासों, दिनो और ग्रहों के भगणो की सख्याएँ पूर्ण सख्याएँ थी। उसमें वर्षमान ३६५ दिन ६ घटे १२ मिनट ३६ सेकण्ड था, जो वराहमिहिर मे उल्लिखित पुलिश-सिद्धांत से भिन्न है।

★ वसिष्ठ-सिद्धांत

वसिष्ठ-सिद्धांत (या वासिष्ठ सिद्धात) बहुत सक्षेप मे ही 'पचसिद्धांतिका' में दिया गया है। यह बहुत कुछ पितामह-सिद्धान्त की तरह है, परन्तु उससे कई बातो मे अधिक शुद्ध है। वराहमिहिर ने स्वय इस सिद्धात और पितामह-सिद्धात

को निम्नतम श्रेणी का माना है। पितामह-सिद्धांत की तरह वसिष्ठ-सिद्धांत में भी माना गया है कि जब दिन बढ़ने लगता है तो प्रति दिन बराबर वृद्धि होती है (जो अशुद्ध है, या बहुत स्थूल है), परन्तु लघुतम और महत्तम दिनों के मान पितामह-सिद्धात के मानो से भिन्न हैं।

वसिष्ठ-सिद्धात में राशियों की चर्चा है। लग्न भी है, जो बताता है कि रविमार्ग का कौन सा भाग पूर्वीय क्षितिज से लगा हुआ है। परन्तु सूर्य, चन्द्रमा आदि की मध्यक और स्पष्ट गतियो मे भेद का ज्ञान इस सिद्धांत के कर्ता को न था। इसलिए वसिष्ठ-सिद्धात की गिनती उस श्रेणी मे नही की जा सकती जिसमें सूर्य-सिद्धात आदि हैं।

ब्रह्मगुप्त के 'स्फुट-सिद्धांत' मे विष्णुचन्द्र के लिखे वसिष्ठ-सिद्धात का उल्लेख है, परन्तु वहाँ अर्थ यह जान पड़ता है कि जैसे श्रीषेण ने रोमक-सिद्धान्त को गुडड बना दिया वैसे ही विष्णुचन्द्र ने वसिष्ठ-सिद्धात को। ब्रह्मगुप्त तथा वराहमिहिर के एक-दो सकेतों से ऐसा जान पड़ता है कि वसिष्ठ-सिद्धात की रचना विजयनदी ने की थी, यद्यपि यह बात स्पष्ट रूप से नहीं कही गयी है।

वर्तमान समय मे जो ग्रन्थ लघु वसिष्ठ-सिद्धांत के नाम से छपता है उसका कोई सबध 'पचसिद्धातिका' के वसिष्ठ-सिद्धात से नही दिखाई पड़ता।

★ सूर्यसिद्धात

'पचसिद्धातिका' के सूर्य-सिद्धात की चर्चा आधुनिक 'सूर्यसिद्धात' के सम्बन्ध मे आगे की जायगी।

★ तुलना

'पचसिद्धांतिका' के पाँच सिद्धातो की तुलना से स्पष्ट पता चलता है कि किस प्रकार भारतीय ज्योतिष धीरे-धीरे विकसित होकर सूर्यसिद्धांत के ज्योतिष मे परिवर्तित हुआ। पितामह-सिद्धात वेदाग-ज्योतिष, गर्ग-सहिता, सूर्य-प्रज्ञप्ति आदि की जाति का था। इन सब ग्रथो में पाँच वर्ष का युग था, सूर्य आदि आकाशीय पिंड सदा समान वेग से चलते हुए माने जाते थे और दिन समान रूप से बढ़ता हुआ माना जाता था। सूर्य और चद्रमा की स्थिति साधारणतया नक्षत्रों से बतायी जाती थी। उत्तरायण का आरभ तब माना जाता था जब सूर्य धनिष्ठा के आदि बिंदु पर रहता था। वराहमिहिर की 'पचसिद्धातिका' में पितामह-सिद्धांत के अनुसार पचवर्षीय युग की गणना करने के लिए शक २ से आरम्भ करने को कहा गया है।

इन प्राचीन ज्योतिष ग्रथो की एक-दो विशेषताएँ बाद के सभी ग्रथो मे अप-नायी गयी, यथा एक तो युग का महत्त्व। सभी सिद्धात-ग्रथो मे युग का प्रयोग किया गया। युग लबे होते गये, परतु उनका तिरस्कार किसी ने नही किया, यद्यपि ऐसा करना सभव था। करण-ग्रथो के रचयिताओ ने अवश्य उनका तिरस्कार किया। दूसरी बात थी तिथियो का प्रयोग। यह तो आज तक चालू है। अन्य किसी देश मे तिथियो का प्रयोग नही होता।

वसिष्ठ-सिद्धात पितामह-सिद्धात से अधिक विकसित है, परतु सूर्य-सिद्धात से बहुत निम्न कोटि का है।

शेष तीन सिद्धात—पौलिश, रोमक और सौर—तीनो बहुत कुछ एक तरह के हैं। इन तीनो मे उन विषयो का समावेश है जो नवीन भारतीय ज्योतिष के द्योतक थे। इन सब मे सूर्य और चद्रमा की स्पष्ट गतियो की भी चर्चा है, अर्थात् उनकी स्थिति केवल यह मान कर नही निकाली गयी है कि वे सदा समान कोणीय वेग से चलते हैं, यह भी बताया गया है कि उनका कोणीय वेग समान वेग से कितना अधिक या न्यून कब रहता है। पौलिश और रोमक सिद्धातो मे अधिक सादृश्य है। सूर्यसिद्धात इन दोनो से अधिक विकसित है, अधिक शुद्ध और अधिक परिपूर्ण है। सूर्यसिद्धात मे ग्रहण-गणना के नियम पूर्ण और पर्याप्त है, उनकी तुलना मे रोमक-सिद्धात के नियम बहुत कम और स्थूल है, और पौलिश सिद्धात के नियम तो और भी स्थूल है

ग्रीष्म अयनात पहले आश्लेषा के मध्य मे होता था और वराहमिहिर के समय मे पुनर्वसु के आरभ मे। ये बाते वराहमिहिर को ज्ञात थी, क्योकि 'पच-सिद्धातिका' मे दोनो की चर्चा है, परतु उसने कोई बात ऐसी नही लिखी है जिससे पता चले कि उसने इसका कारण समझ लिया था कि वसत विषुव तारो के सापेक्ष पीछे-मुँह क्यो खिसकता रहता है।

★ यवन ज्योतिष से सबध

पौलिश और रोमक सिद्धातो के नामो से ही सदेह होता है कि इनका सबध यवन ज्योतिष से था। इन दोनो मे वर्ष का मान वह है जो सायन वर्ष का है (नाक्षत्र वर्ष का नही, जो सूर्य-सिद्धात मे है)।[१] एक मे अहर्गण की गणना यवनपुर

१ सायन वर्ष वह है जिसका आरंभ सदा एक ही ऋतु में पड़ता है, चाहे हजारो वर्ष क्यो न बीत जायें। नाक्षत्र वर्ष वह है जिसका आरंभ सूर्य के सदा किसी विशेष तारे के पास पहुँचने पर होता है। अयन के कारण दोनों मे लगभग २० मिनट का अन्तर है।

के याम्योत्तर से की गयी है और दूसरे में यवनपुर से उज्जयिनी का देशान्तर दिया गया है। दोनों में वे नवीन बातें हैं जो यवन-ज्योतिष में थी, परन्तु वेदांग-ज्योतिष, पितामह-सिद्धांत और वसिष्ठ-सिद्धांत मे नहीं थीं। इससे यह धारणा होती है कि नवीन भारतीय ज्योतिष यवन-ज्योतिष पर आधारित था। परन्तु जब इसकी खोज की जाती है कि किस विशेष यवन पुस्तक या यवन आचार्य से भारतीयों ने अपना ज्ञान प्राप्त किया तो बड़ी कठिनाई पड़ती है। यवन और नवीन भारतीय ज्योतिष मे सादृश्य होते हुए भी पर्याप्त भिन्नता है। ऐसा जान पड़ता है कि भारत में यवन ज्योतिषियो का ज्ञान हिपार्कस के बाद और टॉलमी[1] के पहले आया, सभवत थोड़ी-थोड़ी मात्रा मे और कई बार, और भारतीय ज्योतिषियो ने इस ज्ञान को अपने निजी विवेचन और खोज से अपने विशेष साँचे मे ढाल लिया और फिर वे उसकी उन्नति करते रहे। सूर्य-सिद्धात मे कई बातें ऐसी हैं जो विशेष महत्त्व की हैं और यवन-ज्योतिष में नही मिलती।

वराहमिहिर ने आर्यभट के सिद्धांत का साराश अपनी 'पंचसिद्धांतिका' मे नही दिया। इससे समझा जा सकता है कि उसके समय मे आर्यभट का ग्रथ इतना प्राचीन नही समझा जाता था जितना रोमक-सिद्धांत या सूर्य-सिद्धांत। 'आर्यभटीय' के नियम सूर्य-सिद्धात के नियमो से मिलते-जुलते हैं। वस्तुतः सूर्य-सिद्धांत के नियमों को अधिक शुद्ध करने की चेष्टा भी आर्यभट ने की थी, परन्तु वर्तमान 'सूर्य-सिद्धात' आर्यभटीय से अधिक शुद्ध है, जैसा एक अन्य अध्याय मे विस्तार से दिखाया गया है।

★ त्रैलोक्य-संस्थान

'पचसिद्धांतिका' में त्रैलोक्य-सस्थान नाम का तेरहवाँ अध्याय है जो पूर्वोक्त सिद्धातों में से किसी का नही जान पडता। सभवत यह अध्याय वराहमिहिर की स्वतत्र रचना है। इसमे विश्व की रचना तथा कुछ फुटकर बातें बतायी गयी है। वराहमिहिर ने इस अध्याय के पहले श्लोक मे बताया है—

पंचमहाभूतमयस्तारागणपंजरे महीगोलः।
खेऽयस्कान्तान्तःस्थो लोह इवावस्थितो वृत्तः॥

[अर्थ—पचभूत से बनी पृथ्वी का गोल तारों के पजर (ठठरी) में उसी प्रकार स्थित है जिस प्रकार चुम्बकों के बीच लोहा।]

1. आगामी अध्याय देखें।

इस प्रकार वराहमिहिर जानता था कि पृथ्वी किसी अन्य वस्तु पर टिकी नही है। अतरिक्ष मे चारो ओर से बेलाग है। उसने यह भी लिखा है[1] कि जैसे मनुष्यो के देश मे अग्निशिखा वायु मे ऊपर उठती है और फेंके जाने पर भारी वस्तु पृथ्वी पर गिरती है, उसी प्रकार उलटी ओर, असुरो के देश मे भी, होता है।

परतु पृथ्वी के अक्ष-भ्रमण के सबध में वराहमिहिर की राय आधुनिक मत के विरुद्ध थी। उसने लिखा है—"कुछ लोग कहते है कि पृथ्वी भ्रमण करती है, परतु यदि ऐसा होता तो चील तथा अन्य पक्षी आकाश से अपने घोसले मे न लौट सकते।[2] और फिर, यदि पृथ्वी वस्तुत एक दिन में एक चक्कर लगाती तो ध्वजा आदि पृथ्वी के वेग के कारण पश्चिम की ओर फहराती रहती। और यदि कोई कहे कि पृथ्वी धीरे-धीरे घूमती है तो फिर (एक दिन मे एक बार) वह कैसे घूम लेती है?"[3]

जैनियो का मत था कि आकाश में दो सूर्य होते है, दो चन्द्रमा होते है। इस पर वराहमिहिर का कहना है कि यदि, जैसा अर्हत ने कहा है, दो सूर्य और दो

१. पचसि० १३।४।   २ पचसि० १३।६-७।

३. कुछ पाठको को आज भी शका हो सकती है कि वस्तुत क्या बात है कि चील आदि ऊपर उड़ जाने पर पीछे नहीं छूट जातीं। इस शका का समाधान इस प्रकार हो जाता है कि चलती रेलगाड़ी के डब्बे मे बैठकर गेंद सीधा ऊपर उछालने से अन्त मे सीधा नीचे ही तो गिरता है, वह पीछे थोड़े ही छूट जाता है। कारण यह है कि उछालते समय गेंद मे वह वेग भी था जो रेलगाड़ी में था और यह वेग बराबर बना रहता है, इसलिए गेंद पीछे नहीं छूटता। रेलगाड़ी में बैठे व्यक्ति को जान पड़ता है कि गेंद सीधे ऊपर गया और सीधे नीचे गिरा, परतु भूमि पर स्थित व्यक्ति को वही गेंद वक्र मे चलता दिखाई पड़ेगा। वह देखेगा कि यात्री के हाथ से फेंके जाने पर गेंद वक्र में चलकर फिर यात्री की नवीन स्थिति में आ पहुँचता है। वराहमिहिर और साधारण पाठक के हृदय का भ्रम इस बात पर आश्रित है कि वे समझते हैं कि वेग को बनाये रखने के लिए बल लगाने की आवश्यकता है, परतु आधुनिक गति-विज्ञान कहता है कि "प्रत्येक पिंड अपनी विश्रामावस्था में पड़ा रहता है, या सरल रेखा में समवेग से चलता रहता है; और केवल तभी वह अपनी विश्रामावस्था या समवेग से सरल रेखा में चलने की अवस्था को छोड़ता है जब वह बाहर से लगे बल द्वारा प्रेरित होता है।" (देखें गोरखप्रसाद और हरिश्चन्द्र गुप्त : गतिविज्ञान, अध्याय ४)।

चन्द्रमा होते जो तारों-तारों से उदित होते हैं, तो यह कैसे होता है कि सूर्य से ध्रुव तक जाने वाली रेखा (जो उस पर स्थित तारों के कारण सूर्य के अस्त होने पर भी दिखाई देती है) एक दिन में चक्कर लगा लेती है ?

चन्द्रमा में कलाएँ क्यों दिखाई पड़ती हैं, इसका सच्चा कारण वराहमिहिर को ज्ञात था। लिखा[1] है : जैसे-जैसे प्रति दिन चन्द्रमा का स्थान सूर्य के सापेक्ष बदलता है वैसे-वैसे उसका प्रकाशमय भाग बढ़ता जाता है, ठीक उसी तरह जैसे अपराह्न में घड़े का पश्चिमी भाग अधिकाधिक प्रकाशित होता जाता है।

★ ज्योतिष यंत्र

वराहमिहिर के समय में अच्छे ज्योतिष यंत्रों का अभाव था। शंकु (अर्थात् खड़ा या तिरछा डंडा) बहुत काम में आता था। लिखा है कि ऋजु (सीधे) शंकु की जड़ पर आँख लगाकर शंकु को इस प्रकार तिरछा करो कि शंकु का अग्र, आँख और ध्रुव-तारा, तीनों एक रेखा में आ जायँ। ......लंब (शंकु के अग्र से आँख द्वारा खींचे गये समतल पर डाला गया) लंब अक्षांश की ज्या है। ...... ऐसे प्रयोगों से सन विश्वसनीय रीति से भूकेंद्र या समस्त पृथ्वी को नापते हैं, जैसे लवण मिले थोड़े-से जल से लवण का स्वाद जाना जा सकता है।[2] ऐसे शंकु को भास्कराचार्य ने पीछे यष्टियंत्र का नाम दिया (अध्याय १४ देखें)।

परंतु वराहमिहिर ने सब यंत्रों का भेद खोलकर रख देना उचित न समझा। 'छेदक यंत्राणि' नामक चौदहवें अध्याय में साधारण यंत्रों और रीतियों का वर्णन देकर यह लिखा है[3] गुरु को चाहिये कि केवल स्थिर-बुद्धि शिष्यों को ये बातें बताये और शिष्य को चाहिये कि इन बातों को सीखकर अपने यंत्रों को इस प्रकार बनाये कि गुरु को भी उसका भेद ज्ञात न हो।

इस अध्याय में ज्यामितीय रचनाओं और शंकुओं के अतिरिक्त एक उन्नतांश मापक का भी वर्णन है जो इस प्रकार है

ऐसा चक्र लो जिसकी परिधि ३६० बराबर अंशों में बँटी हो, जिसका व्यास एक हस्त हो और जो मोटाई में आधी अँगुली हो। उसकी मोटाई के बीच में एक

१. पंचसि० १३।३७।

२. पंचसि० १३।३१-३४। वराहमिहिर का कहना ठीक है। दो स्थानों पर पूर्वोक्त रीति से शंकु द्वारा अक्षांश नाप कर सारी पृथ्वी की नाप जानी जा सकती है। (देखें, लेखक-रचित 'सरल गणित-ज्योतिष', पृष्ठ १२७।)

३. पंचसि० १४।२८।

स्थान पर छेद कर दो । इस छोटे-से छेद द्वारा मध्याह्न पर सूर्य की रश्मियों को तिरछी दिशा में घुसने दो [और ऐसा प्रबंध करो कि वह रश्मि पूर्वोक्त चक्र के केंद्र



उन्नतांशमापक

वराहमिहिर के वर्णन के अनुसार खींचा गया चित्र ।

से होकर जाय] । तो चक्र के निचले भाग में जितने अंश [सूर्य-रश्मियों से प्रकाशित बिंदु और] चक्र-केन्द्र से लटकाये गये साहुल-सूत्र के बीच पड़ते हैं वे मध्याह्न-सूर्य की शिरोबिंदु-दूरी के अंश है ।[1]

समय मापने के लिए जल-घटी का उपयोग बताया गया है—

१. पञ्चसि० १४।२१-२२ ।

तांबे का बरतन आधे घड़े के रूप में बनवाओ और पेंदे में छेद करो। शुद्ध जल से भरे बड़े बरतन में इसे रखो। जब यह पानी से भर उठे तो एक नाडिका



नाडिका-यंत्र

वराहमिहिर के वर्णन के अनुसार खींचा गया चित्र।

बीती रहेगी। पेंदे का छिद्र इतना छोटा होना चाहिये कि एक अहोरात्र (रात-दिन) में यह ६० बार डूबे।[1]

★ वराहमिहिर की जीवनी

वराहमिहिर ने अपने को अवंती का निवासी बताया है।[2] जैसा हम ऊपर देख चुके हैं, उसका देहान्त सन् ५८७ ईसवी में हुआ।

वराहमिहिर की गणित-ज्योतिष की अपेक्षा फलित ज्योतिष में अधिक रुचि थी। उसकी बृहत्संहिता नामक पुस्तक वस्तुतः एक बड़ी-सी पोथी है जो फलित ज्योतिष पर है। उसके बृहज्जातक और योगयात्रा नामक ग्रंथ भी फलित ज्योतिष पर हैं। परंतु उसकी पंचसिद्धांतिका गणित-ज्योतिष पर है और वह तत्कालीन ज्योतिष के ज्ञान के लिए अपूर्व सिद्ध हुई है। पंचसिद्धांतिका न होती तो ज्योतिष-इतिहास का हमारा ज्ञान बहुत अधूरा ही रह जाता। अलबरूनी ने अपने

१. पंचसि० १४।३२। २. पंचसि० १५।२१।

'भारतवर्ष' मे वराहमिहिर को बहुत आदर प्रदान किया है। लिखा है कि "वराह के कथन सत्य पर आश्रित हैं, परमेश्वर करे कि सभी बड़े लोग उसके आदर्श का पालन करें।"

हिन्दी-शब्दसागर मे वराहमिहिर के सम्बन्ध मे यह सूचना दी गयी है—

"वराहमिहिर के सम्बन्ध मे अनेक प्रकार के प्रवाद कुछ वचनों के आधार पर प्रचलित हैं। जैसे, 'ज्योतिर्विदाभरण' के एक श्लोक में कालिदास, धन्वन्तरि आदि के साथ वराह मिहिर भी विक्रम की सभा के नौ रत्नो मे गिनाये गये हैं। पर इन नौ नामो में से कई एक भिन्न-भिन्न काल के सिद्ध हो चुके हैं। अत: यह श्लोक प्रमाण के योग्य नहीं। अपने 'बृहज्जातक' के उपसंहाराध्याय में वराहमिहिर ने अपना कुछ परिचय दिया है। उसके अनुसार ये अवन्ती (उज्जयिनी) के रहने वाले थे। 'कायित्थ'[1] स्थान मे सूर्यदेव को प्रसन्न करके इन्होंने वर प्राप्त किया था। इनके पिता का नाम आदित्यदास था।"

१. संभवत: यह कपित्थ-ग्राम है जो उज्जैन के निकट (आज भी) 'कायथा' के नाम से विद्यमान है। इनके पुत्र का नाम पृथुयश था, और उसकी रचना 'षट्पञ्चाशिका' भी प्रसिद्ध है।

१०

पाश्चात्य ज्योतिष का इतिहास

★ यवनो ने ज्योतिष-ज्ञान कहाँ से पाया

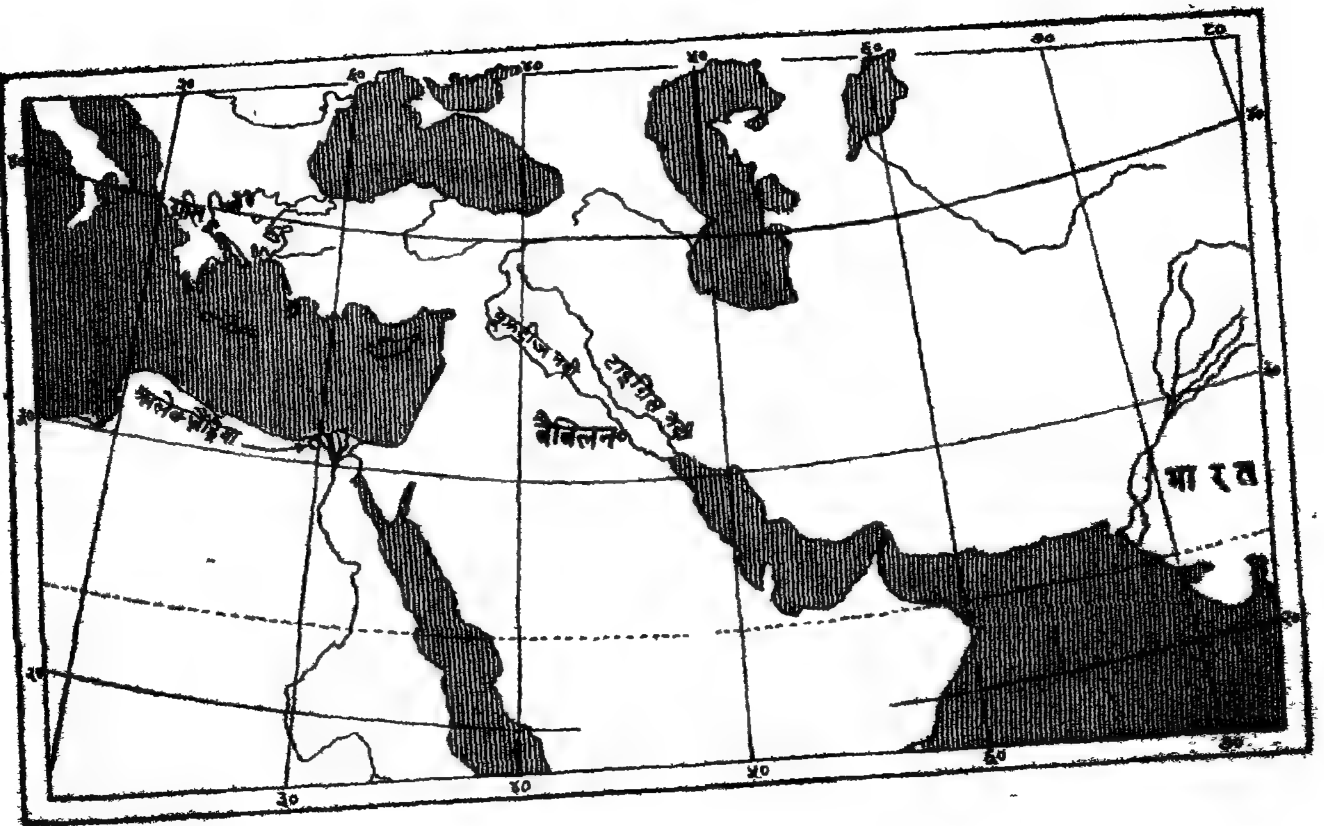
भारत मे कहाँ तक ज्योतिष का ज्ञान यवनो से आया, इसे आँकने के लिए पाश्चात्य ज्योतिष के इतिहास पर एक दृष्टि डाल लेना उचित होगा। ज्योतिष की आवश्यकता सभी देशवासियों को पड़ती है और दीर्घ काल तक आकाशीय पिंडो के अध्ययन से ज्योतिष की अधिकांश मोटी-मोटी बातें सभी को ज्ञात हो जाती हैं। प्राचीन समय में बाबुल लोगों (बैबिलोनियनो) का ज्योतिष-ज्ञान बहुत बढ़ा-चढ़ा था। ये लोग टाइग्रिस और यूफ्रटीज नदी के मध्य की तथा



[चित्रकार, फेलिक्सटॉमस

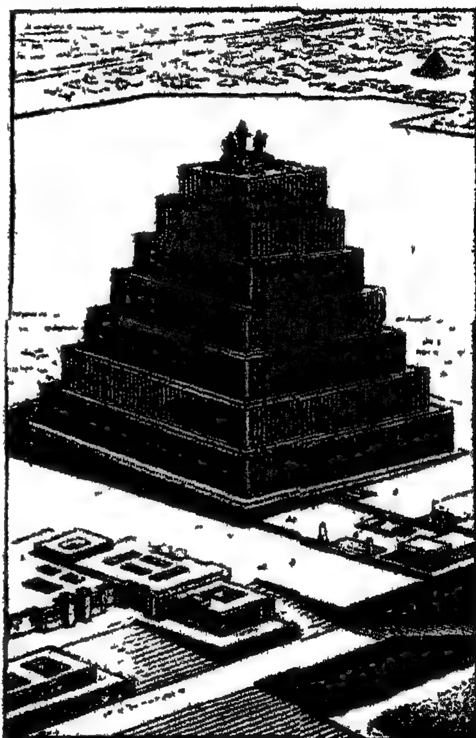
प्राचीन मंदिरों का अवशेष

बाबुल लोग ऊँचे-ऊँचे स्थानों पर मंदिर बनाते थे और उनकी छतों से ज्योतिष-संबंधी वेध किया करते थे।



আলেকজান্দ্রিয়া
ইউফ্রেটিস নদী
টাইগ্রিস নদী
বেবিলন
ভারত

समीपवर्ती भूमि में रहते थे (पिछले पृष्ठ पर चित्र देखें)। उन्हीं से यवनों (अर्थात् ग्रीस देश के निवासियों) को ज्योतिष की प्रारंभिक बातों का ज्ञान हुआ। इतना निश्चित है कि तारा-मंडलों में तारों का विभाजन यवनों ने बाबुलों से पाया। ग्रहों का ज्ञान भी उन्हें बाबुलों से मिला। बाबुलों ने ग्रहणों की भविष्य-वाणी करने के लिए 'सैरॉस' नामक युग का आविष्कार किया था। यह २२३ चांद्र मासो का (लगभग १८ वर्ष ११ दिन का) होता है। ऐसे एक युग के ग्रहण आगामी युग में उसी क्रम में और प्राय ठीक उतने ही समयो पर होते हैं। इस युग का आविष्कार कब हुआ यह अब कहा नही जा सकता, परतु एक राजा के समय के लेखो से स्पष्ट हो जाता है कि सन् ३८०० ईसवी पूर्व मे तारा-मडलो के नाम पड गये थे, यद्यपि उनमे थोडा बहुत परिवर्तन होता रहा। यवनो को तारा-मडलो का जो ज्ञान मिला और जिसे ऐरेटस नामक कवि ने छंदबद्ध किया, अवश्य ही ऐसे तारा-मडलो का है जो लगभग २८०० ई० पू० में देखे गये होगे। इसका प्रमाण यह है कि जिन तारा-मडलो का नाम पूर्वोक्त सूची में नहीं है अवश्य ही वे तारा-मंडल ऐसे होंगे जो उस देश से नहीं दिखाई पड़ते थे।



[पैरॉट और चिपीज़ की पुस्तक से

मंदिर या वेधशाला?

बाबुल लोग ऊँचे-ऊँचे मंदिर बनाया करते थे और उनकी छतों पर से आकाशीय पिंडों का वेध किया करते थे।

इस प्रकार हम जानते हैं कि तारों का कौन-सा क्षेत्र वहाँ नहीं दिखाई पड़ता था। इस क्षेत्र का केंद्र अवश्य ही दक्षिण ध्रुव रहा होगा। इसलिए हम जानते हैं कि उस समय दक्षिण ध्रुव तारो के बीच कहाँ रहा होगा। अब देखने की बात है कि दक्षिण ध्रुव और उत्तर ध्रुव भी तारो के बीच अयन के कारण चला करते हैं और तारों के सापेक्ष उनकी स्थिति जानने से हम बता सकते हैं कि पूर्वोक्त स्थिति किस काल में रही होगी। ऐसे ही विचारो से ऐरेटस के वर्णन से तारा-मडलो के बनने का काल निर्णय किया गया है। ऐरेटस ने २७० ई० पू० मे अपने छद लिखे थे, परंतु तारा-मडलों का विभाजन निस्सदेह लगभग २८०० ई० पू० का है और ४० अक्षाश के देश मे बना है।

★ बाबुल मे ज्योतिष

मिट्टी के कुछ खपडे मेसोपोटैमिया[1] से मिले हैं जिन पर तरह-तरह की बातें लिखी हुई हैं। इन्हे पढने मे भाषा-वैज्ञानिको ने सफलता पायी है। उन खपडो से पता चलता है कि दूसरी शताब्दी ई० पू० में मेसोपोटेमिया मे ज्योतिष का कितना ज्ञान था। उस समय वहाँ के ज्योतिषियो को ज्ञात था कि शुक्र, बुध, शनि, मगल और बृहस्पति अपने पुराने स्थान पर क्रमानुसार ८, ४६, ५९, ७९, ८३ वर्षों मे लौटते है। इन युगो की लबाई से ही स्पष्ट है कि बाबुल लोग सैकडो वर्ष पहले से ही ग्रहो का नियमित रूप से वेध करते रहे होगे। प्रति वर्ष पचाग (खपडो पर खुदे अक्षरो मे) प्रकाशित किया जाता था, जिसमे अमावस्या का दिनाक दिया जाता था, और यह भी कि चद्र-दर्शन कब होगा, ग्रहणो का दिनाक और ब्यौरा भी पहले से बता दिया जाता था, तारो का उदय-अस्त और ग्रहों की स्थितियाँ भी प्रकाशित होती थी। उनका नाक्षत्र-वर्ष सच्चे मान से कुल ४½ मिनट अधिक था। पादरी एफ० एक्स० क्यूगलर ने एक महत्त्वपूर्ण बात का पता लगाया है कि बाबुलो के चाद्र मास आदि का काल ठीक उतना ही था जितना प्रसिद्ध यवन ज्योतिषी हिपार्कस का, जिससे स्पष्ट हो जाता है कि हिपार्कस ने इनका ज्ञान वस्तुत बाबुलो से पाया था, वह इनका स्वय आविष्कारक न था।

बैबिलोनिया से ज्योतिष का ज्ञान ग्रीस मे लगभग सातवी शताब्दी ई० पू० मे अच्छी तरह पहुँचा। लगभग ६४० ई० पू० में एक बाबुल विद्वान् ने कोस द्वीप मे पाठशाला खोली और थेल्स नामक यवन संभवत उसका शिष्य था। पाइथागोरस ने (लगभग ५३० ई० पू० में) बैबिलोनिया, मिस्र और भारतवर्ष आदि देशों में

१. बाबुलों के देश का आधुनिक नाम।

पर्यटन करके, तथा निजी खोज से ज्योतिष तथा गणित का विशेष ज्ञान प्राप्त किया। यह वही गणितज्ञ है जिसके नाम से पाइथागोरस का प्रमेय प्रसिद्ध है—ज्यामिति का यह प्रमेय बताता है कि समकोण त्रिभुज में कर्ण पर बना वर्ग शेष भुजाओं पर बने वर्गों के योग के बराबर होता है।[1] पाइथागोरस का मत था कि पृथ्वी अंतरिक्ष में बेलाग टिकी है, अन्य किसी पिंड या पदार्थ या जीव पर आश्रित नहीं है। उसके शिष्यों की पुस्तकों से प्रत्यक्ष है कि वे यह मानते थे कि पृथ्वी अपने अक्ष पर घूमती रहती है। अरिस्टार्कस का (लगभग २८०—२६४ ई० पू० मे) सिद्धांत था कि सूर्य स्थिर है और पृथ्वी तथा अन्य ग्रह उसकी परिक्रमा करते हैं, परन्तु आर्किमिडीज ने इस सिद्धांत को भ्रमपूर्ण बताया। यूडॉक्सस ने (४०८—३५५ ई० पू० मे) इसका भी प्राय शुद्ध सिद्धात बनाया कि क्यो ग्रह बराबर एक दिशा मे चलने के बदले आगे-पीछे चलते हैं। कुछ अन्य ज्योतिषियो ने इसमे थोड़ा-बहुत सशोधन किया, परन्तु इस विषय पर अपोलोनियस (लगभग २५०—२२० ई० पू० मे) ने वह सिद्धात बना लिया था जो सूर्य-सिद्धांत मे भी है और अपोलोनियस के समय से लगभग १८०० वर्षों तक ठीक समझा गया। अरिस्टिलस और टिमोरिस ने (लगभग ३२०—२६० ई० पू० मे) तारो की स्थितियाँ नाप कर तारा-सूचियाँ बनायी। अरिस्टार्कस ने सूर्य और चन्द्रमा की दूरियों का अनुपात जानने की भी एक रीति का वर्णन किया जो सिद्धांततः ठीक है परन्तु प्रयोग मे बहुत अच्छा परिणाम नही देती। एरॉटॉसथिनिज ने रविमार्ग और विषुव के बीच के कोण को नापा और उसकी नाप में कुल ५ कला की अशुद्धि थी। उसने पृथ्वी के व्यास की गणना भी दो स्थानो से ध्रुव के उन्नतांशों को नाप कर की।

* हिपार्कस

इसमे सदेह नही कि यवन ज्योतिषियो मे सबसे महान् हिपार्कस और टालमी थे। हिपार्कस का जन्म कब हुआ या मृत्यु कब हुई इसका ठीक पता नहीं है, परन्तु उसका काल लगभग १४६—१२७ ई० पू० था। उसकी गणना प्रसिद्धतम प्राचीन ज्योतिषियो और गणितज्ञो में होती है। उसका जन्म-स्थान नीसिया था। १६१—१४६ ई० पू० मे वह अलेक्जेंड्रिया[2] में ज्योतिष-वेध किया करता था और

१. संभवतः पाइथागोरस ने इस प्रमेय को भारतवर्ष में सीखा था। देखें, साइटश्रिफ्ट डर डॉयटशेन मॉरगनलैंडिशेन गेजेलशाफ्ट।

२. पृष्ठ १०४ के चित्र में इसकी स्थिति दिखलायी गयी है; पृष्ठ ९३ पर इस नगर का वर्णन किया जा चुका है।

उसके पहले अपनी जन्मभूमि में। उसकी पुस्तकें अब अधिकांश लुप्त हो गयी है। परन्तु हमें उसके विषय मे जानकारी स्ट्रेबो (प्रथम शताब्दी ई० पू०) और मिस्र के महान् ज्योतिषी टालमी के लेखो से प्राप्त होती है। टालमी ने अपनी पुस्तक 'सिनटैक्सिस' मे बार-बार हिपार्कस की चर्चा की है और कई स्थानों पर तो हिपार्कस के वाक्यो का ज्यो-का-त्यो उद्धरण दिया है। सिनटैक्सिस का नाम पीछे 'ऐल-मैजेस्ट' पड गया, क्योकि अरब वाले इसे 'अल मजस्ती' कहते थे। यह ग्रथ कोपरनिकस (१४७३—१५४३ ई०) और केपलर (१५७१—१६३० ई०) के समय तक वेद-पुराण की तरह अकाट्य समझा जाता था, और इसी से वह सुरक्षित रह गया। टालमी ने हिपार्कस की बडी प्रशसा की है और यह बताने की चेष्टा की है कि कितनी बाते उसे हिपार्कस से मिलीं, परन्तु बहुत-से स्थानो में सदेह बना ही रह जाता है कि कितना अश हिपार्कस से मिला और कितना स्वय टालमी का नया काम है। जान पडता है कि हिपार्कस ने कई एक छोटी-छोटी पुस्तिकाएँ फुटकर विषयो पर लिखी थी, परन्तु सम्पूर्ण ज्योतिष पर किसी ग्रथ की रचना नही की थी। इसके विपरीत 'सिनटैक्सिस' में सब बातो का पूरा विवेचन था, ज्योतिष-राशियो के मान पहले से बहुत अच्छे थे, और पुस्तक बहुत अच्छे ढग से लिखी गयी थी। सम्भवत इसी कारण से हिपार्कस की कृतियो का आदर कम हो गया और समय पाकर वे लुप्त हो गयी। टालमी हिपार्कस के लगभग ३०० वर्ष बाद हुआ था। ज्योतिष के प्रमुख प्रश्नो के उत्तर हिपार्कस ने दे दिये थे। टालमी ने उनको परिष्कृत किया, त्रुटियो की पूर्ति की और नवीन सारणियाँ बनायी।

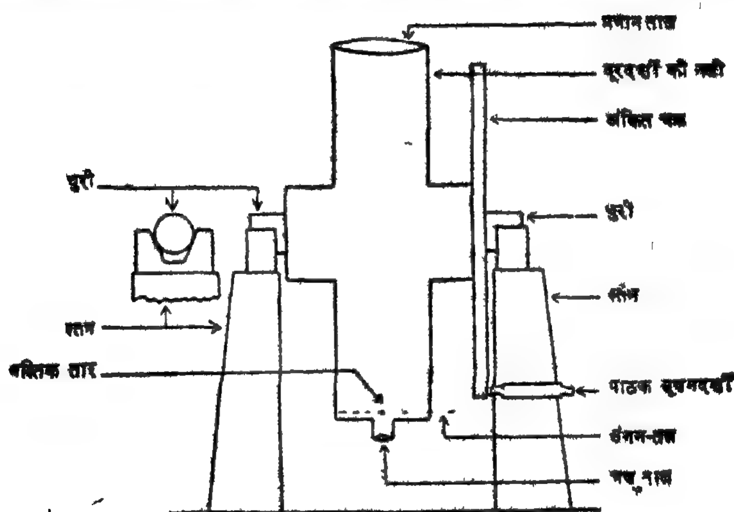
★ हिपार्कस का काम

हिपार्कस ने ज्योतिष के प्रमुख ध्रुवाको को निर्धारित कर दिया था, जैसे सायन और नाक्षत्र वर्षों की लबाइयाँ, चाद्रमास की लबाई, पाँचों ग्रहो के सयुति-काल, रवि-मार्ग की तिर्यक्ता (तिरछापन) जिसे प्राचीन भारत के ज्योतिषी परम क्राति कहते थे, चद्रमार्ग की तिर्यक्ता, सूर्य-कक्षा का मंदोच्च (जहाँ सूर्य हमसे दूरतम रहता है), सूर्य-कक्षा की उत्केंद्रता (अथवा चिपटापन), चद्रमा का लबन (अथवा दूरी), और इन सभी राशियो के मान प्राय. ठीक थे। अवश्य ही उसने बहुत-सी बातें खाल्दी[1] (कैल्डियन) लोगो से सीखी थीं, परंतु स्पष्ट है कि उसने स्वय इन राशियो को नापा था और कई एक के नवीन तथा अधिक सच्चे मान दिये थे। हिपार्कस गोले पर तारो (नक्षत्रो) का चित्र बनाकर उनका अध्ययन

१ बाबुलों के देश में ही पीछे खाल्दियों का अधिकार हुआ।

करता था। इस गोले को हम खगोल कहेंगे। तारा-मंडलों के वर्णन में भी नवीन बातें हिपार्कस ने बतायीं—कौन-सा तारा किस तारे के सीध में है, किस तारा-मण्डल की आकृति किस प्रकार की है; इत्यादि—सब खगोल देखकर बताये हुए जान पड़ते हैं।

इसकी विशेष संभावना जान पड़ती है कि हिपार्कस किसी-न-किसी प्रकार के याम्योत्तर यंत्र का प्रयोग करता था। आधुनिक याम्योत्तर यंत्र में एक दूरदर्शी इस प्रकार आरोपित रहता है कि वह केवल याम्योत्तर[1] में चल सके। इसकी संरचना नीचे के चित्र से समझ में आ जायगी। इसकी प्रयोग-विधि पुस्तक के अन्त में दिये गये 'आधुनिक याम्योत्तर यंत्र' वाले चित्र में दिखायी गयी है।



याम्योत्तर यंत्र
इस चित्र से आधुनिक याम्योत्तर यंत्र के अवयवों को
सुगमता से समझा जा सकता है।

आधुनिक वेधशालाओं का यह प्रधान यंत्र है। अवश्य ही हिपार्कस के याम्योत्तर यंत्र में दूरदर्शी के बदले केवल सरल नलिका रही होगी। हिपार्कस ने बहुत-से

१. शिरोबिंदु और उत्तर तथा दक्षिण विन्दुओं से जाने वाले समतल को याम्योत्तर कहते हैं।

वेध किये जो इतने शुद्ध थे कि आश्चर्य होता है कि कैसे उन यंत्रो से वह इतनी सूक्ष्मता प्राप्त कर सका। उसने सूर्य और चद्रमा की गतियो का प्राय सच्चा सिद्धात बना लिया था, परन्तु ग्रहो के कभी आगे, कभी पीछे चलने के सिद्धात मे पूरी सफलता नही पायी थी। उसके काम को टालमी ने पूरा किया। हिपार्कस ने भी अरिस्टार्कस की यह बात नही मानी कि सूर्य निश्चल है और पृथ्वी तथा ग्रह उसकी प्रदक्षिणा करते हैं।

★ अयन का आविष्कार

हिपार्कस के आविष्कारो मे से निस्सदेह अयन का पता लगाना अत्यत महत्त्व पूर्ण था। जब वसत ऋतु मे दिन-रात बराबर होते हैं तब खगोल पर तारो के बीच सूर्य की स्थिति को 'वसंत-विषुव' कहते हैं।[1] वसत-विषुव तारो के बीच स्थिर नही रहता—वह चलता रहता है; इसी चलने को 'अयन' कहते हैं। जब हिपार्कस ने अपने वेधो की तुलना टिमोकैरिस के वेधो से की तो उसे तुरत पता चल गया कि अवश्य ही वसत-विषुव पीछे मुंह (अर्थात् सूर्य के चलने से उलटी दिशा मे) चलता रहता है। वसत-विषुव के सापेक्ष सूर्य के एक चक्कर लगाने को सायन वर्ष कहते हैं, तारो के सापेक्ष एक चक्कर लगाने को नाक्षत्र वर्ष कहते है। दोनो मे २० मिनट २३ सेकड का अन्तर है। हिपार्कस को इन दोनो वर्षों का भेद ज्ञात था। भारतीय ज्योतिषियो को इनका भेद ७०० वर्ष पीछे वराहमिहिर के समय मे भी ज्ञात नही हुआ। वस्तुत, भारत के अधिकाश पचाग आज भी सायन वर्ष की अवहेलना करते हैं।

अयन के कारण वसत-विषुव का स्थान बहुत धीरे-धीरे ही बदलता है। वसत विषुव आकाश का एक चक्कर लगभग २६००० वर्षों मे लगा पायेगा। सूर्य के व्यास के बराबर (अर्थात् लगभग आधा अश) हटने मे वसत विषुव को लगभग ३६ वर्ष लग जाते है। यही कारण है कि अयन का पता लगाना कठिन है। हिपार्कस ने टिमोकैरिस और अपने वेधो की तुलना से अयन का आभास तो पा लिया, परतु

१. यह स्थूल परिभाषा है; शुद्ध परिभाषा यह है कि रविमार्ग और विषुवत के एक छेदन-बिंदु को वसत-विषुव कहते हैं, दूसरे को शरद-विषुव, इनमे से वसत-विषुव वह है जहाँ सूर्य, पृथ्वी के उत्तर गोलार्ध में वसत ऋतु रहने पर, स्थिर रहता है। वसत-विषुव और ध्रुव मे घनिष्ठ संबध है। वसंत-विषुव का पीछे मुंह चलना ध्रुव के एक वृत्त में चलने का परिणाम है। ध्रुव के चलने की बात पहले बतायी जा चुकी है।

उसे पूर्ण विश्वास तभी हुआ जब उसने और भी पुराने, खाल्दी लोगो के, वेधो से अपने वेधो की तुलना की। उसने अनुमान किया कि वसत विषुव एक वर्ष मे ३६″ (छत्तीस विकला) है, परंतु वस्तुत यह एक वर्ष मे लगभग ·५०″ चलता है।

हिपार्कस ने तारो की सूची भी बनायी जिसमे लगभग ८५० तारों का उल्लेख था और इसमे प्रत्येक तारे की स्थिति भोगांश (लॉञ्जिट्यूड) और शर (लैटिट्यूड) देकर बतायी गयी थी। इस सूची का उद्देश्य सभवत यह रहा होगा कि यदि कोई नवीन तारा कभी दिखाई पड़े तो उसका निश्चित पता चल सके, क्योकि हिपार्कस के समय मे वृश्चिक राशि मे एक नवीन तारा वस्तुत दिखाई पड़ा था, जिसका उल्लेख चीन के ज्योतिषियो ने किया है (१३४ ई० पू०)। हिपार्कस की सूची को, थोड़ा-बहुत सशोधन करके, टालमी ने प्रकाशित किया। हिपार्कस ने कोणो की जीवाओ के भी मान दिये थे।[1] उसके गणितीय तथा भौगोलिक कार्यों के विवेचन की यहाँ आवश्यकता नही जान पड़ती।

★ टालमी

टालमी अलेक्जेड्रिया (मिस्र देश) का निवासी था। उसका पूरा नाम क्लॉडियस टॉलिमेइयस था, जो अग्रेजी मे सक्षिप्त होकर टालमी हो गया है। वह प्रसिद्ध ज्योतिषी, गणितज्ञ और भौगोलिक था। उसके जन्म अथवा मृत्युकाल का ठीक पता नही है, परतु एक प्राचीन यवन लेखक के अनुसार उसने टालेमेइस हरमाई नामक यवन नगर मे जन्म लिया था। इतना अच्छी तरह ज्ञात है कि वह सन् १२७ ईसवी से सन् १४१ या १५१ ई० तक वेध करता रहा। अरबी लेखको के अनुसार टालमी ७८ वर्ष की आयु मे मरा। यहाँ टालमी के गणित और भूगोल विषयक कार्यों पर विचार न किया जायगा। केवल उसके ज्योतिष-सबधी कार्यों पर सक्षेप मे विवेचन किया जायगा।

हिपार्कस ने समतल और गोलीय त्रिकोणमिति के कुछ प्रमेयो का आविष्कार किया था और उसने ज्योतिष के सिद्धान्तो की उत्पत्ति मे सहायता ली थी। टालमी ने इस विषय का ऐसा पूर्ण और दोषरहित विवेचन किया कि लगभग १४०० वर्षों तक कोई दूसरा लेखक उसके आगे न बढ़ सका। आकाशीय पिंडो के चलने का टालमीय सिद्धान्त भी इसी प्रकार लगभग इतने ही समय तक सर्वमान्य बना रहा। टालमी की गणितीय तथा ज्योतिष कृतियाँ जिस पुस्तक मे एक साथ छपी है उसका नाम यवनो ने 'मैथिमैटिके सिनटैक्सिस' रखा, जिसका अर्थ है गणित-सहिता।

१ जीवा और ज्या का सबंध यह है कि जीवा च = २ ज्या $\frac{च}{२}$ था

अरब वालो ने प्रशसापूर्ण नाम खोज कर इसे 'मजस्ती' कहा जिसमे वे अरबी उपसर्ग 'अल' लगा दिया करते थे। इसी से इस पुस्तक का नाम अग्रेजी तथा कई अन्य यूरोपीय भाषाओ में 'अलमैजेस्ट' पड गया। इसका अर्थ हुआ ग्रथराज।

★ सिनटैक्सिस

'सिनटैक्सिस' अर्थात् 'अलमैजेस्ट' के प्रथम खड मे पृथ्वी, उसका रूप, उसका बेलाग स्थिर रहना, आकाशीय पिडो का वृत्तो मे चलना, कोण-जीवाओ की गणना करने की रीति, कोण-जीवाओ की सारणी, रविमार्ग की तिर्यक्ता, उसे नापने की रीति, और फिर ज्योतिष के लिए आवश्यक समतल तथा गोलीय त्रिकोणमिति और अत मे रेखाश तथा भोगाश से विषुवाश तथा क्राति जानने की रीति और आवश्यक सारणी, ये सब बातें दी हुई है। खड २ मे खगोल सबधी कुछ प्रश्नो का उत्तर है, जैसे किसी अक्षाश पर महत्तम दिनमान क्या होगा, इत्यादि। खड ३ मे वर्ष की लबाई और सूर्य-कक्ष की आकृति आदि की गणना-विधि का विवेचन है, जिसमे सिद्धात मुख्यत यह है कि सूर्य ऐसे वृत्त मे चलता है जिसका केन्द्र किसी अन्य वृत्त पर चलता है। इस खड के प्रथम अध्याय मे टालमी ने यह भी बताया है कि सिद्धात ऐसा होना चाहिये जो सरलतम हो और वेधप्राप्त बातो के विरुद्ध न हो, और ऐसे वेधो मे, जिनमें सूक्ष्मता की आवश्यकता है, उन वेधो को चुनना चाहिए जो दीर्घ कालो पर लिये गये हो, इससे वेधो की त्रुटियो का विशेष दुष्परिणाम न पडेगा। खड ४ मे चाद्र मास की लबाई और चद्रमा की गति, खड ५ मे ज्योतिष यत्र की रचना, सूर्य तथा चद्रमा के व्यास, छाया की नाप, सूर्य की दूरी आदि विषय है। खड ६ मे चद्रमा और सूर्य की युतियो तथा ग्रहणो पर विचार किया गया है। खड ७ मे उत्तरी तारा-सूची और खड ८ मे दक्षिणी तारा-सूची है। दोनो मे कुल मिलाकर १,०२२ तारे दिये गये है। खड ८ मे आकाशगगा का भी वर्णन है। खड ९ से १३ तक मे ग्रह सबधी बाते है।

'सिनटैक्सिस' पर कई भाष्य लिखे गये है। पैपियस की यवन भाषा मे लिखी टीका (जो केवल खड ६ और अशत खड ५ पर है) अब भी प्राप्य है। अलेक्जैड्रिया के थियन का भाष्य ग्यारह खडो मे है। थियन लगभग सन् ४०० ई० मे था, परन्तु उसकी पुस्तक १५३८ ई० मे प्रकाशित हुई। सन् ८२७ मे 'सिनटैक्सिस' का उल्था अरबी भाषा मे किया गया। इसके बाद कई नवीन अरबी अनुवाद हुए, यवन भाषा से इसका लैटिन अनुवाद १४५१ मे हुआ। हाइबर्ग ने टालमी की कृतियो का प्रामाणिक सस्करण १८९९–१९०७ में प्रकाशित कराया।

'अलमैजेस्ट' यवन ज्योतिष का उच्चतम शिखर स्वरूप था। टालमी के बाद डेढ़ हजार वर्ष तक कोई बडा ज्योतिषी हुआ ही नही, केवल भाष्यकार हुए। ●

११

सूर्य-सिद्धांत

★ मध्यमाधिकार

वराहमिहिर ने अपनी 'पचसिद्धातिका' मे जिन पाँच सिद्धातो का सारांश दिया है उनमे से एक सूर्य-सिद्धात भी है, और पाँचो मे इसी का स्थान सबसे ऊँचा है। 'सूर्य-सिद्धात' अब भी उपलब्ध है, परन्तु वर्तमान सूर्य-सिद्धात और वराहमिहिर के सूर्य-सिद्धात मे कुछ बातो मे अन्तर है। निस्सदेह पीछे के भाष्यकारो ने सूर्य-सिद्धान्त को अधिक परिष्कृत करने के लिए उसके ध्रुवांको मे आवश्यकतानुसार सशोधन कर दिया होगा। निम्नाकित विवरण वर्तमान 'सूर्य-सिद्धात' के बारे मे है।

हिंदी पाठको के लिए 'सूर्य-सिद्धात' का श्री महावीरप्रसाद श्रीवास्तव कृत 'विज्ञान-भाष्य तथा मूल', जो विज्ञान-परिषद, इलाहाबाद से, प्रकाशित हुआ था, सर्वोत्तम है। एक अँग्रेजी अनुवाद पादरी बरजेस ने १८६० मे प्रकाशित कराया था जिसे कलकत्ता विश्वविद्यालय ने १९३५ मे फिर से छापा। यह अनुवाद बहुत ही सुन्दर हुआ है और बरजेस की टिप्पणियाँ भी बहुत अच्छी है। कलकत्ता विश्वविद्यालय वाले सस्करण मे प्रबोधचद्र सेनगुप्त की भूमिका भी है जिसमे सूर्य-सिद्धात सबधी कई बातो का विशद विवेचन है।

'सूर्य-सिद्धात' के आधुनिक रूप मे १४ 'अधिकार' अर्थात् अध्याय है। पहले अध्याय मे ग्रहो की मध्य गतियाँ हैं। यह समझने के लिए कि मध्य गति क्या है, स्मरण रखना चाहिये कि सूर्य, चद्रमा तथा बुध आदि ग्रह समान-कोणीय वेग से नही चलते, परन्तु गणना की सुविधा के लिए पहले यह मान लिया जाता है कि वे समान वेग से चलते हैं। इस कल्पना के अनुसार गणना करने से प्राप्त स्थितियाँ

मध्यम या मध्यक स्थितियाँ कहलाती हैं। 'सूर्य-सिद्धांत' के प्रथम अध्याय मे इनकी ही गणना बतायी गयी है। इसीसे पहला अध्याय मध्यमाधिकार कहलाता है।

★ सूर्य-सिद्धात का लेखक

ईश्वर-वदना के पश्चात् आठ श्लोको मे यह भी बताया गया है कि पुस्तक का लेखक कौन है। ये श्लोक इस प्रकार हैं

अल्पावशिष्टे तु कृते मयनामा महासुर ।
रहस्य परम पुण्य जिज्ञासुर्ज्ञानमुत्तमम् ॥२॥
वेदागमग्र्यमखिल ज्योतिषा गतिकारणम् ।
आराधयन् विवस्वन्त तपस्तेपे सुदुश्चरम् ॥३॥
तोषितस्तपसा तेन प्रीतस्तस्मै वरार्थिने ।
ग्रहाणा चरित प्रादान् मयाय सविता स्वयम् ॥४॥
विदितस्ते मया भावस्तोषितस्तपसा ह्यहम् ।
दद्या कालाश्रय ज्ञान ग्रहाणा चरित महत् ॥५॥
न मे तेज सह कश्चिदाख्यातु नास्ति मे क्षण ।
मदश पुरुषोऽय ते नि शेष कथयिष्यति ॥६॥
इत्युक्त्वाऽन्तर्दधे देव समादिश्याशमात्मन ।
स पुमान् मयमाहेद प्रणत. प्राञ्जलिस्थितम् ॥७॥
शृणुष्वैकमना पूर्व यदुक्त ज्ञानमुत्तमम् ।
युगे-युगे महर्षीणा स्वयमेव विवस्वता ॥८॥
शास्त्रमाद्य तदेवेद यत्पूर्व प्राह भास्कर ।
युगाना परिवर्तेन कालभेदोऽत्र केवलम् ॥९॥

[अर्थ[1]—सत्ययुग के कुछ शेष रहने पर मय नामक महा असुर ने सब वेदागो मे श्रेष्ठ, सारे ज्योतिष्क पिडो की गतियो का कारण बताने वाले, परम पवित्र और रहस्यमय उत्तम ज्ञान को जानने की इच्छा से कठिन तप करके सूर्य भगवान् की आराधना की ॥२-३॥ उसकी तपस्या से सतुष्ट और प्रसन्न होकर सूर्य भगवान् ने स्वय वर चाहनेवाले मय को ग्रहो के चरित अर्थात् ज्योतिषशास्त्र का उपदेश दिया ॥४॥

भगवान् सूर्य ने कहा कि तेरा भाव मुझे विदित हो गया है और तेरे तप से मैं बहुत सतुष्ट हूँ, मैं तुझे ग्रहो के महान् चरित का उपदेश करता हूँ, जिससे

१ महावीर प्रसाद श्रीवास्तव के विज्ञान-भाष्य से।

समय का ठीक-ठीक ज्ञान हो सकता है, परन्तु मेरा तेज कोई सह नही सकता और उपदेश देने के लिए मुझे समय भी नही है। इसलिए यह पुरुष, जो मेरा अंश है, तुझे भली भाँति उपदेश देगा ॥५-६॥

इतना कहकर सूर्य भगवान् अतर्धान हो गये और सूर्यांश पुरुष ने, आदेशानुसार मय से, जो विनीत भाव से झुके हुए थे, कहा—एकाग्रचित होकर यह उत्तम ज्ञान सुनो, जिसे भगवान् सूर्य ने स्वय समय-समय पर महर्षियो से कहा था। भगवान् सूर्य ने पहले जिस शास्त्र का उपदेश दिया था वही आदि शास्त्र यह है, युगो के परिवर्तन से केवल काल मे कुछ भेद पड गया है ॥७-९॥]

इस प्रकार स्वय 'सूर्य-सिद्धात' के अनुसार यह पुस्तक देव-वाणी है, परतु अपना नाम गुप्त रखकर पुस्तक को अलौकिक बताना प्राचीन लेखकों की एक साधारण रीति थी। ऐसी पुस्तको का सभवत कुछ अधिक आदर होता था।

जिस प्रकार १८ पुराण थे, उसी प्रकार १८ ज्योतिष सिद्धातो का भी उल्लेख मिलता है, जिनमे से अधिकाश के नाम प्राचीन ऋषियो के नाम पर पडे है। सुधाकर द्विवेदी ने अपनी पुस्तक 'गणक-तरगिणी' मे इस सबध मे यह श्लोक दिया है

सूर्य पितामहो व्यासो वसिष्ठोऽत्रि. पराशर ।
कश्यपो नारदो गर्गो मरीचिर्मनुरगिरा. ॥
लोमश पौलिशश्चैव च्यवनो यवनो भृगु' ।
शौनकोऽष्टादशश्चैते ज्योति शास्त्रप्रवर्तका ॥

चूकि इसमें यवन-सिद्धात का भी नाम आया है, इसलिए यह श्लोक बहुत प्राचीन न होगा। तो भी इन अठारह सिद्धातो मे से अधिकाश लुप्त हो गये हैं।

सूर्य-सिद्धात के प्रथम अध्याय के ग्यारहवें और बारहवे श्लोक मे समय की इकाइयाँ दी गयी है, जिनकी सूची टीकाकारो ने कुछ और बढा दी है। ये इकाइयाँ निम्नलिखित है

१० गुर्वक्षर = १ प्राण,
१० प्राण = १ विनाडी,
६० विनाडी = १ नाडी,
६० नाडी = १ दिन।

नाडी को नाडिका और घटिका भी कहते हैं। सिद्धातत ये सब इकाइयाँ तो बन गयी, परन्तु पता नही कि वे ठीक-ठीक कैसे नापी जा सकती थी। उस समय मे जब नाडिका छेद वाले बरतन के डूबने से नापी जाती थी, विनाडी तक समय को ठीक-ठीक नापना कठिन ही रहा होगा।

इसके बाद मास और वर्ष की परिभाषाएँ हैं। एक वर्ष को देवताओ का एक दिन (दिन + रात) बताया गया है। देवताओ के ३६० दिनो को देवताओ का एक वर्ष बताया गया है। बारह हजार ऐसे वर्षों का एक चतुर्युग कहा गया है। ७१ चतुर्युगो का एक मन्वतर होता है, जिसके अत मे सत्ययुग के बराबर की सध्या होती है। चौदह मन्वतरो का एक कल्प होता है। प्रारभिक सध्या को लेकर कल्प मे इस प्रकार ४,३२,००,००,००० वर्ष होते है।

बताया गया है कि एक कल्प को ब्रह्मा का एक दिन कहते हैं। ऐसे ३६० दिनो को ब्रह्मा का एक वर्ष कहते है और ब्रह्मा की आयु मे इस प्रकार के १०० वर्ष होते हैं। ब्रह्मा की आयु को "पर" भी कहते है। इसके आधे को 'परार्ध" कहते है।

समय की इकाइयाँ

सूर्य-सिद्धात मे समय का विभाजन वही है जो पुराणो मे पाया जाता है, परतु यहाँ केवल ब्रह्मा की आयु पर ही इकाइयाँ समाप्त कर दी गयी है। विष्णु पुराण मे इससे भी बडी इकाइयाँ है। वहाँ दो परार्धों को विष्णु का एक दिन कहा गया है और उसके आगे भी इकाइयाँ बतायी गयी हैं।

सूर्य-सिद्धान के अनुसार ब्रह्मा की आयु ३१,१०,४०,००,००,००,००० साधारण वर्षो की होती है।

अवश्य ही समय की ये सभी इकाइयाँ काम मे नही आती थी। बहुत छोटी और बहुत बडी इकाइयाँ केवल आरभ मे ही इकाइयो की सूची मे आयी है। अवश्य ही इनसे गणित मे पटुता प्रदर्शित होती है, न कि समय को क्रियात्मक रूप से नाप सकने मे चातुर्य।

इकाइयो को बताने के बाद यह बताया गया है कि वर्तमान समय कौन-से मन्वतर का कौन-सा युग है। सृष्टि मे कितना समय लगा यह भी बताया गया है। फिर ग्रहो की गति बतायी गयी है। यह कल्पना की गयी है कि सब ग्रहो का अनुरैखिक वेग, अर्थात् योजन प्रति घटी मे (अथवा मील प्रति घटा मे) वेग, एक ही है। आधुनिक ज्योतिष के अनुसार यह कल्पना अशुद्ध है। उसके अनुसार ग्रहो का अनुरैखिक वेग दूरी के वर्गमूल के व्युत्क्रम के अनुसार रहता है।

इसके पश्चात् कोणीय नाप की इकाइयाँ बतायी गयी है —

६० विकला = १ कला,
६० कला = १ भाग (जिसे अश भी कहते हैं),
३० भाग = १ राशि,
१२ राशि = १ भगण (अर्थात् एक पूरा चक्कर)।

★ ग्रहो की गतियाँ

अब ग्रहो की कोणीय मध्यक गतियाँ बतायी गयी हैं। उन्हें बताने के लिए यह बताया गया है कि एक महायुग ($\frac{१}{१०००}$ कल्प) मे सूर्य, बुध आदि कितने चक्कर लगाते है। उदाहरणार्थ, बताया गया है कि सूर्य ४३ लाख २० हजार चक्कर लगाता है, यह वस्तुत एक युग मे वर्षों की सख्या है। मगल २२ लाख ९६ हजार ८ सौ बत्तीस चक्कर लगाता है, इत्यादि।

पाश्चात्य देशो मे ग्रहो की स्थितियाँ किसी निकट समय के विशेष क्षण पर बताकर उनकी दैनिक गति दे दी जाती है, जिससे उनकी स्थितियाँ अन्य क्षणो पर गणना द्वारा निकाली जा सकती है, परतु भारतीय ज्योतिष मे इस पद्धति पर बने ग्रथो को "करणग्रथ" कहते थे और उनका आदर कम होता था, विशेष आदर सिद्धात-ग्रथो का होता था। ऐसे ग्रथो मे मान लिया जाता था कि कल्प के प्रारभ मे सूर्य, चद्रमा तथा सब ग्रह[1] आकाश के एक बिंदु पर थे, और चद्रमा तथा ग्रहो की कक्षाओ के पात और सूर्य, चद्रमा और ग्रहो के शीघ्रोच्च[2] भी वही थे। तब लबे युग मे उनके भगणो (चक्करो) की सख्याएँ बतायी जाती थी, जो स्वभावत ऐसी होती थी कि ग्रथकार के समय मे आकाशीय पिंडो की स्थितियाँ ठीक निकले और उनकी दैनिक गतियाँ भी यथासभव ठीक निकले।

'सूर्य-सिद्धात' के अनुसार सत्ययुग के आरभ मे सब ग्रह मेष राशि के आदि बिंदु पर थे, केवल उनके उच्च और पात उस स्थान पर न थे। गणना से देखा जा सकता है कि कलियुग के आरभ मे भी यही बात सच थी। सर्वसम्मति से यह आरभ ३१०२ ई०पू० उज्जयिनी की उस अर्धरात्रि को हुआ था जो १७ फरवरी के अत और १८ फरवरी के आरभ में पडती है।

अब प्रश्न यह उठता है कि क्या वस्तुत उक्त दिनाक पर सब ग्रहादि साथ थे। बरजेस ने विनलॉक से गणना करायी, जो अमेरिका के नॉटिकल अलमनक कार्यालय के उस समय अध्यक्ष थे। बेटली और बेली ने भी स्वतत्र रूप से गणना की। इतने दिन पहले के लिए ग्रहादि की स्थितियाँ बताने मे उनकी नपी हुई

१ प्राचीन ग्रथों मे सूर्य और चद्रमा को भी ग्रह मानते थे। जब सूर्य और चद्रमा को छोड अन्य ग्रहों का ही उल्लेख करने की आवश्यकता पड़ती थी तो उनको तारा-ग्रह कहते थे। हम इस पुस्तक मे तारा-ग्रहों को केवल ग्रह कहेंगे और सूर्य तथा चद्रमा को ग्रह न मानेंगे।

२ आगे पृष्ठ ११९ पर ये शब्द समझाये गये हैं।

गतियो की अवश्यभावी त्रुटियो का प्रत्यक्षत बडा प्रभाव पडता है। आधुनिक ज्योतिष मे अभी इतनी परिशुद्धता नही है कि निश्चयात्मक रूप से कहा जा सके कि कलियुग के आरभ मे ग्रहादि के स्थान ठीक-ठीक क्या थे। इसी से विनलॉक, बेली और बेंटली के उत्तरो मे अतर आया, परतु इतना निश्चित है कि कलियुग के आरभ मे सब ग्रह और सूर्य तथा चद्रमा एक स्थान पर नही थे, यद्यपि वे एक दूसरे से बहुत दूर भी नही थे। जान पडता है कि सूर्य-सिद्धात के ग्रथकार ने, अथवा किसी अन्य सिद्धातकार ने, अपने समय मे ग्रहो की स्थितियो और उनकी दैनिक गतियो के आधार पर गणना की होगी और तब ऐसा समय चुना होगा जब ग्रहादि लगभग एक साथ थे, और उसी समय को कलियुग का आरभ माना होगा। यदि कलियुग के आरभ मे सचमुच ग्रहादि एक साथ थे और लोगो ने उन्हे देखा था और 'सूर्य-सिद्धात' के समय तक ऐसी लोक-कथा चली आ रही थी, तो अवश्य वेदो मे, या वेदाग-ज्योतिष, या महाभारत या पुराणो मे इस बात की चर्चा होती। बरजेस के अनुसार ग्रहादि की स्थितियाँ स्थूल रूप से कलियुग के आरभ मे यो थी —

	भोगाश
सूर्य	३०२°
बुध	२६९
शुक्र	३३५
मगल	२९०
बृहस्पति	३१८
शनि	२८२
चद्रमा	३०८

★ बीज-सस्कार

'सूर्य-सिद्धात' के आधार पर अब भी कुछ पचागो की गणना होती है, परतु दैनिक गतियो मे त्रुटि रहने के कारण अब ग्रहो की स्थितियो मे नौ-दस अश (डिगरी) का अतर पड जाता है। प्राचीन सूर्य-सिद्धात के स्थिराक और भी अशुद्ध थे। इसलिए उस ग्रथ के बनने के कुछ ही सौ वर्ष बाद उसके आधार पर गणना और वेध मे अतर पडने लगा होगा। इसीलिए पीछे के ग्रथकारो ने सूर्य आदि आकाशीय पिंडो के लिए बीज-सस्कार बताया, अर्थात् युग मे सूर्य, चद्रमा और ग्रहो के भगणो की सख्या मे परिवर्तन कर दिया, दूसरे शब्दो मे उनकी दैनिक गति बदल दी। यह लगभग १६वी शताब्दी ई० में किया गया होगा,

क्योकि नवीन आँकडो के अनुसार उसी समय चद्रमा और सूय की सापेक्षिक स्थितियो मे न्यूनतम त्रुटि पडती है और अवश्य ही ये ही दो पिंड महत्तम महत्त्व के है, क्योकि उन्ही से अमावस्या और पूर्णिमा की गणना होती है। इन बीज-सस्कारो से अमावस्याओ और पूर्णिमाओ की त्रुटियाँ इतनी कम हो गयी हैं कि आज भी उनसे गणना करने पर घटे दो घटे से अधिक का अन्तर नही पडता।

बरजेस ने सारणी दी है जिसमे दिखाया गया है कि 'सूर्य-सिद्धात,' 'सिद्धात-शिरोमणि,' टालमी और आधुनिक ज्योतिष के अनुसार सूर्य, चद्रमा और ग्रहो के भगण-काल क्या है। इस सारणी की दो पक्तियाँ यहाँ दी जाती है—

पिंड सूर्य-सिद्धात सिद्धात-शिरोमणि टालमी आधुनिक
दिन घ०मि०से० दिन घ०मि०से० दिन घ०मि०से० दिन घ०मि०से०
सूर्य ३६५ ६ १२ ३६ ६ ३६५ ६ १२ ९ ० ३६५ ३६ ९ ४८ ६ ३६५ ६ ९ १० ८
चद्र २७७ ४३ २ ६ २७ ७ ४३ १२ १ २७ ७४३ १२ १ २७ ७ ४३ ११ ४

इससे स्पष्ट है कि सूर्य-सिद्धात के मान पर्याप्त शुद्ध हैं।

फिर बताया गया है कि एक युग मे कितनी तिथियो का क्षय होता है, कितने अधिमास लगते है। कहा गया है कि एक महायुग मे १,५७,७९,१७,८२८ दिन, १,६०,३०,००,०८० तिथियाँ, १५,९३,३३६ अधिमास, २,५०,८२,२५२ क्षय तिथियाँ, तथा ५,१८,४०,००० सौर मास होते हैं।

इसके बाद बताया गया है कि एक कल्प मे सूर्य, मगल आदि के मदोच्च कितने चक्कर लगाते हैं, एक महायुग मे चद्रमा तथा ग्रहो के भगणो की सख्या भी बतायी गयी है।

★ मदोच्च और पात

यह समझने के लिए कि मदोच्च और पात क्या हैं, ध्यान रखना चाहिये कि सूर्य, चद्रमा, ग्रह आदि समान कोणीय वेग से नही चलते। जब उनकी दैनिक कोणीय गति न्यूनतम रहती है तब कहा जाता है कि वे मदोच्च पर है, जिस बिंदु पर कोणीय वेग महत्तम रहता है उसे शीघ्रोच्च कहते हैं। फिर, चद्रमा और ग्रहो का आधा मार्ग रविमार्ग से दक्षिण रहता है, आधा उत्तर। जिन दो बिंदुओ मे ये मार्ग रविमार्ग को काटते है वे 'पात' कहलाते हैं।

'सूर्य-सिद्धात' के अनुसार सूर्य का मदोच्च एक कल्प मे (४,३२,००,००,००० वर्षों मे) पूर्व की ओर चलकर ३८७ भगण करता है, अर्थात् ३८७ चक्कर लगाता है। यह वास्तविकता से बहुत कम है, लगभग १/६०० वाँ भाग। अन्य सिद्धात-कारो ने भी मदोच्च-गति के लिए सूक्ष्म मान दिये हैं। वस्तुत उनका मान इन

ग्रथो के अनुसार इतना कम है कि कहना पडता है कि सिद्धातकार सूर्य और ग्रहो के मदोच्च को स्थिर ही मानते थे। चद्र-कक्षा का मदोच्च प्रत्यक्षत चलता रहता है। सभवत इसीलिए सिद्धातकारो ने सूर्य और ग्रहो के मदोच्चो को भी चलायमान माना परतु उनकी गति इतनी कम बतायी कि उनका चलना, न चलना बराबर ही रह गया।

★ मदोच्च की गति कैसे नापी गयी

यहाँ यह बता देना उचित होगा कि मदोच्चो की गति नापना बहुत कठिन है और उनका सूक्ष्म मान जानने के लिए शक्तिशाली यत्रो की आवश्यकता पडती है, जो सूर्य-सिद्धान के समय मे नही थे, और लगातार बहुत लबे काल तक वेध करना चाहिये, या, कम-से-कम, इस काल के आदि और अत मे वेध करना चाहिये।

सूर्य, चद्रमा और ग्रहो की भगण-सख्याएँ जो ऊपर दी गयी है उन्हे जानने के लिए आवश्यक वेध अपेक्षा-कृत सरल है। तो भी निश्चयात्मक रूप से यह बता सकना कि १,५७ ७९,१७,८२८ दिनो मे ठीक १,६०,३०,००,०८० तिथियाँ होती हैं, अर्थात् १,६०,३०,०,०,०८० – ३० माम होते है, न एक कम, न एक अधिक, बहुत ही कठिन है। प्रश्न यह उठता है कि क्या सचमुच वेध उस समय इतना सूक्ष्म होता था कि ये सब बाते ठीक-ठीक बतायी जा सकती थी, या केवल सुनी-सुनायी या दूसरो के वेधो पर आश्रित बातो पर ही ये बाते लिख दी गयी और विभिन्न सिद्धातकारो ने यह देख कर कि उनके समय मे वेध और गणना मे कितना अतर पडता है बीज-सस्कार कर लिया। इसका उत्तर प्रसिद्ध ज्योतिषी भास्कराचार्य ने यो दिया है[1]

"किंतु यह रीति केवल वही जान सकता है जिसने (ज्योतिषशास्त्र की) विशेष भाषा मे कुशलता प्राप्त की हो, नक्षत्रादि स्थानो को जानता हो, और जिसने भूगोल-खगोल के बारे मे अच्छी तरह सुना हो। अपने-अपने मार्गों मे जाते हुए ग्रह (सूर्य, चद्रमा, बुध, शुक्र, मगल आदि), मदोच्च, शीघ्रोच्च तथा पात एक कल्प मे इतने भगण करते है, इसका प्रमाण आगम अर्थात् परपरागत ज्ञान ही है। किन्तु अधिक समय बीतने के कारण लेखको, अध्यापको तथा पढने वालो की भूल से आगम अनेक हो गये हैं। इसलिए प्रश्न होता है कि कौन-सा आगम प्रमाण माना जाय। यदि ऐसा कहा जाय कि जो आगम

१ सिद्धात-शिरोमणि, गणिताध्याय। सस्कृत मूल के लिए सूर्य-सिद्धांत का विज्ञान-भाष्य देखें (पृष्ठ ३७), यहाँ महावीरप्रसाद कृत अनुवाद दिया गया है।

गणित के अनुसार खरा सिद्ध हो उसी को प्रमाण मानकर जो भगण निकलें वे ही माने जायँ तो यह भी ठीक नही है, क्योकि अत्यत ज्ञानी पुरुष भी केवल रीति के जानने मे समर्थ हो सकता है, परतु (केवल) रीति से ग्रहो के भगण की सख्या नही निकल सकती। [उसे वेध की आवश्यकता पडेगी, और वेध से भी वह पूर्णतया सफल नही हो सकता।] कारण यह है कि मनुष्य की आयु बहुत थोडी होती है और उपपत्ति जानने के लिए ग्रह का प्रति दिन वेध करना होता है, जब तक कि भगण (कई बार) पूरा न हो जाय, और शनि का एक भगण तो ३० वर्षों मे पूरा होता है, मदोच्चो के भगण अनेक शताब्दियो मे पूरे होते हैं। इसलिए यह कार्य पुरुष-साध्य नही है। इसलिए बुद्धिमान् गणक किसी ऐसे आगम को मानकर जो उस समय ठीक समझा जाता हो और जिसकी गणना की कुशलता प्रतिष्ठाप्राप्त गणको ने स्वीकार कर ली हो, अपने गणित तथा गोल सबधी ग्रहो को दिखाने के लिए तथा भ्रमवश जो कुछ अनर्थकारी दोष आ गये है उनको दूर करने के लिए, दूसरे ग्रथ बनाते है।"

भास्कराचार्य का जन्म सन् १११४ ई० मे हुआ था। ऊपर के उद्धरण से स्पष्ट है कि भास्कराचार्य सूर्य, चद्रमा, बुध, शुक्र आदि का भगणकाल वेध से ठीक-ठीक निकालना असभव समझते थे। भारतीय ज्योतिषियो मे से सबसे अधिक विस्तृत और विशद सिद्धात भास्कराचार्य का ही है। यदि वे इस काम को असभव समझते थे तो उनके कई पीढी पहले वाले ज्योतिषी भी स्वय भगण-सख्याएँ न निकाल सके होगे। इससे कुछ लोग अनुमान करते है कि ये सख्याएँ प्रथम बार विदेश से आयी और तब विविध ज्योतिषियो ने आवश्यकतानुसार उनमें सुधार कर लिया। मय के असुर होने से भी सकेत मिलता है कि सूर्य-सिद्धात का अधिकाश विदेश से आया। परन्तु यह भी है कि सुधार करने के बाद कुछ बातो मे सूर्य-सिद्धात के ध्रुवाको से निकाला फल टालमी के ध्रुवाको से निकाल गये फल से अधिक शुद्ध होता था।[1]

★ अहर्गण

'सूर्य-सिद्धात' के आगामी तीन श्लोको मे बताया गया है कि सृष्टि के आरभ से किसी इष्ट समय तक सावन[2] दिनो की सख्या कैसे जानी जा सकती है। इन दिनो

१. सूर्य-सिद्धांत का विज्ञान-भाष्य, पृ० ५३।

२. सावन दिन साधारण दिन को कहते थे, जिसे सूर्योदय से आगामी सूर्योदय तक नापा जाता था। दिव्य दिन, नाक्षत्र दिन आदि से स्पष्ट करने के लिए ही इसे सावन दिन कहते थे।

को सम्मिलित रूप से द्युगण या दिनराशि कहा गया है। पीछे इसी को अन्य सिद्धांतकार अहर्गण कहने लगे। तीनो शब्दो का अर्थ एक ही है।

अहर्गण की गणना मे बडी-बडी सख्याएँ आती हैं। उदाहरणार्थ १९७९ विक्रमीय की वसतपचमी (माघ सुदी ५) तक का अहर्गण

७,१४,४०,४१,३१,६०३

है।[१] इसी से करण ग्रथो की सहायता से गणना करने मे सुगमता रहती है। करण-ग्रथो मे कल्प के आदि से या कलियुग के आरभ से गणना करने के बदले किसी निकट दिनाक से ही गणना की जाती है। परन्तु सिद्धात का ही स्थान विद्वानो मे अधिक ऊँचा रहा है।

फिर इष्टकाल, कौन-सा वार है और वर्षपति तथा मासपति कौन-कौन हैं इसे जानने की रीति बतायी गयी है। मासपति और वर्षपति सूर्य, चद्रमा, मगल आदि ग्रह ही होते हैं और साधारण काम के लिए वे महत्त्वपूर्ण नही है।

इसके बाद बताया गया है कि किसी विशेष ग्रह की मध्यम स्थिति कैसे जानी जा सकती है। कलियुग के आरम्भ मे इनका स्थान ज्ञात है ही। युग मे भगणो की सख्या भी ज्ञात है। इसलिए साधारण अकगणित से ग्रहो की स्थिति ज्ञात हो जाती है। इसी प्रकार पात और मदोच्च की स्थितियो के लिए भी नियम बताये गये हैं।

छप्पनवे श्लोक मे यह है

विस्तरेणतदुदित सक्षेपाद् व्यावहारिकम्।
मध्यमानयन कार्य ग्रहाणामिष्टतो युगात्॥

[अर्थ—ग्रहो के मध्यम स्थान जानने की रीति अब तक विस्तार के साथ कही गयी है, परतु व्यवहार के लिए इष्ट युग से ही यह काम सक्षेप मे करना चाहिये।]

इससे स्पष्ट है कि 'सूर्य-सिद्धात' का रचियता भी अनुभव कर रहा था कि सृष्टि के आरभ से गणना करना निष्प्रयोजन बहुत-सा कार्य बढा देता है।

★ पृथ्वी की नाप

इसके बाद पृथ्वी की नाप बतायी गयी है (८०० योजन), फिर पृथ्वी की परिधि। सभी जानते है कि व्यास को ३ १४१६ से गुणा करने से परिधि निकलती है। सूर्य-सिद्धात मे $\sqrt{(१०)}$ अर्थात् ३ १६२ से गुणा करने को कहा गया

१ विज्ञान-भाष्य, पृ० ५७।

है। इससे सन्निकट मान निकलेगा, जिसमे लगभग $\frac{२}{३}$ प्रतिशत, अर्थात् एक प्रतिशत से कम, की अशुद्धि रहेगी। विषुवत् के समानातर किसी विशेष स्थान से होकर जाने वाले लघुवृत्त की परिधि जानने का सूत्र भी दिया गया है, जो पूर्णतया शुद्ध है।

मध्य याम्योत्तर रेखा वह बतायी गयी है जो अवती (उज्जैन) से होकर जाती है। इसी रेखा पर रोहीतक (सभवत वर्तमान रोहतक) है यह भी बताया गया है। आगे के तीन श्लोको मे बताया गया है कि किसी स्थान पर देशातर कैसे नापा जा सकता है। वर्तमान समय मे रेडियो-सकेतो से देशातर जाना जाता है। इसके पहले तार-सकेतो से जाना जाता था। सूर्य-सिद्धात मे सर्व चद्र-ग्रहण के आरभ या अत को देखकर देशातर नापने का आदेश है।

मध्य याम्योत्तर से पूर्व या पश्चिम वाले स्थानो में दिन का आरभ कब से मानना चाहिये यह बताकर नियम दिया गया है जिससे सूर्य, चद्र, मगल आदि का मध्यक स्थान, मध्यरात्रि से इच्छानुसार घडी आगे या पीछे, जाना जा सकता है। इस प्रकार इष्ट समय पर इन आकाशीय पिंडो का भोगाश जानने का सपूर्ण और ब्योरेवार नियम है। उसके बाद के श्लोको मे इसकी गणना बतलायी गयी है कि चद्रमा, मगल आदि रविमार्ग से कितना उत्तर या दक्षिण हटे रहते हैं, दूसरे शब्दो मे, उनका शर क्या है।

★ स्पष्टाधिकार

प्रथम अध्याय का नाम है मध्यमाधिकार, क्योकि इसमे सूर्य आदि की मध्यक स्थितियाँ हैं, अर्थात् वे स्थितियाँ जहाँ सूर्य आदि दिखाई पडते यदि वे सदा समान वेग से चलते और औसतन उतने ही काल मे एक चक्कर लगाते जितने मे वे वस्तुत लगाते हैं। द्वितीय अध्याय का नाम स्पष्टाधिकार है। इसमें बताया गया है कि सूर्य आदि की मध्यक स्थितियो मे क्या-क्या सशोधन करना चाहिये जिसमें सशोधित स्थितियाँ वही हो जायँ जो आकाश मे वस्तुत रहती हैं।

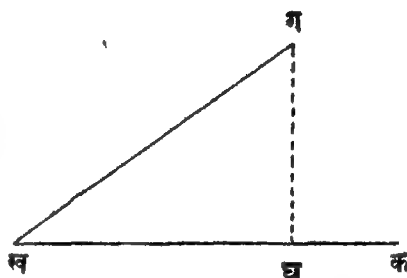
पहले तो एक व्यापक सिद्धात दिया गया है कि सूर्य आदि क्यो मध्यक वेग से कभी शीघ्रतर चलते है, कभी मदतर। इस सिद्धात का साराश यह है कि अतरिक्ष मे वायु-धाराएँ है जो उनको नियमित रूप से इधर या उधर खीचती रहती है। फिर शीघ्रतर, शीघ्र, सम, मद, मदतर वेग बताये गये है।

तेरह श्लोको मे ज्या-सारणी बतायी गयी है, जो पर्याप्त शुद्ध है। बरजेस ने बताया है कि ये ज्याएँ पहले कैसे निकाली गयी होंगी और फिर उनकी वृद्धि की जाँच करके उनकी गणना के लिए अधिक सुगम नियम कैसे बने होंगे।[1] उप-

१ कलकत्ता वाला संस्करण, पृष्ठ ६१।

लब्ध साक्ष्य की जाँच से बरजेस का विश्वास है कि ज्या की सारणी अवश्य भारत मे बनी होगी ।

ज्या की सारणी बनाने मे वृत्त की परिधि और व्यास की निष्पत्ति की आवश्यकता पडती है और यहाँ √(१०) के बदले प्राय. पूर्णतया शुद्ध मान लिया गया है । इससे स्पष्ट है कि शुद्ध मान सिद्धातकारो को ज्ञात था, केवल सुविधा के विचार से, स्थूल गणना के लिए, उसका मान √(१०) भी ले लिया जाता था ।



यदि क ख ग कोई कोण है और बिन्दु ग से भुजा ख ग पर लम्ब ग घ गिराया गया है तो ग घ — ख ग के मान को कोण क ख ग की 'ज्या' कहते है। यह आधुनिक परिभाषा है। 'सूर्य-सिद्धान्त' मे ख ग को ३४३८ मान लिया गया है और तब बताया गया है कि विविध कोणो के लिए ग घ का मान कितना होता है और ग घ के मान को ज्या कहा गया है। एक समकोण को २४ बराबर भागो मे बाँट कर एक भाग, दो भाग, तीन भाग इत्यादि की ज्याएँ बतायी गयी है। ज्या की आवश्यकता कई गणनाओ मे पडती है।

आगामी श्लोक मे बताया गया है कि सूर्य की परम क्रान्ति, अर्थात् महत्तम क्रान्ति, कितनी होती है, वस्तुत परम क्रान्ति की ज्या बतायी गयी है। फिर उसी श्लोक मे यह भी बताया गया है कि किसी अन्य अवस्था मे क्रान्ति की गणना कैसे की जा सकती है।

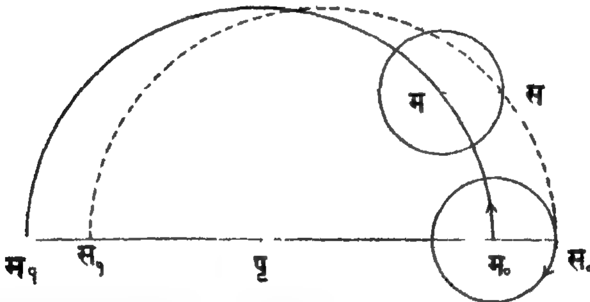
श्लोक २९ मे बताया गया है कि मन्दोच्च, शीघ्र, केन्द्र, पद, भुजज्या और कोटि की गणना कैसे करनी चाहिये। यहाँ केन्द्र शब्द सस्कृत नही है, क्योकि इसके पहले की पुस्तको मे इसका प्रयोग नही होता था। बरजेस ने लिखा है कि केन्द्र ग्रीक शब्द *Κεντρον* (केन्ट्रन) है, और ग्रह के स्पष्ट स्थान निकालने की नीव मे ही इस शब्द के आने का गूढ रहस्य है।

सारणी से ३ अश या इसके दुगुने, तिगुने आदि की ही ज्या जानी जा सकती है, अब बताया गया है कि अन्य कोणो की ज्या किस प्रकार जानी जा सकती है, जो नियम दिया गया है वह सरल अन्त-क्षेपण का नियम है।

★ मन्द-परिधि

चौतीसवें और उसके बाद वाले श्लोको मे बताया गया है कि सूर्य, चन्द्रमा, मगल आदि का स्पष्ट स्थान कैसे ज्ञात किया जा सकता है। इसके समझने के लिए साथ के चित्र पर विचार करे। गणना के लिए कल्पना की जाती थी कि पिंड एक छोटे से वृत्त पर समान वेग से चलता है और उस वृत्त का केन्द्र समान वेग से दूसरे वृत्त पर चलता है। छोटे वृत्त को सूर्य-सिद्धान्त मे मन्द-परिधि कहा गया है। बडा वृत्त वही है जिस पर पिण्ड की मध्यक स्थिति रहती है, वस्तुत मन्द-परिधि का केन्द्र पिण्ड की मध्यक स्थिति है।

उदाहरण के लिए सूर्य पर विचार करे। चित्र मे पृ पृथ्वी है। मध्यक सूर्य[1] वृत्त म॰म म१ पर चलता है। जब मध्यक सूर्य बिन्दु म॰ पर रहता है तब वास्तविक सूर्य स॰ पर रहता है। जब तक मध्यक सूर्य म॰ से म पर जाता है



तब तक वास्तविक सूर्य बिन्दु स पर पहुँचता है, और जब तक मध्यक सूर्य म१ पर पहुँचता है तब वास्तविक सूर्य बिन्दु स१ पर पहुँचता है, इस प्रकार वास्तविक सूर्य कक्षा स॰स स१ पर चलता है। गणित से सिद्ध किया जा सकता है कि कक्षा स॰स स१ एक वृत्त है जो मध्यक सूर्य की कक्षा के ठीक बराबर है, परन्तु पृथ्वी कक्षा स॰स स१ के केन्द्र पर नही है। परिणाम यह होता है कि गणना के अनुसार सूर्य की दूरी जो निकलती है वह समय के अनुसार कभी कम, कभी अधिक रहती है और इसी प्रकार सूर्य की दैनिक कोणीय गति भी न्यूनाधिक निकलती है, और ये दोनो गणना-प्राप्त मान वास्तविक मान के प्राय बराबर होते है।

१ अर्थात् सूर्य की मध्यक स्थिति, अथवा वह कल्पित बिन्दु जो वास्तविक सूर्य के औसत कोणीय वेग से और औसत दूरी पर चलता है।

मद-परिधि मे सूर्य के एक चक्कर लगाने का समय ठीक उतना ही माना जाता है जितने मे मध्यक सूर्य अपनी कक्षा मे एक चक्कर लगाता है, परन्तु चद्रमा के लिए दोनो के चक्कर लगाने का समय एक नही माना जाता। मगल आदि ग्रहो मे भी सूर्य की ही तरह मद-परिधि मे वास्तविक ग्रह के चक्कर लगाने का समय और मध्यक ग्रह के चक्कर लगाने का समय एक माना जाता है, परन्तु इन ग्रहो के लिए और भी काम करना पडता है, जो, कुछ कठिन होने के कारण, यहाँ नही समझाया जायगा।

★ टालमी से तुलना

जब सूर्य और चद्रमा की स्पष्ट स्थिति निकालने की रीति की तुलना टालमी की रीति से की जाती है तो कई बातो मे भिन्नता दिखाई पडती है। चद्रमा का स्थान टालमी के अनुसार गणना करने पर कुछ अधिक सच्चा निकलता है। वर्तमान गणित से तुलना करने पर सूर्य-सिद्धात की रीति बहुत स्थूल है, विशेष कर चद्रमा की स्पष्ट स्थिति जानने की रीति। वर्तमान रीति से चद्रमा की स्पष्ट स्थिति निकालने के लिए कई सौ सशोधन करने पडते है। ब्रिटिश तथा अन्य पाश्चात्य नाविक पचागो के लिए ब्राउन[1] की चद्र-सारणियो से काम लिया जाता है, जो दो बडे आकार के मोटे खडो मे छपी है, एक साल की चांद्र स्थितियो की गणना मे कई व्यक्ति पाँच-छ महीने तक गणना करते है, गणक-मशीनो की सहायता लेते है और वेध-प्राप्त बीज-सस्कार करते है। इतना करने पर भी सूर्य-ग्रहण की गणना मे वास्तविकता से तुलना करने पर कुछ सेकड का अतर रह ही जाता है। इसलिए कोई आश्चर्य न होना चाहिये कि सूर्य-सिद्धात के अनुसार गणना करने पर घटे, दो घटे का अतर पड जाता है। सूर्य-ग्रहण की गणना के लिए सूर्य और चन्द्रमा की स्पष्ट स्थितियाँ सूक्ष्मता से ज्ञात रहनी चाहिये। सूर्य का स्थान तो प्राय ठीक ही ज्ञात रहता है। चद्रमा की स्थिति मे कुछ अनिश्चितता आधुनिक गणित मे भी रह जाती है। इसी से सूर्य-ग्रहण के लिए गणना-प्राप्त समय मे कुछ त्रुटि रह जाती है।

'सूर्य-सिद्धात' मे एक अन्य सूक्ष्मता भी लायी गयी है। मद-परिधि को सब स्थितियो मे एक ही व्यास का नही माना गया है। माना गया है कि इसका व्यास एक ओर अधिक रहता है, और जैसे-जैसे इसका केंद्र मध्यक ग्रह की कक्षा की दूसरी ओर पहुँचता है वैसे-वैसे इसका व्यास घट कर लघुतम हो जाता है।

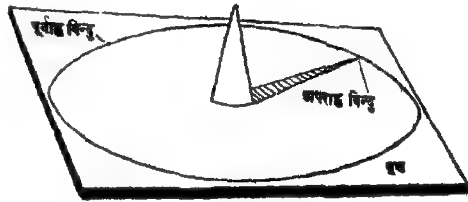
१ देखिये, गोरखप्रसाद चद्र-सारणी (काशी-नागरीप्रचारिणी सभा)।

ग्रहों की स्थितियों की गणना बताने के बाद इसकी गणना बतायी गयी है कि किसी दिन कौन-सी तिथि है यह कैसे जाना जाय। फिर करणों की गणना बतायी गयी है।[1]

★ त्रिप्रश्नाधिकार

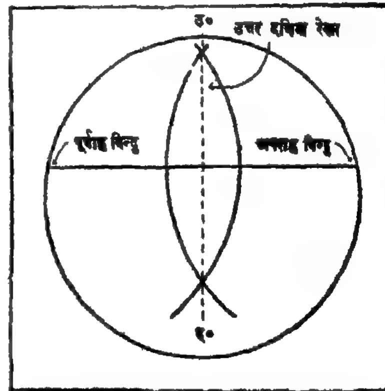
त्रिप्रश्नाधिकार मे तीन विषयों पर विचार किया गया है दिशा, देश और काल (समय)। पहले तो शकु स्थापित करने के लिए आदेश है

जल के द्वारा शोध कर समतल किये हुए पत्थर के तल पर अथवा बज्रलेप (सुर्खी, चूने आदि के मिश्रण) से बने हुए समतल चबूतरे पर शकु के अनुमार इष्ट अगुल (अर्थात् इच्छानुसार नाप) के व्यासार्ध का एक वृत्त खीचो। इस वृत्त के केंद्र मे बारह अगुल का एक शकु लब रूप मे स्थापित करो। इसकी छाया की नोक मध्याह्न के पहले और पीछे पूर्वोक्त वृत्त को जहाँ-जहाँ स्पर्श करे वहाँ-वहाँ वृत्त पर बिंदु बना दो, इन दो बिंदुओं को पूर्वाह्न और अपराह्न बिंदु कहते हैं। फिर इन दो बिंदुओं के बीच मे तिमि द्वारा (अर्थात् मछली की आकृति की ज्यामितीय रचना



शकु

शकु की पूर्वाह्न और अपराह्न छाया देख कर पूर्व-पश्चिम रेखा खीची जाती थी।



उत्तर-दक्षिण दिशा जानने की रीति।

१. करण, योग आदि क्या हैं, यह इस पुस्तक के अंतिम अध्याय में बताया गया है।

करके[1]) उत्तर-दक्षिण रेखा खीचो। उत्तर-दक्षिण दिशाओ के बीच में तिमि द्वारा पूरब-पश्चिम रेखा खीचो।

यहाँ शकु की सब नाप नही बतायी गयी हैं।

भारतीय ज्योतिष ग्रन्थो मे कही भी यत्रो का ब्योरेवार वर्णन नही है, परतु जान पडता है कि शकु उस समय एक महत्त्वपूर्ण यत्र माना जाता था। इसका वर्णन सूर्य-सिद्धान्त मे है ही। अन्यत्र भी इसका वर्णन मिलता है।

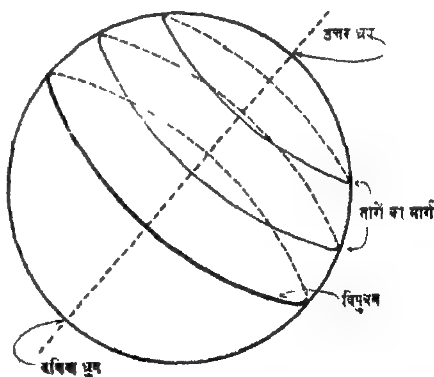
श्लोक ५ से ८ तक मे छाया सम्बन्धी परिभाषाएँ तथा आदेश है।

श्लोक ९ और १० मे एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण बात बतायी गयी है। कहा गया है

"एक युग मे नक्षत्र-चक्र ६०० बार पूर्व की ओर लोलक की तरह आन्दोलन करता है। इस ६०० को इष्ट अहर्गण से गुणा करके महायुगीय सावन दिनो की सख्या से भाग देने पर जो आये उसका भुज बना कर भुज से ३ को गुणा करके १० से भाग दे दो। ऐसा करने से जो कुछ आये वही अयनाश कहलाता है। ग्रहो (अर्थात् सूर्य, चन्द्रमा, मगल आदि) के स्थानो मे इसका सस्कार देकर (जोडकर) ग्रहो की क्रान्ति, छाया, चरदल इत्यादि जानना चाहिये।"

अयन

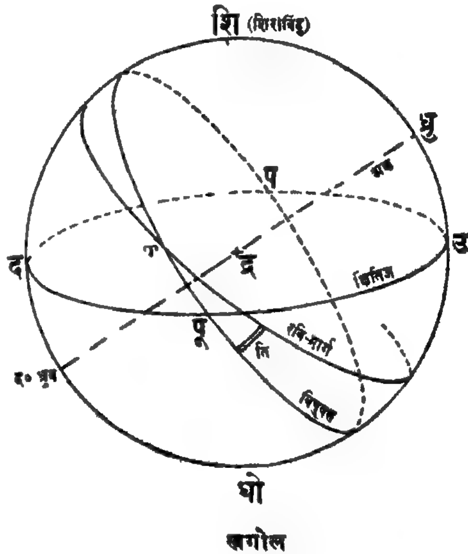
इस श्लोक का महत्त्व यह है कि इसमे अयन की गणना बतायी गयी है। अयन को समझने के लिए ध्यान दे कि आकाश मे तारे, ग्रह, चन्द्रमा, सूर्य, सब पूर्व क्षितिज पर उदित होते है और मोटे हिसाब से २४ घटे मे एक चक्कर लगाकर दूसरे दिन फिर पूर्व क्षितिज पर पहुँच जाते है। आकाशीय पिंडो की यह दैनिक गति है। यदि आकाश को गोले से निरू-पित किया जाय और इस



१ यह वही रचना है जिससे दी हुई सरल रेखा पर लम्ब-अर्धक खड़ा किया जाता है।

पर तारों के दैनिक मार्ग अंकित किये जायँ तो वे सब समानान्तर वृत्त होंगे। इस गोले को हम खगोल कहेंगे। खगोल के केन्द्र से जो रेखा पूर्वोक्त सब वृत्तो के समतल पर लम्ब खीची जा सकती है वही खगोल का अक्ष है। अक्ष खगोल को दो बिन्दुओ मे काटता है जिनमे से एक उत्तर ध्रुव है और दूसरा दक्षिण ध्रुव। इन दोनो ध्रुवो के ठीक मध्य मे रहने वाला खगोल पर खीचा गया वृत विषुवत् कहलाता है।

हम खगोल पर सूर्य की स्थिति भी अंकित कर सकते है। यदि हम शंकु की छाया देखे तो हमे सूर्य की दिशा और उन्नतांश (ऊँचाई) ज्ञात हो जाते है, और इससे खगोल पर सूर्य की स्थिति का पता चल जाता है। यदि हम प्रति दिन मध्याह्न पर सूर्य की स्थिति ज्ञात करके उसे अपने खगोल पर अंकित करे तो एक वर्ष मे ज्ञात होगा कि सूर्य एक वृत्त पर चलता है, जिसे हम रविमार्ग कहेगे। हम देखेंगे कि रविमार्ग विषुवत् को दो व्यासत सम्मुख (अर्थात् आमने-सामने के) बिन्दुओ मे काटता है। इनमे एक वसत विषुवत् बिंदु (सक्षेपत वसत विषुव) है और दूसरा शरद विषुव बिंदु।



खगोल
रविमार्ग विषुवत् को लगभग २३½ अंश के कोण पर काटता है।

यदि वसत विषुव बिंदु का स्थान समय-समय पर खगोल पर अंकित किया जाय तो पता चलेगा कि वसत विषुव (और इसलिए शरद विषुव भी) तारो के सापेक्ष धीरे-धीरे खिसकता रहता है। इसी को अयन कहते हैं। यह गति बड़ी ही धीमी है। एक चक्कर लगाने मे विषुव को लगभग २६,००० वर्ष लगते हैं।

अब गति-विज्ञान के नियमो से सिद्ध कर दिया गया है कि विषुव बराबर ही एक दिशा मे चलता रहेगा और समय पाकर चक्कर पूरा कर लेगा। परन्तु केवल वेध से बताना असम्भव है कि विषुव चक्कर लगायेगा या कुछ दूर जाकर

लौट आयेगा । सूर्य-सिद्धान्त का मत है कि विषुव बराबर एक ही दिशा में नही चलता, यह अपनी औसत स्थिति के इधर उधर दोलन किया करता है, जैसे तागे से लटका हुआ लगर ।

'सूर्य-सिद्धात' मे जो बाते दी गयी है उनसे यह परिणाम निकलता है कि विषुव एक वर्ष मे ५४ विकला चलता है । गणना से यह ज्ञात है कि सूर्य-सिद्धात के समय मे विषुव प्रति वर्ष ५० विकला ही चलता रहा होगा । इस प्रकार दोनो मे कुछ अन्तर है, परन्तु अयन का नापना इतना टेढा है कि आश्चर्य होता है कि कैसे इतनी सूक्ष्मता से इसे उस काल मे किसी ने नापा होगा । अयन का पता यवन (ग्रीक) ज्योतिषी हिपार्कस ने लगाया (पृष्ठ १०७ देखो) और उसने कहा कि अयन ३६ विकला प्रति वर्ष से कम न होगा । प्रसिद्ध ज्योतिषी टालमी ने अयन को अधिक सूक्ष्मता से नापने के बदले ३६ विकला प्रति वर्ष को ही शुद्ध मान लिया । जिन लोगो की यह धारणा है कि ज्योतिष सबधी सब सूक्ष्म ज्ञान भारत मे ग्रीस से आया, वे यह नही बता पाते कि भारतीयो ने अयन का इतना अच्छा मान कैसे प्राप्त किया । हम देख चुके है (पृष्ठ ५३) कि पहले कृत्तिकाएँ वसत विषुव पर थी । क्या कोई पारपर्य था जिससे सूर्य-सिद्धात के समय के ज्योतिषी अनुमान कर सके कि 'शतपथ ब्राह्मण' के काल से उस समय तक लगभग कितने वष बीते थे और इस प्रकार अपन समय मे विषुव की स्थिति को देखकर वे गणना कर सके कि इतने वर्षों मे विषुव इतना चला तो एक वर्ष मे कितना चलता होगा ? कम-से-कम इतना तो है सूर्य-सिद्धात के अनुसार विषुव इधर-उधर २७ अश तक दोलन करता है और कृत्तिका से 'सूर्य-सिद्धात' के समय तक विषुव कुल २६$\frac{3}{4}$ अश चला था । बहुत सभव है कि २७ अश इसीलिए चुना गया हो, सिद्धातकार का विश्वास रहा होगा कि पुरानी स्थिति फिर आयेगी ।

कुछ पाश्चात्यो को सदेह है, वे समझते है कि सयोगवश ही भारतीयो का पूर्वोक्त मान इतना सच्चा निकला ।

* क्या वसत-विषुव दोलन करता है ?

हम देख चुके हैं कि वर्तमान 'सूर्य-सिद्धात' मे और वराहमिहिर के समय मे उपलब्ध 'सूर्य-सिद्धात' म अतर है । अब प्रश्न उठता है कि क्या सूर्य-सिद्धात के प्राचीन रूप मे भी अयन की चर्चा थी । ब्रह्मगुप्त ने अपने 'स्फुट-सिद्धात' मे अयन की कोई चर्चा नही की है, यद्यपि वह वराहमिहिर के बहुत पीछे हुआ, और इसलिए प्राचीन सूर्य-सिद्धात के बहुत ही पीछे । इससे सभावना यही जान पडती है कि सूर्य-सिद्धात के प्राचीन पाठ मे अयन न रहा होगा । जब हम इस पर

विचार करते हैं कि शकु की छाया वाले अध्याय मे अयन बताने के बदले इसे प्रथम अध्याय में बताना अधिक उचित होता, और इस पर भी विचार करते हैं कि इस अध्याय के श्लोक ८ तक शकु-छाया सबधी बाते है और ग्यारहवे श्लोक से फिर छाया सबधी बाते आरभ हो जाती हैं, तो सदेह की कुछ पुष्टि ही हो जाती है। भास्कराचार्य ने अपने ग्रथ 'सिद्धात-शिरोमणि' मे यही लिखा है कि विषुव बराबर एक दिशा मे चलता रहता है, परतु उनके भाष्यकारो ने उस सिद्धात को ठीक नही माना, वे यही मानते थे कि विषुव दोलन करता है, और भारत से यह अशुद्ध सिद्धात अरब मे और वहाँ से प्रारभिक यूरोपीय ज्योतिष मे भी पहुँच गया।[1]

★ शकु की छाया

बारहवे श्लोक मे उस दिन मध्याह्न काल के क्षण शकु-छाया पर विचार किया गया है जिस दिन सूर्य विषुवत् पर रहता है। आगामी श्लोक मे शकु-छाया से स्थान का अक्षाश जानने की रीति बतायी गयी है। आगे चलकर बताया गया है कि मध्याह्न पर छाया नाप कर किस प्रकार सूर्य की क्राति नापी जा सकती है और उससे सूर्य के भोगाश की गणना की जा सकती है। इसी प्रकार के अन्य कई एक शकु और छाया से सम्बन्ध रखने वाले प्रश्नो के लिए नियम दिये गये हैं। बयालीसवे श्लोक मे शकु की छाया की नोक का मार्ग खीचने की रीति बतायी गयी है। इस मार्ग को वृत्त मान लिया गया है, जो ठीक नही है। भास्कराचार्य ने भी स्वीकार किया है कि यह नियम अशुद्ध है।

इसके बाद बताया गया है कि लका और इष्ट स्थान मे मेष आदि राशियो के उदयकाल की गणना किस प्रकार की जा सकती है। भारतीय ज्योतिष ग्रन्थो मे लका वह बिन्दु है जहाँ उज्जैन की याम्योत्तर रेखा भूमध्य रेखा को काटती है। यह बिन्दु श्रीलका (वर्तमान सीलोन) से दूर है। लग्न[2] जानने की रीति भी बतायी गयी है।

★ चन्द्रग्रहणाधिकार

चन्द्रग्रहणाधिकार नामक चौथे अध्याय के पहले श्लोक मे बताया गया है कि सूर्य का व्यास ६५०० योजन है और चन्द्रमा का ४८० योजन। सूर्य-सिद्धान्त ने प्रथम अध्याय मे ही बता दिया है कि पृथ्वी का व्यास १६०० योजन है।

१ बरजेस, पृष्ठ ११९।

२ इष्ट समय पर रविमार्ग का जो बिन्दु क्षितिज पर रहता है वही उस समय का लग्न (अर्थात् लगा हुआ बिन्दु) कहलाता है।

इस प्रकार चन्द्रमा का व्यास सूर्य-सिद्धात के अनुसार पृथ्वी के व्यास का ० ३३ है, वास्तविक नाप लगभग ० २७ है। इस प्रकार चन्द्रमा का व्यास सूर्य-सिद्धात मे एक प्रकार से बहुत शुद्ध है। परन्तु सूर्य का व्यास बहुत अशुद्ध है।

चन्द्रमा के व्यास की नाप किस प्रकार प्राप्त की गयी थी, इसकी चर्चा कही नही है। कोणीय व्यास का अनुमान तो रहा ही होगा। परन्तु इससे अनुरेख व्यास का पता तभी लग सकता है जब चन्द्रमा की दूरी ज्ञात हो। दूरी नापने के लिए आवश्यक है कि नापा जाय कि दो स्थानो से देखने पर चन्द्रमा की दिशाओ मे कितना अन्तर पडता है। प्रत्यक्ष है कि यह अन्तर जितना ही अधिक होगा चन्द्रमा की दूरी उतनी ही कम होगी, अन्तर जितना ही कम होगा, दूरी उतनी ही अधिक होगी। परन्तु दो स्थानो से चन्द्रमा की दिशाओ का अन्तर नापना सुगम नही है। इससे आश्चर्य होता है कि चन्द्रमा की दूरी कैसे नापी गयी होगी।

सूर्य की दूरी नापी नही गयी है। एक सिद्धान्त पर उसकी दूरी की गणना कर ली गयी है। सिद्धान्त यह था कि सूर्य, चन्द्रमा, मगल आदि सब समान वेग से अन्तरिक्ष में चलते है। परन्तु यह सिद्धान्त ठीक नही है। फलत, इसके आधार पर निकाली गयी सूर्य की दूरी भी अशुद्ध निकली और इसलिए सूर्य का व्यास भी। सूर्य-सिद्धान्त के अनुसार सूर्य का व्यास पृथ्वी के व्यास का लगभग चौगुना है। आधुनिक वेधो से पता चलता है कि सूर्य इससे कही अधिक बडा है—उसका व्यास पृथ्वी के व्यास के १०० गुने से भी कुछ अधिक है।

पृथ्वी के अर्ध-व्यास के सम्मुख चन्द्रमा पर जो कोण बनेगा उसे चन्द्रमा का लम्बन कहते है। पृथ्वी से चन्द्रमा की दूरी घटती-बढती रहती है। इसी से लम्बन भी घटता-बढता रहता है। आधुनिक नापो के अनुसार इसका औसत मान लगभग ५७ कला है, और वास्तविक मान लगभग ६१ कला और ५४ कला के बीच घटता-बढता रहता है। सूर्य-सिद्धान्त ने चान्द्र लम्बन को स्थिर माना है और उसका मान ५३ $\frac{१}{३}$ कला लिया है। हिपार्कस ने चान्द्र लम्बन को अपनी नापो के अनुसार ५७ कला माना था जो प्राय शुद्ध है। परन्तु हिपार्कस ने भी सूर्य की नाप बताने मे गलती की। उसके पहले अपनी नापो के आधार पर अरिस्टाकस की धारणा थी कि सूर्य चन्द्रमा की अपेक्षा कुल १९ गुनी दूरी पर है। परन्तु यह मान बहुत ही अशुद्ध है। वस्तुत सूर्य चन्द्रमा की अपेक्षा लगभग ४०० गुनी दूरी पर है। परिणामत, हिपार्कस ने सूर्य का लम्बन ३ कला माना। 'सूर्य-सिद्धान्त' ने सूर्य का लम्बन ४ सेकण्ड माना। दोनो मान शुद्ध मान से बहुत अधिक है। शुद्ध मान लगभग $\frac{१}{६}$ कला है।

इसके बाद चन्द्रग्रहणाधिकार मे सूर्य और चन्द्रमा के आभासी (कोणीय) व्यासो के जानने की रीति बतायी गयी है। तब यह बताया गया है कि चन्द्रमा की कक्षा के पास पृथ्वी की छाया कितनी बडी रहती है। सभी जानते है कि इसी छाया मे घुसने से चन्द्रग्रहण लगता है। चन्द्रमा को राहु और केतु के ग्रसने की बात तो जनता के सन्तोष के लिए पुराण आदि मे कह दी गयी है। 'सूर्य-सिद्धात' के रचयिता को, तथा अन्य ज्योतिषियो को, ग्रहणो का ठीक कारण ज्ञात था और वे उसकी गणना भी कर सकते थे। नवाँ श्लोक यह है

छादको भास्करस्येन्दुरध स्थो घनवद भवेत् ।
भूच्छायां प्राङ्मुखश्चन्द्रो विशत्यस्य भवेदसौ ।।

[**अर्थ**—सूर्य के नीचे आ जाने पर चन्द्रमा उसको बादल की तरह ढक लेता है (इस प्रकार सूर्य-ग्रहण लगता है)। पूर्व की ओर भ्रमण करता हुआ चन्द्रमा भू-छाया मे प्रवेश कर जाता है, इस प्रकार चन्द्रमा का ग्रहण लगता है।]

इसके बाद इन बातो को जानने लिए नियम बताये गये है ग्रस्त भाग का परिमाण, सर्व-ग्रहण होगा, या खड-ग्रहण या ग्रहण लगेगा ही नही, ग्रहण और सर्व-ग्रहण कितने समय तक रहेगा, ग्रहण का आरम्भ और अन्त कब होगा, सर्व-ग्रहण का आरम्भ और अन्त कब होगा, ज्ञात समय पर कितना भाग ग्रस्त रहता है, ज्ञात ग्राम किस समय दिखाई पडेगा, ग्रहण का चित्र।

विषय के कठिन होने के कारण अधिक ब्योरा यहाँ देना उचित नही जान पडता।

★ सूर्यग्रहणाधिकार

इस अध्याय मे १७ श्लोको मे सूर्य-ग्रहण की गणना करने की रीति बतायी गयी है। बडी बुद्धिमत्ता से कई एक नियम बनाये गये है जो लगभग ठीक है, परन्तु कुल मिलाकर इतने सशोधन छूट गये हैं कि अन्तिम परिणाम बेकार ही रह जाता है। बरजेस ने २६ मई, सन् १८५४ के सूर्य-ग्रहण की गणना अमेरिका के एक नगर के लिए अपने सहायक भारतीय पडित से 'सूर्य-सिद्धान्त' के अनुसार कराकर प्रकाशित की है और गणना मे जहाँ कही अशुद्धता रह गयी थी उसका सशोधन भी कर दिया है। बडे पृष्ठो पर छोटे टाइप मे छापने पर भी गणना मे लगभग २१ पृष्ठ लगे हैं। अन्तिम परिणाम यह निकला है कि आँख से देखे गये ग्रहण के समय और गणना द्वारा प्राप्त समय मे पौने दो घटे से अधिक का अन्तर पडता है। विज्ञान भाष्य मे श्री महावीर प्रसाद श्रीवास्तव ने उदाहरण स्वरूप काशी के लिए सवत् १९८२ के माघ कृष्ण अमावस्या के सूर्य ग्रहण की गणना 'सूर्य-सिद्धान्त' के अनुसार की है। इस गणना मे लगभग ४० पृष्ठ लगे हैं। अतिम

परिणाम यह निकला है कि ग्रास का परिमाण लगभग २६ कला है, अर्थात् सूर्य के व्यास का तीन-चौथाई से अधिक भाग छिप जाना चाहिये और सूर्य-ग्रहण ६ घडी ४४ पल (दो घटे से अधिक समय तक) लगा रहना चाहिये। परन्तु वास्तव मे यह ग्रहण लगा नही। काशी के जो लोग इस ग्रहण को देखने की चेष्टा मे थे उन्हे भी ग्रहण नही दिखाई पडा और आधुनिक गणना से भी सिद्ध हुआ कि ग्रहण नही दिखाई पडना चाहिये।

★ परिलेखाधिकार

'सूर्य-सिद्धान्त' के छठे अध्याय का नाम परिलेखाधिकार है। किसी-किसी प्रति मे इसे छेद्यकाधिकार भी कहा गया है। दोनो का अर्थ एक है। इस अध्याय मे क्या है यह पहले श्लोक मे बताया गया है

"छेद्यक, परिलेख या चित्र के बिना सूर्य और चन्द्रमा के ग्रहणो के भेद का ठीक-ठीक ज्ञान नही होता कि बिंब की किस दिशा से ग्रहण का आरम्भ होगा, और किस दिशा से मोक्ष, तथा ग्रास कितना होगा। इसलिए छेद्यक बनाने का उत्तम ज्ञान मैं कहता हूँ।

इस अध्याय मे २४ श्लोक हैं। तेईसवे श्लोक मे कोई गणित नही है। वह यो है—

अर्धादूने सधूम्र स्यात्कृष्णमर्धाधिक भवेत्।
विमुचत. कृष्णताम्र कपिल सकलग्रहे ॥ २३ ॥

[अर्थ—जब चन्द्र-बिम्ब का आधे से कम भाग ग्रस्त होता है तब ग्रस्त भाग का रंग धुएँ की तरह होता है। आधे से अधिक ग्रस्त होने पर ग्रस्त भाग काला देख पडता है। जब चन्द्र-बिम्ब का बहुत-सा भाग ग्रस्त हो जाता है और थोडा ही सा बचा रहता है तब ग्रस्त भाग का रग साँवले ताँबे के रग का होता है। परन्तु सर्वग्रास ग्रहण का रग कत्थई (अथवा लोबान के रग का) होता है। (सूर्यग्रहण मे सूर्य के ग्रस्त भाग का रग सदैव काला होता है)।]

अन्तिम श्लोक रोचक है—

रहस्यमेतद देवानां न देय यस्य कस्यचित।
सुपरीक्षतशिष्याय देय वत्सरवासिने ॥ २४ ॥

[अर्थ—परिलेख खीचने की विद्या देवताओ की गोप्य वस्तु है। यह विद्या ऐसे-वैसे आदमी को न बतानी चाहिये। अच्छी तरह परीक्षा किये हुए शिष्य को जो एक वर्ष तक साथ रह चुका हो यह विद्या बतानी चाहिये।]

इसी से मैं भी पाठक को परिलेख खीचने की विद्या नही बता रहा हूँ।

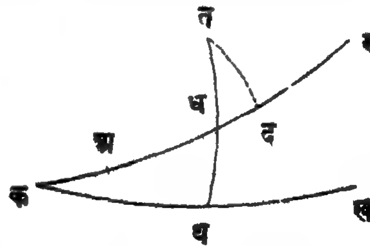
★ ग्रहयुत्यधिकार और नक्षत्रग्रहयुत्यधिकार

'सूर्य-सिद्धान्त' का सातवाँ अध्याय ग्रहयुत्यधिकार है। इसमे बताया गया है कि ग्रह एक दूसरे के निकट कब और कहाँ देख पडते हैं और इनका शुभाशुभ फल क्या होता है। यह भी बताया गया है कि जब ग्रह सूर्य के पास आ जाता है तब कहा जाता है कि वह ग्रह अस्त हो गया है।

नक्षत्र-ग्रहयुत्यधिकार नामक आठवें अध्याय के नाम का अर्थ है वह अध्याय जिसमे नक्षत्रो और ग्रहो की युति (अर्थात् एक साथ होने) पर विचार किया गया है। परन्तु नक्षत्रो और ग्रहो की युति पर इस अध्याय मे केवल दो श्लोक (१४-१५) है और वहाँ इतना ही कहा गया है कि पूर्वगामी अध्याय की रीति से यहाँ भी गणना करो। इस अध्याय का महत्त्व इसमे है कि नक्षत्रो और कुछ विशेष तारो की स्थितियाँ इसमे दी गयी हैं। इसका उद्देश्य यह था कि नक्षत्रो और ग्रहो की युतियो की ठीक गणना हो सके, परन्तु हमारे लिए महत्त्व यह है कि इनसे हम 'सूर्य-सिद्धान्त' के काल के विषय मे महत्त्वपूर्ण परिणाम निकाल सकते हैं।

★ तारो के निर्देशाक

तारो के निर्देशाक (अर्थात् वे अक जिनसे तारो की स्थितियाँ बतायी जा सकती है) आधुनिक ज्योतिष मे दो प्रकार के ही अधिक उपयुक्त होते हैं। वे हैं (१) विषुवाश और क्राति, तथा (२) भोगाश और शर। मान ले साथ के चित्र मे क वसत विषुव है, क ख विषुवत है और रेखा त थ बिन्दु त से विषुवत् पर गिराया गया लम्ब है। तो क थ को विषुवाश कहते हैं और त थ को क्राति।



अब मान लो क र रविमार्ग है और रेखा त द बिन्दु त से क र पर गिराया गया लम्ब। तो क द भोगाश है और त द शर।

परन्तु 'सूर्य-सिद्धान्त' मे ध्रुवक और विक्षेप का प्रयोग किया गया है, जिनकी परिभाषाएँ यो हैं

मान लो रेखा त थ रविमार्ग क र को बिन्दु ध मे काटता है और अ अश्विनी नक्षत्र का आदि बिन्दु है। तो अ ध ध्रुवक है और त ध विक्षेप।

यहाँ यह ध्यान मे रखना चाहिये कि ध्रुवक और विक्षेप को सूक्ष्मता से नापने की कोई रीति ज्ञात नही है। वस्तुत भोगाश और शर भी नही नापे जाते। आधुनिक ज्योतिष मे विषुवाश और क्राति ये दोनो ही नापे जाते हैं और तब, यदि आवश्यकता हुई तो, उनसे भोगाश और शर की गणना की जाती है। कारण यह है कि विषुवाश और क्राति विषुवत् के सापेक्ष नापे जाते है जो आकाश मे स्थिर रहता है, इसलिए नाप सरल है और बहुत सूक्ष्मता से की जा सकती है, परतु भोगाश, शर, ध्रुवक आदि रविमार्ग के सापेक्ष नापे जाते है और रविमार्ग आकाश मे स्थिर नही रहता। चीन के प्राचीन ज्योतिषी भी विषुवाश और क्राति ही नापते थे, यद्यपि उस काल मे समय नापने के लिए जल-घटी से कोई अधिक अच्छा प्रबध नही था और विषुवाश नापने मे समय की सच्ची नाप की आवश्यकता पडती है।

★ ध्रुवक और विक्षेप की नाप

'सूर्य-सिद्धात' तथा अन्य भारतीय ग्रथो मे रविमार्ग को ही अधिक महत्त्व दिया गया है। जैसा ऊपर की परिभाषाओ से स्पष्ट है, भोगाश और शर, अथवा ध्रुवक और विक्षेप, ये दोनो पद्धतियाँ रविमार्ग से सम्बन्धित है। पता नही कि सिद्धातकार इन्हे नापते थे, अथवा वे विषुवाश और क्राति नापकर ध्रुवक और विक्षेप गणना से निकालते थे। हम केवल अनुमान कर सकते है कि यदि वे इस नापते थे तो बॉस की तीली या तार से बने गोले का वे प्रयोग करते रहे होगे। इस पर रविमार्ग तार या तागे से अकित रहता रहा होगा और वेध करने के पहले वे केंद्र पर आँख लगाकर चमकीले तारो को देखकर खगोल की दिशा को ठीक करते रहे होगे। इसी यत्र से अज्ञात तारो के निर्देशाक वे नापते रहे होगे। बारहवे श्लोक के उत्तरार्ध से इसका सकेत भी मिलता है, जो यो है

गोल बध्वा परीक्षेत विक्षेप ध्रुवक स्फुटम ।।१२।।

[अर्थ—गोल नामक यत्र बनाकर इन स्फुट (सशोधित) विक्षेपो और ध्रुवको की परीक्षा करनी चाहिये।]

गोल यत्र के बनाने की रीति तेरहवे अध्याय मे दी गयी है। परतु वस्तुत यह ऐसा यत्र नही है जिससे दस कला तक तारे का स्थान नापा जा सके। कोई और रीति रही होगी, सभवत गणना।

★ योग-तारे

'सूर्य-सिद्धात' मे तारो की स्थितियाँ बताने के लिए केवल सख्याएँ दी गयी है और उनके सबध मे यह आदेश दिया गया है

प्रोच्यंते लिप्तिका भानां स्वभोगोऽथ दशाहतः ।
भवन्त्यतीतधिष्ण्यानां भोगलिप्तायुता ध्रुवा ॥१॥

[अर्थ—(अश्विनी आदि) तारो के जो भोग आगे बताये गये हैं उनको दस से गुणा करके गुणनफल को गत नक्षत्रो की भोग-कलाओ मे जोडने से जो आता है वही उन तारो के ध्रुवक[1] हैं।]

यहाँ कला के लिए 'लिप्तिका' शब्द का प्रयोग किया गया है, जो प्राचीन सस्कृत शब्द नही है, ग्रीक λεπτον (लेप्टन) से लिया गया जान पडता है।

ऊपर के आदेश को समझने के लिए ध्यान देना चाहिये कि रविमार्ग को सत्ताईस बराबर भागो मे बाँटा जाता था और प्रत्येक को एक नक्षत्र कहा जाता था। प्रत्येक भाग का नाम भी था और वही नाम उस तारका-पुज (तारो के छोटे समूह) का भी था जो उम भाग मे पडता था। प्रत्येक तारका-पुज मे से कोई एक प्रमुख तारा चुन लिया जाता था जो उस नक्षत्र का योग-तारा कहलाता था। अवश्य ही, योग-तारा नक्षत्र (रविमार्ग के सत्ताईसवे भाग) के ठीक आरभ पर नही पडता था। सूर्य-सिद्धात मे यह बताया गया है कि योग-तारा नक्षत्र के आदि बिदु से कितनी दूरी पर है। दूरी को कलाओ मे बताने के बदले दस कलाओ की इकाई लेकर बताया गया है जिनमे बडी सख्याओ का प्रयोग न करना पडे। इन सख्याओ मे योग-तारो के ध्रुवक ज्ञात होते है, आगे चलकर उनके विक्षेप भी बताये गये है। फिर कुछ अन्य महत्त्वपूर्ण तारो के भी ध्रुवक और विक्षेप बताये गये है।

★ सूर्य-सिद्धात का काल

एक बात का 'सूर्य-सिद्धात' से पता नही चलता कि सूर्य-सिद्धात के समय इन योग-तारो के सापेक्ष, वसत विषुव कहाँ था। परतु इन योग-तारो की स्थितियो से अश्विनी नक्षत्र के आदि बिदु का पता लग जाता है। प्रत्येक तारे से अलग-अलग गणना करने पर परिणाम भिन्न-भिन्न मिलते हैं, परतु उनका औसत लिया जा सकता है और औसत मान को सच्चा समझा जा सकता है। अब यदि हम यह कल्पना करे कि अश्विनी का आदि बिदु 'सूर्य-सिद्धात' के समय ठीक वसत विषुव पर था, तो हम 'सूर्य-सिद्धात' का समय ज्ञात कर सकते हैं, क्योकि वसत विषुव की वर्तमान स्थिति ज्ञात है और उसकी वार्षिक गति भी ज्ञात है।

१ ध्रुवक को ध्रुव भी कहते थे, श्लोक मे ध्रुव ही है, परंतु भ्रम से बचने के लिए सदा ध्रुवक शब्द का प्रयोग ही अधिक अच्छा है।

डाक्टर मेघनाथ साहा[1] ने अपने आचार्य श्री प्रबोधचन्द्र सेनगुप्त की तरह योग-तारो को, उनके सूर्य-सिद्धात वाले और वर्तमान भोगाशो के अतर के न्यूनाधिक होने के अनुसार तीन समूहो मे बाँटा है और उनका विश्वास है कि एक समूह के योग-तारो की नापे उस समय की हैं जब 'सूर्य-सिद्धात' प्रथम बार रचा गया, दूसरे समूह के योग-तारो की नापे उस समय की हैं जब प्रथम बार उसमे सशोधन किया गया और तीसरे समूह की नापे उस समय की है जब उसमे अतिम बार सशोधन किया गया। परतु 'सूर्य-सिद्धात' वाले और वर्तमान भोगाशो के अतर अपने औसत से इस प्रकार भिन्न हैं[2]

+२° १६′	+०° ३७′	—० ३३′
+२ १२	+० २५	—१ १
+१ ४०	+० २१	—१ १०
+१ ३३	+० १६	—१ २०
+१ २०	+० ९	—१ २७
+१ १८	+० ६	—१ ४३
+० ५८	+० ०	—२ ७
+० ५६	—० ५	—२ २०
+० ३८	—० ३१	—२ ३२

इन त्रुटियो के देखने से ऐसा नही जान पडता कि बिना कृत्रिमता लाये उनको तीन समूहो मे पृथक् किया जा सकता है, त्रुटियो को मान के क्रम मे रखने पर वे लगातार (धीरे-धीरे) बढती है। सभवत 'सूर्य-सिद्धात' के रचयिता के नापने की रीति इतनी स्थूल थी कि ये त्रुटियाँ अपने-आप हो गयी।

साथ की सारणी मे 'सूर्य-सिद्धात' के अनुसार योग-तारो के निर्देशाक दिये गये है और उनकी तुलना आधुनिक मानो से की गयी है।[3]

इन आँकडो से 'सूर्य-सिद्धात' का औसत काल लगभग ५०० ई० आता है।

१ देखें रिपोर्ट ऑव दि कैलेंडर रिफॉर्म कमिटी, भारत सरकार, (प्रकाशक, काउसिल ऑव सायटिफिक ऐंड इडस्ट्रियल रिसर्च, ओल्ड मिल रोड, नयी दिल्ली) १९५५, पृष्ठ २६३।

२ इनमे चार योग-तारों को सम्मिलित नहीं किया गया है, क्योंकि उनकी पहचान ठीक से नहीं हो पायी है, और अतर बहुत है। अन्य तारों के लिए अतर, नक्षत्रों के क्रम में नहीं, मान के क्रम मे यहाँ दिखाये गये हैं।

३ देखें, पूर्वोक्त रिपोर्ट, पृष्ठ २६४।

सारणी—सूर्य-सिद्धान्त के नक्षत्र

क्रम संख्या	नक्षत्र-नाम	योग-तारा	श्रेणी	१९५० में भोगांश भो	१९५० में शर श	ध्रुवक (सूर्य-मि०)	विक्षेप (सूर्य-सि०)	भोगांश भो॰ (सूर्य-सि० से परिगणित)	शर श॰ (सूर्य०सि० से परिगणित)	भो − भो॰	श − श॰
१	अश्विनी	β मेष	२ ७२	३३°१३′	+ ८°२९′	८° ०′	+१०° ०′	१२° ०′	+ ९° १०′	+२१°१६′	−०°४१′
२	भरणी	४१ मेष	३ ६८	४७ ३०	+१० २७	२० ०	+१२ ०	२४ ३७	+११ ५	२२ ५३	−० ३८
	,,	३५ मेष	४ ५८	४६ १४	+११ १९	२० ०	+१२ ०	२४ ३७	+११ ५	२१ ३७	+० १४
३	कृतिका	η वृष	२ ९६	५९ १८	+ ४ ३	३७ ३०	+ ५ ०	३९ ८	+ ४ ४३	२० १०	−० ४०
४	रोहिणी	α वृष	१ ०६	६९ ५	− ५ २८	४९ ३०	− ५ ०	४८ ८	− ४ ४९	२० ५७	−० ३९
५	मृगशिरा	λ वृष	३ ७०	८३ १	−१३ २३	६३ ०	−१० ०	६१ २	− ९ ४९	२१ ५९	−३ ३४
६	आर्द्रा	α मृग	० ६†	८८ ३	−१६ २	६७ २०	− ९ ०	६५ ४९	− ८ ५२	२२ १४	−७ १०
७	पुनर्वसु	β मिथुन	१ २१	११२ ३२	+ ६ ४१	९३ ०	+ ६ ०	९२ ५२	+ ६ ०	१९ ४०	+० ४१
८	पुष्य	δ कर्क	४ १७	१२८ १	+ ० ५	१०६ ०	० ०	१०६ ०	० ०	२२ १	+० ५
९	आश्लेषा	α कर्क	४ २७	१३२ ५७	− ५ ५	१०९ ०	− ७ ०	११० ०	− ६ ५६	२२ ५७	+१ ५१
	,,	ε वासुकी	३ ४८	१३१ ३९	−११ ६	१०९ ०	− ७ ०	११० ०	− ६ ५६	२१ ३९	−४ १०
१०	मघा	α सिंह	१ ३४	१४९ ८	+ ० २८	१२९ ०	० ०	१२९ ०	० ०	२० ८	+० २८

क्रम सख्या	नक्षत्र-नाम	योग-तारा	श्रेणी	१९५० मे भोगाश भो	१९५० मे शर श	ध्रुवक (सूर्य-सि०)	विक्षेप (सूर्य-सि०)	भोगाश भो० (सू०-सि०से परिगणित)	शर श० (सू०-सि०से परिगणित)	भो—भो०	श—श०
११	पूर्वाफाल्गुनी	δ सिंह	२ ५८	१६०° ३७′	+१४°२०′	१४४° ०′	+१२° ०′	१३९°५६′	+११° १८′	२०°४१′	+३° २′
१२	उ०फाल्गुनी	β सिंह	२ २३	१७० ५५	+१२ १६	१५५ ०	+१३ ०	१५० ८	+१२ ४		+० १२
१३	हस्त	δ काक	३ ११	१९२ ४५	—१२ ११	१७० ०	—११ ०	१७४ २४	—१० ६	+१८ २१	—२ ५
१४	चित्रा	α कन्या	१ २१	२०३ ९	— २ ३	१८० ०	— २ ०	१८० ४८	— १ ५०	२२ २१	—० १३
१५	स्वाती	α भूतप	० २४	२०३ ३२	+३० ४६	१९९ ०	+३७ ०	१८२ ५६	+३३ ४७	२० ३६	—३ १
१६	विशाखा*	α तुला	२ ९०	२२४ २३	+ ० २०	२१३ ०	— १ ३०	२१३ ३१	— १ २४	१० ५२	+१ ४४
	विशाखा*	ι तुला	४ ६६	२३० १८	— १ ५१	२१३ ०	— १ ३०	२१३ ३१	— १ २४	१६ ४७	—० २७
१७	अनुराधा*	δ वृश्चिक	२ ५४	२४१ ५२	— १ ५९	२२४ ०	— ३ ०	२२४ ५४	— २ ५२	१६ ५८	+० ५३
१८	ज्येष्ठा	α वृश्चिक	१ २२	२४९ ४	— ४ ३४	२२९ ०	— ४ ०	२३० ६	— ३ ५१	१८ ५८	—० ४३
१९	मूल	λ वृश्चिक	१ ७१	२६३ ५३	—१३ ४७	२४१ ०	— ९ ०	२४२ ५३	— ८ ४८	२१ ०	—४ ५९
२०	पूर्वाषाढा	δ धनु	२ ८४	२७३ ५३	— ६ २८	२५४ ०	— ५ ३०	२५४ ३९	— ५ २८	१९ १४	—१ ०
२१	उत्तराषाढा	σ धनु	२ १४	२८१ ४१	— ३ २७	२६० ०	— ५ ०	२६० २३	— ४ ४९	२१ १८	+१ ३२

क्रम संख्या	नक्षत्र-नाम	योग-तारा	श्रेणी	१९५० में भोगांश भो	१९५० में शर श	ध्रुवक (सूर्य-सि०)	विक्षेप (सूर्य-सि०)	भोगांश भो० (सू०-सि० से परिगणित)	शर श० (सू०-सि० से परिगणित)	भो — भो०	श — श०
२२	श्रवण	α गरुड	० ८९	३०१° ४'	+ २९ १८'	२८०° ०'	+ ३० ०'	२८२° ३०'	+ २९' ४'	१८°५४'	— ०°३६'
२३	धनिष्ठा	β उलूपी	३ ७२	३१५ ३९	+ ३१ ५५	२९० ०	+ ३६ ०	२९६ ८	+ ३५ ३३	१९ ३१	— ३ ३८
२४	शतभिषज	λ कुम्भ	३ ८४	३४० ५३	— ० २३	३२० ०	— ० ३०	३१९ ५१	— ० २८	२१ २	+ ० ५
२५	पूर्वा भाद्रपदा	α उच्चैःश्रवा	२ ५७	३५२ ४७	+ १९ २४	३२६ ०	+ २४ ०	३३४ ३८	+ २२ २९	१८ ९	— ३ ५
२६	उत्तराभाद्रपदा	γ उच्चैःश्रवा	२ ८७	८ २८	+ १२ ३६	३३७ ०	+ २६ ०	३४७ १९	+ २४ ०	२१ ९	— ११ २४
	उ०भाद्रपदा*	α देवयानी	२ १५	१३ ३७	+ २५ ४१	३३७ ०	+ २६ ०	३४७ १९	+ २४ ०	२६ १८	+ १ ४१
२७	रेवती	ζ मीन	५ ५७	१९ ११	— ० १३	३५९ ५०	० ०	३५९ ५	० ०	+ १९ २१	— ० १३

† प्रकाश घटता-बढ़ता है। * पहचान संदिग्ध है।

★ अन्य अध्याय

'सूर्य-सिद्धात' के नवे अध्याय का नाम है उदयास्ताधिकार। इसमे बताया गया है कि सूर्य के निकट जाने के कारण ग्रह कब अस्त और कब उदित होते है और इसकी गणना कैसे की जाय। यह भी बताया गया है कि अभिजित्, ब्रह्म-हृदय, स्वाती, श्रविष्ठा और उत्तराभाद्रपदा कभी अस्त नही होते, क्योकि वे बहुत उत्तर मे है। चद्रमा का उदय और अस्त आगामी अध्याय मे बताया गया है जिसका नाम है शृगोन्नत्यधिकार। उसमे बताया गया है कि जब चद्रमा सूर्य से १२ अश से कम दूरी पर रहता है तो अदृश्य रहता है। यह भी बताया गया है कि चद्रमा के शृगो (नोको) की स्थितियो की गणना किस प्रकार की जा सकती है। ग्यारहवे अध्याय का नाम पाताधिकार है। पात शब्द प्राय विपत्ति के अर्थ मे प्रयोग किया गया है। जब सूर्य और चद्रमा की क्रातियाँ बराबर होती है तब विशेष विपत्ति की आशका समझ कर उसे व्यतीपात (बडी विपत्ति) कहा गया है। यह भी बताया गया है कि ऐसे अवसरो की गणना कैसे करनी चाहिये, और इस अध्याय के विषयो मे से इतना ही गणित ज्योतिष से सबध रखता है।

आगामी अध्याय भूगोलाध्याय है। आरम्भ के श्लोको मे वे प्रश्न है जिनका उत्तर पुस्तक के शेष अध्यायो मे है। इन श्लोको का अर्थ नीचे दिया जाता है। एक बात विचित्र है कि इस अध्याय को अन्य अध्यायो की तरह 'अधिकार' न कह कर 'अध्याय' ही कहा गया है और आगामी दो अध्यायो को भी अध्याय कहा गया है—

(१) इसके उपरात मयासुर ने सूर्य के अश से उत्पन्न हुए पुरुष को हाथ जोडकर प्रणाम करके और बडी भक्ति से पूजा करके यह पूछा (२) हे भगवन्, इस पृथ्वी का परिमाण क्या है ? इसका आकार कैसा है और यह किसके आधार पर है ? इसके कितने विभाग है और इसमे सात पातालो की भूमि कैसे स्थित है ? (३) सूय अहोरात्र की व्यवस्था कैसे करते है और भुवनो को प्रकाशित करते हुए पृथ्वी के चारो ओर कैसे घूमते है ? (४) देवताओ और असुरो के दिन-रात एक दूसरे के विपरीत क्यो होते है और सूर्य का एक भगण (चक्कर) पूरा होने पर यह कैसे होता है ? (५) पितरो का दिन-रात एक मास का और मनुष्यो का ६० घडियो का क्यो होता है ? सब जगह एक ही प्रकार के दिन-रात क्यो नही होते ? (६) दिन, वर्ष, मास और होरा (घटा) के स्वामी समान क्यो नही होते ? ग्रहो के साथ नक्षत्र-मडल कैसे घूमता है और इसका आधार क्या है ? (७) ग्रहो और नक्षत्रो की कक्षाएँ पृथ्वी से ऊपर कितनी-कितनी ऊँचाई पर तथा

परस्पर कितने अन्तर पर हैं ? इनके मान क्या हैं और ये किस क्रम से स्थित हैं ? (८) ग्रीष्म ऋतु मे सूर्य की किरणे बहुत तीव्र क्यो होती हैं और हेमन्त ऋतु मे वैसी क्यो नही होती ? ये किरणे कितनी दूर तक जाती है, सौर, चाद्र आदि मान कितने है और इनसे क्या प्रयोजन निकलता है ? (९) हे भूतभावन भगवन्, मेरी इन शकाओ को दूर कीजिये, क्योकि आप सर्वज्ञ हैं, इसलिए आप के सिवा दूसरा मनुष्य मेरी शकाओ को नही दूर कर सकता। (१०) भक्ति से कहे हुए मयासुर के इन वचनो को सुनकर सूर्यांश पुरुष ने उससे फिर पहले के रहस्य स्वरूप दूसरा अध्याय कहा। (११) एकाग्रचित होकर यह अध्यात्म नामक तत्त्व सुनो जिसे मैं कहता हूँ, क्योकि भक्तो के लिए मै कोई वस्तु अदेय नही समझता।

इन प्रश्नो का उत्तर तो दिया ही गया है, ऊपर से पहले सृष्टि की कथा भी बतायी गयी है। यह कथा वेदात, साख्य, श्रीमद्भागवत आदि मे बताये गये सृष्टि-क्रम का मिश्रण है।[1] मयासुर के प्रश्नो का जो उत्तर दिया गया है वह स्पष्ट और शुद्ध है। उसका समझना विशेष कठिन भी नही है, परतु स्थानाभाव से यहाँ नही दिया जा सकता। केवल एक-दो श्लोक यहाँ उदाहरण-स्वरूप दे देना पर्याप्त होगा—

अन्येऽपि समसूत्रस्था मन्यन्तेऽध परस्परम्।
भद्राश्वकेतुमालस्था लकासिद्धपुराश्रिता. ॥५२॥
सर्वत्रैव महीगोले स्वस्थानमुपरिस्थितम्।
मन्यन्ते खे यतो गोलस्तस्य क्वोर्ध्वं क्व वाप्यध ॥५३॥

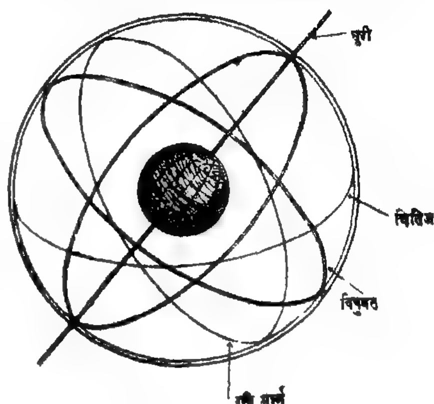
[अर्थ—वे भी जो एक ही व्यास पर रहते है एक दूसरे के बारे मे सोचते है कि दूसरा हमारे नीचे है, जैसे भद्राश्व के लोग केतुमाल वालो को, और लका के लोग सिद्धपुर वालो को, और इस भूगोल पर सब जगह लोग अपने ही स्थान को ऊपर स्थित मानते हैं, परतु पृथ्वी तो अतरिक्ष मे एक गोला है, इसलिए उसका ऊपर कहाँ है और नीचे कहाँ है ?]

★ ज्योतिषोपनिषदध्याय

'सूर्य-सिद्धान्त' के तेरहवे अध्याय का नाम ज्योतिषोपनिषदध्याय है। इसमे बताया गया है कि ज्योतिष यत्रो को कैसे बनाना चाहिये। इन यत्रो के बारे मे इतना कम ब्योरा है कि ठीक पता नही चलता कि रचयिता के काल मे भी ऐसे यत्र बन पाये थे या नही। चूँकि विषय महत्त्वपूर्ण और साथ ही रोचक है, इसलिए कुछ चुने हुए श्लोको का अर्थ नीचे दिया जाता है—

१ विज्ञान-भाष्य, पृष्ठ १०४१।

"लकडी का अभीष्ट नाप का एक गोला बनाकर इसमे छेद करके एक डडा कस देना चाहिये जो उस काठ के गोले के केन्द्र से होकर जाय और दोनो ओर निकला रहे और धुरी का काम करे। इसी दण्ड मे दो आधार-वृत्त बाँधो, जिनके बीच मे विषुवत्-वृत्त हो। इन तीनो वृत्तो मे से प्रत्येक को ३६० अशो मे बाँट दो।"



गोल बाँधने की रीति।

इसके बाद अनेक वृत्त बाँधने का आदेश है। इन वृत्तो से ज्योतिष की बाते समझने मे सहायता मिल सकती है, वेध मे नही। वस्तुत ऊपर बताये गये यत्र से वेध किया ही नही जा सकता, क्योकि बीच मे काठ के गोले के कारण (जो पृथ्वी को निरूपित करता है) वहाँ न तो आँख लगायी जा सकती है, और न किसी व्यास के अन्त मे आँख लगाकर व्यास की सीध मे कोई आकाशीय पिण्ड देखा जा सकता है। फिर इतने वृत्त इस यत्र मे बाँधने के लिए बताये गये है कि पूर्णतया मच्चा यत्र कभी बन ही न पाता रहा होगा। वृत्त किस पदार्थ का बने यह यहाँ नही बताया गया है, परन्तु अन्य पुस्तको मे बाँस की तीली के प्रयोग के लिए आदेश है।

"काठ के गोले पर अपने स्थान को सबसे ऊँचा करो, फिर खगोल के मध्य मे क्षितिज वृत्त बाँधो, नीचे वाले आधे को कपडे से ढक दो (परन्तु यह कपडा खगोल को छूने न पाये), फिर जल-प्रवाह द्वारा ऐसा प्रबन्ध करो कि (यत्र समान वेग मे बराबर घूमता रहकर) नाक्षत्र समय सूचित करे[1], अथवा इस यत्र को पारे के सयोग से ऐसा बनाओ कि यह अपने आप घूमे। इसको गुप्त रखना चाहिये, स्पष्ट बता देने से सबको भेद ज्ञात हो जायगा।"[2]

१ केवल बाहरी ढाँचे को घुमाना चाहिये, भीतरी काठ के गोले को नहीं।

२ आरम्भ की पंक्तियाँ शब्द-प्रति-शब्द अनुवाद नहीं हैं, लेखक का अभिप्राय क्या रहा होगा यह यहाँ बताया गया है।

इसे पढ़ने से सन्देह होने लगता है कि यत्र का बनाना सिद्धान्तकार स्वय नही जानता था । यदि यत्र पारे से चल सकता तो पारे से चलने वाली घडियाँ भी बन सकती, परन्तु समय नापने के लिए सरल नाडिका यत्र का ही वर्णन किया गया है, जो आगे दिया गया है ।

"शकु, यष्टि, धनु और चक्र नामक अनेक प्रकार के छाया-यत्रो के द्वारा चतुर और परिश्रमी मनुष्य गुरु के उपदेश से काल का ज्ञान प्राप्त करते है । कपाल आदि जल-यत्रो मे, और मयूर, नर तथा वानर यत्रो से जिनके पेट मे बालू रहती है और जिनमे सूत्र (तागा) रहता है, समय का ठीक ज्ञान किया जा सकता है । पारे की चक्की, पानी, तागा, रस्सी, तेल और पानी तथा पारा और बालू का इनमे प्रयोग होता है, परन्तु यह भी कठिन है ।"

"ताँबे का कटोरा, जिसके पेंदे में छेद हो और जो निर्मल जल के कुण्ड मे रखने से दिन-रात मे ६० बार डूबे, शुद्ध कपाल यत्र होता है ।"

अन्तिम श्लोक यह है ।

ग्रहनक्षत्रचरित ज्ञात्वा गोल च तत्त्वत ।
ग्रहलोकमवाप्नोति पर्यायेणात्मवान् नर ॥ २५ ॥

[अर्थ—ग्रह और नक्षत्रो की चाल तथा गोल गणित के तत्त्व को जानने वाला मनुष्य ग्रह-लोक को प्राप्त होता है और जन्मातर मे आत्मज्ञानी होता है ।]

★ अन्तिम अध्याय

'सूर्य-सिद्धान्त' के अन्तिम अध्याय का नाम है मानाध्याय । इसमे समय की विविध इकाइयो और विविध प्रकार के समयो की (उदाहरणत , सौर, सावन, चाद्र और नाक्षत्र समयो की) चर्चा है । अयन, सक्राति, उत्तरायण, दक्षिणायन, ऋतु, तिथि, पक्ष, महीनो के नाम आदि का भी विवेचन है । बताया गया है कि सावन दिन सूर्य के एक उदय से दूसरे उदय तक के समय को कहते है ।

अन्तिम दो श्लोको मे बताया गया है कि किस प्रकार ऋषियो ने मय से ज्योतिष विद्या सीखी ।

★ रचना-काल

'सूर्य-सिद्धान्त' मे ठीक ५०० श्लोक हैं और पाठ वह है जिसे रगनाथ ने स्थिर किया और जिस पर उन्होने भाष्य लिखा । कई स्थानो मे नवीन पक्तियाँ जोडे जाने के चिह्न हैं और सम्भव है कि कही-कही कुछ पक्तियाँ छोड़ भी दी गयी हो । किसी को इसमे सन्देह नही है कि प्रचलित सूर्य-सिद्धात प्राचीनतम सूर्य-सिद्धात से कुछ भिन्न है । 'पचसिद्धातिका' और वर्तमान 'सूर्य-सिद्धात' के स्थिराको

की तुलना ही इसके लिए पर्याप्त है। रगनाथ का समय १६०३ ई० है और उसके बाद सूर्य-सिद्धान्त मे क्षेपक मिलाना असम्भव हो गया। प्रोफेसर प्रबोधचद्र सेन गुप्त[1] का मत है कि सूर्य-सिद्धात मे कई विभिन्न समयो की रचनाएँ मिली हुई हैं। प्राचीनतम लगभग ४०० ई० की है और नूतनतम सम्भवत ग्यारहवीं शताब्दी के अन्त की। उनका कहना है कि निम्न तीन अवस्थाएँ स्पष्ट रूप से दिखाई पडती हैं—

(१) वराहमिहिर के पहले की पुस्तक,

(२) वराहमिहिर का सस्करण, जिसमे मन्द-परिधि का सिद्धात भी है,

(३) वराहमिहिर के बाद वाले परिवर्तन और क्षेपक।

उनके अनुसार इन अवस्थाओ के प्रमाण के लिए स्थिराको की तुलना पर्याप्त है। वराहमिहिर के बनाये सूर्य-सिद्धात के स्थिराक वे ही है जो ब्रह्मगुप्त के 'खड-खाद्यक' मे है, परन्तु आधुनिक सूर्य-सिद्धात मे महायुगीय भगणो मे निम्नलिखित परिवर्तन कर दिये गये हैं—

मगल, +८ भगण, शनि, +४ भगण, चाद्र उच्च, —१६ भगण, शुक्र, —१२ भगण, बुध, +६० भगण, चाद्र पात, +१२ भगण।

इससे स्पष्ट है कि वराहमिहिर के बाद सूर्य-सिद्धात मे परिवर्तन हुए। आधुनिक सूर्य-सिद्धात मे उच्चो के भोगाश भी ब्रह्मगुप्त के ब्राह्मस्फुट-सिद्धात के अधिक निकट है, यद्यपि प्राचीन सूर्य-सिद्धात मे ये स्थिराक खडखाद्यक से ठीक-ठीक मिलते है। इसलिए सेनगुप्त का विचार है कि (१) वराहमिहिर के पहले एक सूर्य-सिद्धात था जिसको वराह ने बदल कर खडखाद्यक के अनुसार कर दिया और (२) वराह के अको को बदल कर पीछे किसी ने ब्राह्मस्फुट-सिद्धात के अनुसार कर दिया, (३) स्थिराक ब्राह्मस्फुट-सिद्धात के स्थिराको के निकट अवश्य हैं, परन्तु ठीक-ठीक वही नही है, इसलिए किसी ने उनमे फिर सूक्ष्म सशोधन कर दिया। बेंटली का कहना है कि सूर्य-सिद्धात के ब्राह्मस्फुट-सिद्धात वाले स्थिराको मे सोलहवी शताब्दी ई० मे सशोधन (बीज-सस्कार) किया गया, क्योकि आधुनिक सूर्य-सिद्धात और आधुनिक पाश्चात्य ज्योतिष के अनुसार गणना करने पर चद्रमा, मगल आदि की स्थितियो की त्रुटियाँ लगभग १५४० मे न्यूनतम निकलती हैं।

१. 'सूर्य-सिद्धांत' के बरजेस कृत अनुवाद मे प्रबोधचन्द्र सेनगुप्त की भूमिका (कलकत्ता विश्वविद्यालय,) १९५३।

दीक्षित का मत है कि ये संस्कार मकरंद-सारणी के रचयिता द्वारा किये गये होंगे।[1]

★ बरजेस का मत

बरजेस और सेनगुप्त दोनों का मत है कि 'सूर्य-सिद्धांत' के द्वितीय अध्याय के प्रारम्भिक श्लोक, जो यह बताते हैं कि रविमार्ग मे शीघ्रोच्च, मंदोच्च और पातो पर अदृश्य प्राणी हैं जो ग्रहो के सम वेग को विचलित कर देते हैं, पुस्तक के प्राचीनतम संस्करण के अवशेष हैं। पीछे के सिद्धांत मे तो यह था कि ग्रह मंद परिधि मे चलता है और इस मंद परिधि का केन्द्र प्रधान वृत्त पर चलता है। यद्यपि यह तर्क बहुत दृढ़ नही है, क्योकि द्वितीय सिद्धांत तो केवल गणना की सुगमता के लिए कल्पना-मात्र है और वह प्रथम सिद्धांत के प्रतिकूल हो सकता है, तो भी बात ठीक हो सकती है।

सेनगुप्त ने दिखाया है कि आधुनिक 'सूर्य-सिद्धांत' की कई एक रीतियाँ प्रथम आर्यभट या ब्रह्मगुप्त की रीतियो से मिलती हैं। इसलिए उनकी धारणा है कि 'सूर्य-सिद्धांत' मे परिवर्तन ब्रह्मगुप्त के बाद तक होते रहे। चूँकि उन्होने यह सिद्ध करने की चेष्टा ही नहीं की है कि सूर्य-सिद्धांत मे इन रीतियो का पहले से रहना और दूसरो का उनकी नकल करना असम्भव है, उनकी बात विशेष जँचती नही।

फिर, 'सूर्य-सिद्धांत' के अध्याय ८ मे दिये गये योग-तारो के भोगांशो की तुलना आधुनिक मानो से तथा ब्रह्मगुप्त के मानो से करके सेनगुप्त ने यह दिखाने की चेष्टा की है कि अयन के आधार पर कहा जा सकता है कि कुछ तारो के भोगांश लगभग ४०० ई० के नपे है। सोलह भोगांश ब्रह्मगुप्त के मानो से बहुत मिलते-जुलते है, सेनगुप्त का कहना है कि वे ब्राह्मस्फुट-सिद्धांत से लिये गये होंगे, जिसका समय ६२८ ई० है, और पाँच तारो के भोगांश बाद के हैं, ये लगभग ७२० ई० के होगे। इस प्रकार सेनगुप्त इस परिणाम पर पहुँचे हैं कि सूर्य-सिद्धांत का मूल पाठ लगभग सन् ४०० ई० मे लिखा गया और उसमे ११०० ई० तक परिवर्तन होते रहे।

सेनगुप्त का कहना है कि 'सूर्य-सिद्धांत' ४०० ई० के बहुत पहले न लिखा गया होगा, क्योकि 'कौटिल्य-अर्थ-शास्त्र' (लगभग ३०० ई०पू०), 'सूर्य-प्रज्ञप्ति' (लगभग २०० ई० पू०) और पितामह-सिद्धांत (जिसका सारांश पंचसिद्धांतिका मे है और जिसकी गणना का आरंभिक वर्ष ८० ई० है) इन सबमे बहुत स्थूल ज्योतिष है।

१. दीक्षित : भारतीय ज्योतिषशास्त्र, पृष्ठ १८४।

इस प्रकार केवल १०० ई० से ४०० ई० का समय बच रहता है और इसी में बाबुल और यूनान से सूक्ष्म ज्योतिष का ज्ञान जो कुछ भी आया हो आया होगा।

जैसा हम देख चुके हैं (पृष्ठ १२८), 'सूर्य-सिद्धात' मे अयन की चर्चा है, परन्तु 'आर्यभटीय' मे, और 'ब्राह्मस्फुट-सिद्धात' (६२८ ई०) मे भी इसकी चर्चा नहीं है। 'सूर्य-सिद्धात' और 'आर्यभटीय' में इतनी समानता है कि मुनीश्वर (१६४६ ई०) का मत है कि प्रथम आर्यभट ही 'सूर्य-सिद्धात' के भी रचयिता थे। परन्तु कुछ ऐसी भिन्नताएँ भी है कि इसे ठीक मानना उचित नही जान पडता।

★ अलबीरूनी का मत

'सूर्य-सिद्धात' के बनने के कई सौ वर्ष बाद अलबीरूनी ने भारतवर्ष पर अपनी पुस्तक मे लिखा था[1] कि सूर्य-सिद्धात के रचयिता लाटदेव थे, परन्तु यह बात विश्वसनीय नही जान पडती। वराहमिहिर के अनुसार रोमक और पौलिश सिद्धातो के रचयिता लाटदेव थे। वे प्रथम आर्यभट के शिष्य थे। यदि वराहमिहिर के समय मे लोग यह जानते होते कि लाटदेव ने ही 'सूर्य सिद्धात' भी लिखा है तो निस्सदेह वराहमिहिर इसे 'पचसिद्धातिका' मे लिखते। फिर, अधिक सभावना यही थी कि लाटदेव गणना के आरभिक वर्ष के लिए अपने ही समय के आस-पास का कोई वर्ष चुनते। इसके अतिरिक्त, लाटदेव यवनपुर के सूर्यास्त से अहर्गण की गणना आरम्भ करते थे और आर्यभट अर्धरात्रि अथवा मध्याह्न से (उन्होंने दोनो पद्धतियो के अनुसार गणना बतायी है)। 'सूर्य-सिद्धात' मे उज्जयिनी की अर्धरात्रि से अहर्गण की गणना का आरभ होता है। यद्यपि इन सब बातो के होते हुए भी यह सभव है कि लाटदेव ही ने 'सूर्य-सिद्धात' को एक गुमनामी पुस्तक के रूप मे अतुल पुण्य अर्जन करने के लिए लिखा हो, तो भी इसकी सम्भावना कम ही दिखाई पडती है।

मुझे तो ऐसा जान पडता है कि आरम्भ से ही 'सूर्य-सिद्धात' ऐसा उत्तम ग्रथ था कि उसी का उपयोग अधिक होने लगा। जैसे-जैसे वेध से पता चला कि आँख से देखी बातो और गणना मे अन्तर पडता है, वैसे-वैसे ज्योतिषियो ने उसके अकों को थोडा-बहुत बदल कर उसे अधिक उपयोगी और शुद्ध बना लिया, परन्तु पुस्तक का परित्याग कभी नही किया। 'आर्यभटीय,' 'ब्राह्मस्फुट-सिद्धात' आदि ग्रथ व्यक्ति विशेष द्वारा विरचित ग्रथ थे, नामो से ही यह बात स्पष्ट है। 'सूर्य सिद्धात' भगवान् सूर्य की कही पुस्तक मानी जाती थी, सभव है इसका भी कुछ प्रभाव पडा हो।

१ अलबीरूनी का 'भारतवर्ष', साचौ अनुवादित, १।१५३।

१२

भारतीय और यवन ज्योतिष

* बरजेस का मत

कुछ पाश्चात्य विद्वानो का मत है कि भारत मे ज्योतिष का सब ज्ञान विदेश से आया, अनेक भारतीयो का विश्वास है कि ज्योतिष का ज्ञान यही से विदेश गया। प्राचीन भारत ज्योतिष मे दूसरो का कहाँ तक ऋणी था, इस विवादग्रस्त विषय पर स्वय विचार न करके श्री एबेनेजर बरजेस के विवेचन को पाठको के सम्मुख रखना मैं अधिक उत्तम समझता हूँ। ये विचार १८६० मे उन्होने 'सूर्य-सिद्धान्त' के अपने अग्रेजी अनुवाद के साथ प्रकाशित किये थे। उनके विचार अब भी वैसे ही ठीक जान पडते है जैसे वे उस समय थे। उनका कहना है—

"प्रोफेसर व्हिटनी की ऐसी सम्मति जान पडती है कि हिन्दुओ ने गणित और फलित ज्योतिष का ज्ञान प्राय कुल का कुल यवनो से प्राप्त किया—और जो कुछ उन्होने यवनो से नही पाया उन्होने दूसरो से पाया, जैसे अरब, खाल्दी और चीनी लोगो से। परन्तु मैं समझता हूँ कि हिंदुओ को वे उतना यश नही दे रहे है जितना उनका अधिकार है और यवनो को वे उचित से अधिक यश दे रहे हैं। इस विचार के उपस्थित करने के साथ-साथ मैं यह अवश्य मानता हूँ कि यवन लोगो ने पीछे, ज्योतिष-विज्ञान की उन्नति अधिक सफलता से की। हिन्दू सिद्धान्तो मे कुछ भी ऐसी वस्तु नही है जो टालमी की महान् कृति 'सिनटैक्सिस' के टक्कर की हो। तो भी, जितना प्रकाश मुझे अब मिला है उससे मुझे यह जानना आवश्यक है कि ज्योतिष की सरल बातो और सिद्धान्तो मे, जैसा हिन्दुओ की पुस्तकों मे मिलता है, हिंदू मौलिक थे, और इस विज्ञान की उन्नति मे भी वे अधिकतर मौलिक ही रहे; और यवनों ने

उनसे ज्ञान प्राप्त किया, या किसी ऐसे मध्यस्थ द्वारा उन्होंने ज्ञान प्राप्त किया जिन्हे यह ज्ञान भारत से मिला था। यदि इस विचार मे परिवर्तन करना पड़े तो मैं यहाँ तक मान सकता हूँ कि यवन और हिंदुओ ने एक दूसरे से ज्ञान संभवत न लिया हो और किसी एक ही स्थान से दोनो ने ज्ञान प्राप्त किया हो। परन्तु वर्तमान ज्ञान के आधार पर मैं इससे सहमत नही हो सकता कि हिन्दू लोग, कुछ भी अधिक मात्रा मे, अपने ज्योतिष के लिए यवनो के ऋणी हैं; अथवा यवन लोग ज्योतिष-विज्ञान के उन सरल तथ्यो और सिद्धान्तो की मौलिकता के लिए सम्मान पाने के सच्चे अधिकारी हैं जो अन्य प्राचीन पद्धतियो मे भी पाये जाते हैं, और जो इस प्रकार के है कि जान पडते है कि एक ही मूल से उत्पन्न हुए हैं और एक स्थान से दूसरे को गये हैं।

★ समानताएँ

"स्पष्टता के लिए, अच्छा होगा यदि मैं पूर्वोक्त भाँति के महत्त्वपूर्ण तथ्यो और सिद्धान्तो मे से कुछ को अधिक विशद रूप से बता दूँ। वे इस प्रकार हैं

"१ चद्रमा की गति के लिए रविमार्ग का सत्ताईस या अट्ठाईस नक्षत्रो मे बाँटा जाना। थोड़े हेर-फेर से ऐसा विभाजन हिंदुओ की, अरब वालो की और चीन वालो की पद्धतियो मे है।

"२ रवि की गति के लिए रविमार्ग का बारह राशियो मे बाँटा जाना और प्रत्येक का नाम। इन नामो का अर्थ हिंदू और यवन दोनो पद्धतियो मे एक है। इन मे ऐसी अभिन्नता है कि विभाजन-सिद्धान्त और नामकरण एक ही मूल से उत्पन्न होने की कल्पना नि सदेह ठीक है।

"३ हिंदू, यवन और अरब की फलित ज्योतिष पद्धतियो में समानता और कही-कही पूर्ण अभिन्नता से प्रबल धारणा होती है कि प्राथमिक और सारभूत बातो मे ये पद्धतियाँ एक ही मूल से उत्पन्न हुई हैं।

"४ प्राचीन लोगो को जो पाँच ग्रह ज्ञात थे उनके नाम, और उन पर सप्ताह के दिनो के नाम, एक होना।

"इन बातो के बारे मे मुझे यह कहना है

"पहली बात तो यह है कि पूर्वोक्त में से किसी भी विषय के लिए मौलिक आविष्कारक कहाने का अधिकार हिंदुओ की अपेक्षा अन्य किसी देश के लोगो का अधिक दृढ नही है।

"दूसरी बात यह है कि पूर्वोक्त मे से अधिकाश विषयो के लिए मौलिकता का साक्ष्य, मेरी सम्मति मे, स्पष्ट रूप से हिंदुओ के पक्ष में है; और कुछ के लिए जो अधिक महत्त्वपूर्ण हैं, मुझे तो साक्ष्य प्राय. या पूर्णतया अकाट्य जान पडता है।

★ हिन्दू मूल से उत्पन्न

"यहाँ ब्योरे के लिए स्थान नहीं है और न किसी विषय पर ब्योरा देना मेरा उद्देश्य है। परन्तु स्पष्टता के लिए, ऊपर के प्रत्येक विषय पर संक्षिप्त टिप्पणी देना आवश्यक जान पड़ता है।

'१ चंद्रमा की गति के लिए रविमार्ग का सत्ताईस या अट्ठाईस भागो मे विभाजन। हिंदुओ में इस विभाजन की असंदिग्ध प्राचीनता अपने पूर्ण विकसित रूप में भी, और साथ ही अन्य देशो के लोगो मे इस प्रकार के साक्ष्य का अभाव, निश्चित रूप से मुझे इस सम्मति के लिए प्रेरित करते हैं कि यह विभाजन विशुद्ध हिंदू मूल से उत्पन्न हुआ है। श्री बायो और दूसरे विद्वानो की सम्मति इसके विरुद्ध होते हुए भी मेरी यही सम्मति है।

"२ सूर्य की गति के लिए रविमार्ग का बारह भागो मे विभाजन और उन भागो के नाम। यह सिद्ध किया जा सकता है कि इस विभाजन का प्रयोग और राशियो के वर्तमान नाम भारत मे उतने ही प्राचीन काल से प्रचलित हैं, जितने से वे किसी अन्य देश मे, और इसके अतिरिक्त इसका भी साक्ष्य है—यह सच है कि यह साक्ष्य कम स्पष्ट और कम सन्तोषजनक है, तो भी इस प्रकार का है कि बहुत अधिक संभावना हो जाती है—कि अन्य देशो मे इस विभाजन का लेश-मात्र भी जब नही पाया जाता, उसके शताब्दियों पहले यह भारतवर्ष मे हिन्दुओ को ज्ञात था।

"अपने विचारो के अंशत समर्थन मे, और इस विचार के बलपूर्वक समर्थन मे कि यदि पूर्वोक्त विभाजन भारत मे नही उत्पन्न हुआ तो कम-से-कम कही पूरब मे उत्पन्न हुआ, मैं इडेलर और लेप्सियस की सम्मति को उद्धृत करना चाहता हूँ, जैसा वह हबोल्ट की पुस्तक मे दिया गया है (कॉसमॉस, हारपर का संस्करण, ३। १२०। टिप्पणी) 'इडेलर का विश्वास है कि पूरबी लोगों ने ही बारह राशियो का नाम रखा '। हबोल्ट की सम्मति है कि यवनो को रविमार्ग के बारह विभाजन और उनके नाम खाल्दियो से मिले। मेरी सम्मति है कि अधिक साक्ष्य इस बात का है कि इनकी उत्पत्ति यदि हिंदुओ मे न हुई तो कम-से-कम पूरब मे हुई।

"३ मंद-परिधियो का सिद्धान्त। इस सिद्धान्त के विकास मे यवन और हिंदू पद्धतियों मे जो अन्तर है उससे इस कल्पना के लिए कि इन दो जातियो मे से किसी एक को दूसरे से इस विषय मे संकेत मात्र से कुछ अधिक मिला, कोई स्थान नही रह जाता। और जहाँ तक इस विषय का सम्बन्ध है यवनो ने हिंदुओ से ये बाते सीखी, इसे सत्य मानने के लिए भी उतना ही कारण है जितना उलटी बात मानने के लिए, परन्तु कुछ और कारण हैं, जो इस धारणा के अनुकूल हैं कि इस सिद्धान्त के मूल आविष्कारक हिन्दू थे।

✱ फलित ज्योतिष

"४ फलित ज्योतिष के बारे मे, मेरी समझ मे, इसके आविष्कार और अनुशीलन मे अधिक सम्मान नही है। हिंदू और यवन पद्धतियो मे जो अभिन्नताएँ पायी जाती हैं वे इतनी अद्भुत हैं कि उनकी पृथक्-पृथक् उत्पत्ति की कल्पना असभव है। परतु मौलिक आविष्कार का सम्मान, यदि इसमे कोई सम्मान है भी तो, हिंदुओ और खाल्दियो मे से किसी एक को मिलना चाहिये। आविष्कार और अनुशीलन की प्रथमता का साक्ष्य, कुल मिला कर, हिंदुओ के पक्ष मे जान पडता है, तीन-चार अरबी या यवन शब्द जो हिंदू पद्धति मे आ गये है, उनका निराकरण इस कल्पना से हो जाता है कि वे अपेक्षाकृत बहुत बाद मे लिये गये। परतु होरा शब्द के सम्बन्ध मे, जो यवन शब्द *wpa* है, यवन हेरोडोटस का साक्ष्य यहाँ देना अनुचित न होगा (२।१०९)—सूर्य-घडी और शकु, तथा दिन का बारह भागो मे विभाजन यवनो ने बाबुल लोगो से पाया। इस बात के लिए बहुत-सा साक्ष्य है कि अहोरात्र का चौबीस घटो मे विभाजन, यदि भारत मे नही तो पूरब मे, यवन देश मे प्रचलित होने के पहले ही से, प्रचलित था। फिर, हिंदू ज्योतिष ग्रथो मे पाये जाने वाले उन शब्दो को जिन्हे यवन बताया जाता है, मै यह कहना चाहता हूँ कि पूर्ण औचित्य के साथ हम उस बहुसख्यक शब्दो के वर्ग मे रख सकते है[1] जो यवन

१ श्री बरजेस को यह बात ठीक नहीं जँचती। वराहमिहिर ने बारह राशियो के जो नाम अपने 'बृहज्जातक' मे दिये हैं वे मेष, वृष, मिथुन आदि के बदले क्रिय, ताबुरि, जितुम आदि है जो यवन शब्दों के भ्रष्ट रूप जान पडते है। उनका प्रचार न हो सका, उनके बदले मेष, वृष आदि नाम चले जो यवन शब्दो के अनुवाद है। नीचे यवन और वराहमिहिर द्वारा प्रयुक्त बारहो राशिनाम दिये जा रहे है, जिसमे पाठक स्वय उनकी तुलना कर सके। यद्यपि वराहमिहिर वाले शब्द सस्कृत-से जान पडते हैं, तो भी स्मरण रखना चाहिये कि उनका प्रयोग उसके पहले के किसी भी ग्रथ मे नही हुआ। दूसरी ओर इसका प्रमाण है कि यवन वालो ने बाबुल लोगो के राशिनामो का अनुवाद कर लिया और उनके देश मे इन नामों का प्रचलन ५३२ ई० पूर्व से आरम्भ हुआ (भारत सरकार की पचाग-सशोधन समिति की रिपोर्ट, पृष्ठ १९३ पर आवश्यक उद्धरण मिलेंगे)। इसलिए इसकी सभावना बहुत कम ही जान पडती है कि भारत से ये नाम ग्रीस में गये।

राशियो के यवन नाम और बृहज्जातक मे आये नाम यों हैं : क्रियॉस = क्रिय, टॉरस = ताबुरि, डिडुमाय = जितुम, कार्किनॉस = कुलीर, लियोन = लेय, पार्थेनॉस = पाथोन, जुगस = जूकः, स्कोर्पियस = कौर्प्य ; तोक्सायटस = तौक्षिक, एगोकेरस = आकोकेर, ह्युड्रोकोस = हृद्रोग; इक्थुएस = इत्थसी।

और सस्कृत भाषाओ में उपलब्ध हैं, और जो या तो एक ही मूल से दोनों भाषाओं में पहुँचे, या अति प्राचीन काल मे सस्कृत से यवन भाषा मे पहुँचे; क्योंकि, जहाँ तक मैं जानता हूँ, कोई यह नही कहता कि यह यवन भाषा सस्कृत की अनुगामी है, यद्यपि बहुत-से शब्दो मे और व्याकरण के प्रयोगो मे दोनो भाषाओ मे समानता है।

★ ग्रह

"५. ग्रहो के सबध मे मुझे यह कहना है कि हिंदू और यवन पद्धतियो मे उनकी अभिन्नता सिद्ध नहीं हो पायी है। चाहे जो हो, मेरा विचार है कि यवन ज्योतिष के वर्तमान नामो की उत्पत्ति कम-से-कम खाल्दी तक पूरब तो अवश्य हुई। हेरोडोटस ने लिखा है (२।५२) "देवताओ के नाम यवन मे मिस्र देश से आये।" ग्रहो के नाम देवताओ के नाम हैं। इन नामो की उत्पत्ति के बारे मे यवनो का विश्वास हेरोडोटस के कथन से स्पष्ट है। अन्य कारणो से उनकी उत्पत्ति, निस्सदेह रूप से, खाल्दी या उससे भी अधिक पूरब देश मे हुई दिखाई पड़ती है।

"सप्ताह के दिनो के साथ ग्रहो के नाम जुटने के सबध मे यह निश्चय करना असभव है कि उस प्रथा की उत्पत्ति कहाँ हुई। इस बारे मे प्रोफेसर एच० एच० विल्सन की राय है—और मैं उनसे पूर्णतया सहमत हूँ—कि "इस प्रथा की उत्पत्ति ठीक से निश्चित नही हो पायी है, कारण कि यवनो को यह प्रथा अज्ञात थी, और रोम-निवासी भी इसे बहुत पीछे अपना सके। साधारणत लोग इसे मिस्र और बाबुल लोगो की देन बताते है, परन्तु इसके लिए पर्याप्त प्रमाण नहीं है, और इस आविष्कार के श्रेय के अधिकारी हिंदू भी कम-मे-कम उतने ही है, जितने अन्य कही के लोग।" (जरनल, रॉयल एशियाटिक सोसायटी, ९।८४)।

★ अरब मे ज्योतिष

"ज्योतिष विज्ञान मे मौलिक आविष्कार के श्रेय के अधिकारी अरब वाले कहाँ तक है इस पर भी दो शब्द कहना आवश्यक है। वे तो स्वय स्वीकार करते है कि उन्हे यह विद्या भारत और ग्रीस से मिली। आरभ मे ही दो या तीन भारतीय ज्योतिष ग्रथ उन्होने प्राप्त कर लिये।" द्वितीय अब्बासिद खलीफा अलमसूर (७७३ ई०) के राज्यकाल मे, जैसा कि बिन-अल-अदमी की ज्योतिष सारणियो की भूमिका मे लिखा है, जो ९२० ई० मे प्रकाशित हुई थी, एक भारतीय ज्योतिषी, जो अपने विषय का पारगत विद्वान् था, खलीफा के दरबार मे आया। वह अपने साथ ग्रहो की सारणियाँ भी लाया था और चन्द्र तथा सौर ग्रहणो के वेध, और राशियो के निर्देशक भी, जो, जैसा उसने बताया, एक भारतीय राजकुमार की परिगणित सारणियों से लिये गये थे, जिसका नाम, उस अरबी लेखक के लिखने के

अनुसार, फिचर था" (कोलब्रुक हिंदू अलजेबरा, पृष्ठ ६४)। यह बात कि यवन ज्योतिष से परिचित होने के पहले वे हिंदू ज्योतिष के ज्ञान से परिपूरित थे, टालमी कृत 'सिनटैक्सिस' के अरबी अनुवाद से प्रत्यक्ष है। यह सभी जानते हैं कि इस यवन ज्योतिषी की महान् कृति की जानकारी यूरोप मे अरबी अनुवाद से ही हुई। इस अनुवाद के लैटिन अनुवाद मे आरोही पात को शिर वाला पात और अवरोही पात को पुच्छ वाला पात कहा गया है और ये शब्द हिंदू राहु और केतु के विशुद्ध अनुवाद हैं। यह बात और अन्य साक्ष्य स्पष्ट रूप से दिखाते हैं कि अरब वालो पर हिंदू ज्योतिष की गहरी छाप पडी थी। वस्तुत जान पडता है कि अरब वालो ने ज्योतिष मे कुल इतना ही किया कि वे अपने पूरबी और पच्छिमी पडोसियो से प्राप्त सामग्री को परिष्कृत कर सके।

"एक दूसरी बात की भी चर्चा करने की आवश्यकता यहाँ जान पडती है, जिससे स्वय अरब वालो का विश्वास प्रकट होता है कि विज्ञान के विषय मे हिंदुओ के वे ऋणी थे। वे अको के आविष्कार को हिंदुओ का बताते है (जिसको साधारणत सभी यूरोप वाले अरब का आविष्कार समझते है)।

"ऊपर के तथ्यो और तर्कों का, जो दिखाते है कि गणितीय तथा ज्योतिष विज्ञानो मे अरब वाले हिंदुओ के कितने ऋणी थे, स्पष्टतया इस प्रश्न से भी महत्त्वपूर्ण सबध है कि चद्रमा की गति के लिए रविमार्ग को अट्ठाईस नक्षत्रो मे विभाजित करने का आविष्कार किसने पहले किया, कम-से-कम जहाँ तक अरब वालो का इससे सपर्क है। सब बातो को ध्यान में रख कर यह मानना असभव है कि अरब के लोगो ने इसका आविष्कार किया।

★ समाप्ति

"इस लेख को मैं प्रसिद्ध प्राचीनज्ञ एच० टी० कोलब्रुक से लिये गये एक अवतरण से समाप्त करता हूँ। अपने बहुमूल्य लेख मे, जिसका शीर्षक है "विषुवो के अयन और ग्रहो की गतियो पर हिंदू ज्योतिषियो के विचार", पहले हिंदू पद्धतियो की अधिक महत्त्वपूर्ण विशेषताओ मे से कुछ को ब्योरेवार बताकर, और उसी प्रकार उनकी और यवनो की पद्धतियो मे पायी जाने वाली समताओ को भी बता कर, और इन दोनो लोगो मे उस समय मे आवागमन के साक्ष्य को भी दिखाकर, वे कहते हैं कि 'यदि इन परिस्थितियो से, और इनके अतिरिक्त ऐसी समानता से, जिसे आकस्मिक मानना कठिन है, और जो मन्द-परिधि और उत्केन्द्र वृत्तो के उपकरण से सुसज्जित हिंदू-ज्योतिष और यवन-ज्योतिष मे कई बातो में पायी जाती है कोई समझे कि ऐसा विश्वास करना उचित होगा कि हिंदुओ को यवनो से वह ज्ञान

मिला, जिससे वे ज्योतिष के अपने त्रुटिमय ज्ञान को शुद्ध और परिष्कृत कर सके, तो उनसे मतभेद के लिए मुझे कोई इच्छा न होगी" (एशियाटिक रिसर्चेज)।

"इतने विद्वान् और इतने सतर्क लेखक होते हुए भी श्री कोलब्रुक इस मत के पक्ष में कि हिंदुओं ने अपना ज्योतिष का ज्ञान यवनो से पाया है, कुल इतना ही कह सके जितना ऊपर लिखा है। इससे अधिक मैं भी कुछ नही कह सकता। रवि-मार्ग के बारह भागो में बँट जाने पर और उनके नाम पड जाने पर, मैं समझता हूँ कि केवल कुछ संकेत ही एक देश से दूसरे को पहुँच सका होगा, और वह भी बहुत प्रारंभिक काल मे, क्योंकि यदि यह माना जाय कि पीछे के समय मे हिंदुओ ने यवनो से ज्ञान प्राप्त किया तो यह दिखाई पडना ही कठिन हो जाता है कि आखिर उन्होने किस बात का ज्ञान प्राप्त किया, क्योंकि किसी बात मे न तो स्थिरांक ठीक-ठीक मिलते है और न परिणाम। और फिर, इन स्थिरांको और परिणामो मे से महत्त्वपूर्ण बातो मे–उदाहरणत, विषुव के वार्षिक अयन के मान मे, पृथ्वी के सापेक्ष सूर्य और चंद्रमा की नापो मे, सूर्य के महत्तम केन्द्र-समीकार मे—यवनो की अपेक्षा हिंदू ही अधिक शुद्ध थे, और ग्रहो के भगण-कालो मे वे प्रायः उतने ही शुद्ध थे जितने यवन। ग्रहो के नाक्षत्र भगण कालो की तुलना से स्पष्ट हो जाता है कि चार भगण-काल हिंदुओ के अधिक शुद्ध थे और टालमी के छ। प्रत्यक्ष है कि हिंदुओ और यवनो के बीच ज्योतिष ज्ञान का आदान-प्रदान बहुत ही कम हुआ है। और उन विषयो के बारे मे जहाँ सिद्ध है कि एक देश के लोगो ने दूसरे से कुछ लिया हो, मुझे इस समय जहाँ तक ज्ञान है, मेरी तो यही सम्मति हो रही है कि ज्ञान-प्राप्ति की धारा कोलब्रुक की धारणा से उलटी हो रही है—पश्चिम से पूर्व के बदले पूर्व से पश्चिम ही, और ज्योतिष मे भी मै अपना मत उसी भाषा मे प्रकट करना चाहूँगा जिसमे इस प्रकांड विद्वान् ने विचारशील दर्शन और धार्मिक व्यवस्थाओ की, विशेष कर पुनर्जन्म-सिद्धांत की, कुछ अभिन्नताओ के बारे मे, जो यवन और हिंदू पद्धतियों मे पाये जाते हैं, अपनी सम्मति दी है "मुझे इसी परिणाम पर पहुँचना उचित जान पडता है कि इस बात मे भारतीय शिक्षक थे, न कि शिष्य।" (ट्रैंजैक्शन्स, रॉयल एशियाटिक सोसायटी, १।५७९)।

यह सम्मति प्राच्य दर्शन पर कोलब्रुक की लेखनी से निकले अन्तिम निबन्ध में व्यक्त की गयी है।

१३

लाटदेव से भास्कराचार्य तक

★ लाटदेव, पाडुरग, नि शक, श्रीषेण आदि

वराहमिहिर ने 'पचसिद्धातिका' मे जिन ग्रथो का सग्रह किया है उनके नाम ये है—पौलिश, रोमक, वासिष्ठ, सौर और पैतामह सिद्धात ।[1] इनमे से पहले दो ग्रथो के व्याख्याता[2] लाटदेव बताये गये है, जिससे सिद्ध होता है कि लाटदेव सूर्य-सिद्धात के बनाने वाले नही थे, जैसा अलबरूनी ने कई सौ वर्ष पीछे विक्रम की ११वी शताब्दी मे लिखा है । यदि ऐसा होता तो वराहमिहिर अवश्य स्वीकार करते । भास्कर प्रथम के रचे 'महाभास्करीय' से तो प्रकट होता है कि लाटदेव, पाण्डुरग स्वामी नि शक आदि आर्यभट के शिष्य थे ।[3] रोमक सिद्धात निस्सदेह यवन (यूनानी) ज्योतिष के आधार पर बनाया गया था, क्योकि इसमे यवनपुर के सूर्यास्तकाल[4] से अहर्गण बनाने की रीति बतायी गयी है । यह यवनपुर वर्तमान उत्तर प्रदेश का जवनपुर नही है, वरन् सभवत एलेक्जैड्रिया (मिस्र) है जो यूनानी ज्योतिष का केद्र था । अस्त होते हुए सूर्य से अहर्गण निकालने की बात भी यही प्रकट करती है, क्योकि मुसलमानी महीने अब भी दुइज के चद्रदर्शन के समय से, अर्थात् जब सूर्यास्त होता है तब से, आरभ होते है। ब्रह्मगुप्त ने भी रोमक-सिद्धात को स्मृतिबाह्य[5] माना है । इससे यह बात और स्पष्ट हो जाती है। पाडुरग स्वामी

१ इस अध्याय की सारी बातें मेरे द्वारा सपादित 'सरल विज्ञान-सागर' नामक ग्रथ मे छपे श्री महावीर प्रसाद श्रीवास्तव के एक लेख से ली गयी हैं ।

२ पचसिद्धांतिका, १।३ । ३. प्रबोधचद्र सेनगुप्त के खण्डखाद्यक की भूमिका, पृष्ठ १९ । ४ पं० सि०, १।८ । ५ ब्रा० सि०, १।१३ ।

और निशंक के बनाये कोई ग्रंथ नही मिले है । ब्रह्मगुप्त ने श्रीषेण, विष्णुचंद्र और विजयनन्दी की चर्चा कई स्थानो पर, विशेषकर तन्त्रपरीक्षाध्याय मे की है, जिससे प्रकट होता है कि उन्होने कोई स्वतन्त्र ग्रथ नही लिखा था वरन् पुराने ग्रथों का सग्रह मात्र अथवा सशोधन मात्र किया था । ऊपर के पिछले चार ज्योतिषियों का समय वराहमिहिर के उपरान्त और ब्रह्मगुप्त के पहले, अर्थात् सवत् ५६२ से ६६५ के बीच मे, है । ब्रह्मगुप्त कहते हैं कि श्रीषेण ने लाट, वसिष्ठ, विजयनन्दी और आर्यभट के मूलाको को लेकर रोमन नामक गुदडी[1] तैयार की है और इन सबके आधार पर विष्णुचन्द्र ने वासिष्ठ नामक ग्रन्थ रचा है ।

★ भास्कर प्रथम

'महाभास्करीय' और 'लघुभास्करीय' नामक दो ग्रथो की हस्तलिखित प्रतियाँ भारत के कई पुस्तकालयो मे है, जैसे मद्रास सरकार का हस्तलिपियो वाला ग्रथालय, त्रिवेन्द्रम की पैलेस लायब्रेरी तथा क्यूरेटर्स ऑफिस लायब्रेरी । इन दोनो ग्रथो मे आर्यभट के ज्योतिष का समावेश है और इनके रचयिता भास्कर नाम के एक ज्योतिषी थे, जो 'लीलावती' के लेखक प्रसिद्ध भास्कराचार्य से भिन्न थे । इसलिए इनका नाम प्रथम भास्कर लिखना उपयुक्त होगा । लखनऊ विश्वविद्यालय के डाक्टर कृपाशकर शुक्ल ने अपनी डाक्टर की डिगरी के लिए भास्कर प्रथम पर विशेष अनुसधान किया है । उनके अनुसार भास्कर प्रथम ने एक तीसरा ग्रथ भी लिखा है जो 'आर्यभटीय' की टीका है, और जिसका नाम ग्रथकार ने 'आर्यभटतन्त्र-भाष्य' रखा है । इस टीका मे लेखक ने दिनाक भी डाल दिया है, जिसके अनुसार यह टीका सन् ६२९ ई० मे लिखी गयी थी । इस टीका की एक प्रति त्रिवेन्द्रम मे है और एक इडिया ऑफिस लायब्रेरी, लदन मे । टीका बहुत विस्तृत और विशद है । भास्कराचार्य प्रथम आर्यभट प्रथम की शिष्यपरपरा मे थे और इनका जन्म-स्थान अश्मक मे था, जो नर्मदा और गोदावरी के बीच मे था । इनके दोनो प्रधान ग्रथो (महाभास्करीय और लघुभास्करीय) का उपयोग लगभग पद्रहवी शताब्दी ई० के अत तक दक्षिण भारत मे होता रहा । इनके दोनो ग्रथो मे गणना कलियुग के आरभ से की गयी है ।

★ कल्याण वर्मा

प० सुधाकर द्विवेदी के अनुसार[2] इनका समय शक ५०० के लगभग है । इन्होने 'सारावली' नामक जातकशास्त्र की रचना वराहमिहिर के बृहज्जातक से

१ ब्रा० स्फु० सि०, ११।४८-५१ । २. गणकतरंगिणी, पृष्ठ १६ ।

बड़े आकार मे की है और स्पष्ट लिखा है कि वराहमिहिर, यवन और नरेन्द्र रचित होराशास्त्र के सार को लेकर सारावली नामक ग्रंथ की रचना की गयी है। इसमे ४२ अध्याय है। इस पुस्तक की चर्चा भटोत्पल ने की है। शंकर बालकृष्ण दीक्षित[1] के मत से इनका समय ८२१ शक के लगभग है।

★ ब्रह्मगुप्त

ब्रह्मगुप्त गणित-ज्योतिष के बहुत बड़े आचार्य हो गये हैं। प्रसिद्ध भास्कराचार्य ने इनको गणकचक्रचूडामणि कहा है और इनके मूलाको को[2] अपने 'सिद्धांत-शिरोमणि' का आधार माना है। इनके ग्रथो का अनुवाद अरबी भाषा मे भी कराया गया था, जिन्हें अरबी मे 'अल् सिन्द हिन्द' और 'अल् अर्कन्द' कहते हैं। पहली पुस्तक 'ब्राह्मस्फुट-सिद्धात' का अनुवाद है और दूसरी 'खण्डखाद्यक' का। इनका जन्म शक ५१८ (६५३ वि०) मे हुआ था और इन्होने शक ५५० (६८५ वि०) मे 'ब्राह्मस्फुट-सिद्धात' की रचना[3] की थी। इन्होने स्थान-स्थान पर लिखा है कि आर्यभट, श्रीषेण, विष्णुचन्द्र आदि की गणना से ग्रहो का स्पष्ट स्थान शुद्ध नही आता, इसलिए वे त्याज्य है, और 'ब्राह्मस्फुट-सिद्धात' मे दृग्गणितैक्य[4] होता है, इसलिए वही मानना चाहिये। इससे सिद्ध होता है कि ब्रह्मगुप्त ने 'ब्राह्मस्फुट-सिद्धात' की रचना ग्रहो का प्रत्यक्ष वेध कर के की थी और वे इस बात की आवश्यकता समझते थे कि जब कभी गणना और वेध मे अन्तर पडने लगे तो वेध के द्वारा गणना शुद्ध कर लेनी चाहिये। यह पहले आचार्य थे जिन्होने गणित ज्योतिष की रचना विशेष क्रम से की, और ज्योतिष और गणित के विषयो को अलग-अलग अध्यायो मे बाँटा।

★ ब्राह्मस्फुट-सिद्धात

'ब्राह्मस्फुट-सिद्धात' के अध्यायो का ब्योरा नीचे दिया जाता है—

१—मध्यमाधिकार मे ग्रहो की मध्यम गति की गणना है।

२—स्पष्टाधिकार मे स्पष्ट गति जानने की रीति बतायी गयी है। इसी अध्याय मे ज्या निकालने की रीति भी बतायी गयी है, जिसमे त्रिज्या का मान ३२७० कला माना गया है, यद्यपि आर्यभट ने ३४३८ कला माना था और उसी

१ भारतीय ज्योतिषशास्त्र, पृ०४८६। २ सिद्धांत-शिरोमणि, मध्यमाध्याय। ३ संज्ञाध्याय, ७, ८। ४ तन्त्रभ्रंशे प्रतिदिनमेव विज्ञाय धीमता यत्नः। कार्यस्तस्मिन् यस्मिन् दृग्गणितैक्यं सदा भवति ॥६०॥ तंत्रपरीक्षाध्याय।

को सूर्यसिद्धांत ने भी माना था और पीछे सिद्धांत-शिरोमणि आदि ग्रंथों मे भी स्वीकार किया गया ।

३—त्रिप्रश्नाधिकार मे ज्योतिष के तीन मुख्य विषयो (दिशा, देश और काल) के जानने की रीति है ।

४—चन्द्रग्रहणाधिकार मे चन्द्रग्रहण की गणना करने की रीति है ।

५—सूर्यग्रहणाधिकार मे सूर्यग्रहण की गणना करने की रीति है ।

६—उदयास्ताधिकार मे बताया गया है कि चन्द्रमा, मगल, बुध, गुरु, शुक्र और शनि ये सूर्य के कितने पास आने पर अस्त हो जाते हैं, अर्थात् अदृश्य हो जाते है, और कितनी दूर होने से उदय होते हैं, अर्थात् दिखाई पड़ने लगते हैं ।

७—चन्द्रशृङ्गोन्नत्यधिकार मे बताया गया है कि शुक्लपक्ष की दुइज के दिन जब चन्द्रमा सन्ध्या मे पहले-पहल दिखाई पड़ता है तब उसकी कौन-सी नोक उठी रहती है ।

८—चन्द्रच्छायाधिकार मे उदय और अस्त होते हुए चन्द्रमा के वेध से छाया आदि का ज्ञान करने की रीति है । अन्य ग्रथो मे इसके लिए कोई अलग अध्याय नही है ।

९—ग्रहयुत्यधिकार मे बताया गया है कि ग्रह एक दूसरे के पास कब आ जाते है और इनकी युति की गणना कैसे की जाती है ।

१०—भग्रहयुत्यधिकार मे बताया गया है कि नक्षत्रो या तारो के साथ ग्रहो की युति कब होती है और इसकी गणना कैसे की जाती है। इसी अध्याय मे नक्षत्रो के ध्रुवीय भोगाश और शर[1] भी दिये गये है और नक्षत्रो की पूरी सूची है । ज्योतिष-गणित सम्बन्धी ये दस अध्याय मुख्य है ।

११—तत्रपरीक्षाध्याय मे ब्रह्मगुप्त ने पहले के आर्यभट, श्रीषेण, विष्णुचन्द्र आदि की पुस्तको का खण्डन बड़े कड़े शब्दो मे किया है, जो एक प्रकार से ज्योतिषियो की परिपाटी-सी है, परन्तु इससे यह बात सिद्ध होती है कि उस प्राचीन काल मे भी ज्योतिषी वेध-सिद्ध शुद्ध गणना के पक्ष मे थे । वे पुरानी लकीर के फकीर नहीं रहना चाहते थे ।

१२—गणिताध्याय शुद्ध गणित के सम्बन्ध में है । इसमे जोड़ना, घटाना, गुणा, भाग, वर्ग, वर्गमूल, घन, घनमूल, भिन्नो का जोड़ना, घटाना आदि, त्रैराशिक, व्यस्त-त्रैराशिक, भाण्ड प्रतिभाण्ड (बदले के प्रश्न), मिश्रक व्यवहार आदि अक-

१. अर्थात् ध्रुवक और विक्षेप; पृष्ठ १५० देखें ।

गणित या पाटीगणित के विषय हैं। श्रेढ़ी व्यवहार (समांतर श्रेढ़ी), क्षेत्र व्यवहार (त्रिभुज, चतुर्भुज आदि के क्षेत्रफल जानने की रीति), वृत्त-क्षेत्र गणित, खात व्यवहार (खाई आदि का घनफल जानने की रीति), चिति व्यवहार (ढालू खाई का घनफल जानने की रीति), क्राकचिक व्यवहार (आरा चलाने वाले के काम का गणित), राशि व्यवहार (अन्न के ढेर का परिमाण जानने की रीति), छाया व्यवहार (दीपस्तम्भ और उसकी छाया के संबध के अनेक प्रश्न करने की रीति। आदि २८ प्रकार के कर्म इसी अध्याय के अन्तर्गत हैं। इसके आगे प्रश्नोत्तर के रूप मे पीछे के अध्यायो मे बतायी हुई बातो का अभ्यास करने के लिए कई अध्याय है।

१३—मध्यगति-उत्तराध्याय मे ग्रहो की मध्यगति सम्बन्धी प्रश्न और उत्तर हैं।

१४—स्फुटगति-उत्तराध्याय मे ग्रहो की स्पष्टगति सम्बन्धी प्रश्न और उत्तर है।

१५—त्रिप्रश्नोत्तराध्याय मे त्रिप्रश्नाध्याय सम्बन्धी प्रश्नोत्तर है।

१६—ग्रहणोत्तराध्याय मे सूर्य-चन्द्रमा के ग्रहण सम्बन्धी प्रश्नोत्तर है।

१७—शृङ्गोन्नत्युत्तराध्याय मे चद्रमा की शृङ्गोन्नति सम्बन्धी प्रश्नोत्तर है।

१८—कुट्टकाध्याय मे कुट्टक की विधि से प्रश्नो का उत्तर जानने की रीति है। इस अध्याय मे ब्रह्मगुप्त ने प्रत्येक प्रकार के कुट्टक की रीति बतायी है और दिखाया है कि इससे ग्रहो के भगण आदि के काल कैसे जाने जा सकते है। इस अध्याय का अंग्रेजी अनुवाद कोलब्रुक ने किया है। इस अध्याय के अन्तर्गत कई खण्ड है। एक खड मे धन, ऋण और शून्य का जोड, बाकी, गुणा, भाग, करणी[१] का जोड, बाकी, गुणा, भाग आदि करने की रीति है। दूसरे खड मे एकवर्ण समीकरण, वर्ग समीकरण, अनेक वर्ण समीकरण आदि बीजगणित के प्रश्न है। तीसरा खड बीजगणित सबधी भावित बीज नामक है। चौथा खड वर्गप्रकृति नामक है। पाँचवें खड मे अनेक उदाहरण दिये गये हैं। इस प्रकार यह अध्याय १०३ श्लोको मे पूर्ण मे होता है।

१९—शकुच्छायादि ज्ञानाध्याय मे छाया से समय या किसी वस्तु की ऊँचाई आदि जानने की रीति बतायी गयी है। यह त्रिकोणमिति से सबध रखता है।

१ $\sqrt{२}$, $\sqrt{१५}$ ", अर्थात् ऐसी राशियाँ जिनमें वर्गमूल, घनमूल आदि निकालना पड़े, करणी अथवा करणीगत सख्याएं कहलाती हैं।

२०—छदश्चित्युत्तराध्याय मे १९ श्लोक हैं जिनका अर्थ इतना दुरूह है कि समझ में नहीं आता।

२१—गोलाध्याय मे भूगोल और खगोल सबधी कुछ गणना है। इसमे भी कई खड हैं—ज्या प्रकरण, स्फुटगतिवासना, ग्रहणवासना, गोलबन्धाधिकार। इनमे भूगोल तथा खगोल सबंधी परिभाषाएँ और ग्रहो के बिम्बो के व्यास आदि जानने की रीति है।

२२—यत्राध्याय मे ५७ श्लोक हैं; इनमे अनेक प्रकार के यत्रो का वर्णन किया गया है जिनसे समय का ज्ञान होता है और ग्रहो के उन्नताश, नताश आदि जाने जाते हैं। यहीं उस यत्र की भी चर्चा है जो पारे की सहायता से अपने आप चलता कहा गया है।

२३—मानाध्याय नामक छोटे-से अध्याय मे सौर, चांद्र, सावन आदि नव मानो की चर्चा है।

२४—सज्ञाध्याय मे कई महत्त्व की बातें बतायी गयी हैं। पहले बताया गया है कि सूर्य, सोम, पुलिस, रोमक, वाशिष्ठ और यवन सिद्धातो मे एक ही सिद्धात का प्रतिपादन किया गया है। यदि कुछ भेद है तो वैसे ही जैसे सूर्य की सक्रांति स्थान-भेद के कारण भिन्न-भिन्न कालो मे कही जाती है। इससे पता चलता है कि ब्रह्मगुप्त के समय उपर्युक्त सिद्धात प्रचलित हो गये थे और सब मे प्राय एक ही सी बात थी। फिर, ब्राह्मस्फुट-सिद्धात के २४ अध्यायो की सूची दी गयी है। इसके बाद बताया गया है कि चापवश-तिलक व्याघ्रमुख नामक राजा के समय मे ५५० शक में विष्णुसुत ब्रह्मगुप्त ने ३२ वर्ष की अवस्था मे गणितज्ञो और गोलज्ञो की प्रसन्नता के लिए यह ग्रथ रचा। एक श्लोक मे बताया गया है कि ७२ आर्या छन्दो का ध्यानग्रहोपदेशाध्याय ब्राह्मस्फुट-सिद्धात में, जिसके २४ अध्यायो में कुल १००८ आर्या छन्द हैं, नहीं जोडा गया है। यह भी याद रखना चाहिये कि प्रत्येक अध्याय के अन्त में यह बताया गया है कि उसमें कितने छन्द हैं।

ध्यानग्रहोपदेशाध्याय मे तिथि, नक्षत्र आदि की गणना करने की सरल रीति बतायी गयी है।

इस विवरण से स्पष्ट हो जाता है कि ब्रह्मगुप्त ने ज्योतिष सम्बन्धी बातों के सिवा बीजगणित, अकगणित, क्षेत्रमिति आदि पर भी पर्याप्त ऊँची बातें आज से १३०० वर्ष पहले लिखी थीं और वे उसी गणना को ठीक मानते थे जो वेध से भी ठीक उतरती थी।

युत्यधिकार, भग्रहयुत्यधिकार, महापाताधिकार और उत्तराधिकार, नामक १३ अध्याय हैं। गोलाध्याय मे छेद्यकाधिकार, गोलबन्धाधिकार, मध्यगतिवासना, भूगोलाध्याय, ग्रहभ्रम-संस्थाध्याय, भुवनकोश, मिथ्याज्ञानाध्याय, यंत्राध्याय और प्रश्नाध्याय हैं।

इन अध्यायो के नाम से भी प्रकट होता है कि यह पुस्तक ब्राह्मस्फुट-सिद्धांत के पश्चात् लिखी गयी है और ज्योतिष सम्बन्धी जिन बातो की कमी ब्राह्म-स्फुट सिद्धांत मे थी, वह यहाँ पूरी की गयी है। शुद्ध गणित, अकगणित या बीजगणित सबधी कोई अध्याय इसमे नही है जिससे प्रकट होता है कि ब्रह्मगुप्त के बाद जब ज्योतिष और गणित सबधी विकास बहुत बढ गया तब, इन दोनो शाखाओ को अलग-अलग विस्तार के साथ लिखने की परिपाटी चली, किसी ने शुद्ध गणित पर विस्तार के साथ लिखना आरभ किया, जैसे श्रीधर और महावीर ने, और किसी ने केवल ज्योतिष पर, जैसे लल्ल, पृथूदक स्वामी, भटोत्पल आदि। यह आश्चर्यजनक है कि आर्यभट के सिवा किसी अन्य प्राचीन आचार्य का नाम शिष्यधीवृद्धिद मे नही आया है।

★ रत्नकोष

शकर बालकृष्ण दीक्षित[1] लिखते हैं कि 'रत्नकोष' नाम का एक मुहूर्त ग्रथ लल्ल का रचा हुआ है। इसका अनुमान प० सुधाकर द्विवेदी अपनी 'गणकतरंगिणी' मे भी करते हैं, क्योकि 'मुहूर्तचितामणि' की पीयूषधारा टीका मे लल्ल के मत की चर्चा है, परन्तु यह पुस्तक सुधाकर द्विवेदी के देखने मे नही आयी थी, न आधुनिक समय मे और कही किसी के देखने मे आयी है।

पाटीगणित (अकगणित) और बीजगणित की कोई पुस्तक भी लल्ल की बनायी हुई थी, ऐसा सुधाकर द्विवेदी अनुमान करते हैं, परन्तु यह पुस्तक भी अब उपलब्ध नही है। सब बातो का विचार करने से प्रकट होता है कि लल्ल एक विद्वान् ज्योतिषी थे और आकाश के निरीक्षण के द्वारा ग्रहो को स्पष्ट करने की आवश्यकता समझते थे।

★ पद्मनाभ

पद्मनाभ बीजगणित के आचार्य थे जिनके ग्रथ का उल्लेख भास्कराचार्य ने अपने बीजगणित मे किया है, परन्तु इनके समय का पता किसी ने नही दिया है। डा० दत्त

१. भारतीय ज्योतिषशास्त्र, पृष्ठ २१७।

और सिंह[1] लिखते हैं कि इनका बीजगणित कही नही मिलता। शकर बालकृष्ण दीक्षित[2] लिखते हैं कि कोलब्रुक के मतानुसार इनका काल श्रीधर से पहले का है, इसलिए ७०० शक के लगभग ठहरता है।

सुधाकर द्विवेदी 'गणकतरगिणी' मे 'व्यवहारप्रदीप' नामक ज्योतिष ग्रन्थ के कर्ता पद्मनाभ मिश्र का वर्णन करते हैं, परतु वे इनसे भिन्न हैं। सुधाकर द्विवेदी ने निश्चयपूर्वक नही कहा है कि दोनो एक ही है या भिन्न।

★ श्रीधर

श्रीधर भी बीजगणित के आचार्य थे, जिनका उल्लेख भास्कराचार्य ने 'बीजगणित' मे कई जगह किया है। डा० दत्त और सिंह के मत से इनका समय ७५० ई० के लगभग है, जो ६७२ शक के लगभग ठहरता है। इनकी पुस्तक का नाम 'त्रिशतिका' है जिसकी एक प्रति 'गणकतरगिणी'[3] के अनुसार काशी के राजकीय पुस्तकालय मे और एक प्रति प० सुधाकर द्विवेदी के मित्र राजाजी ज्योतिर्विद के पास थी। इसमे ३०० श्लोक हैं, जिसके एक श्लोक से विदित होता है कि यह श्रीधर के किसी बडे ग्रन्थ का सार है। यह प्रधानत पाटीगणित की पुस्तक है जिसमे श्रेढी व्यवहार, क्षेत्र व्यवहार, खात व्यवहार, चिति व्यवहार, राशि व्यवहार, छाया व्यवहार आदि पर विचार किया गया है। सुधाकर द्विवेदी का मत है कि 'न्याय-कन्दली' नामक ग्रन्थ के रचयिता भी यही श्रीधर हैं। उस ग्रथ की रचना ९१३ शक मे की गयी थी, इसलिए श्रीधर का समय भी यही है। परतु यह ठीक नही है, क्योकि इस मत का समर्थन न तो दीक्षित करते हैं और न डा० दत्त और सिंह। दीक्षित[4] कहते हैं कि महावीर के 'गणितसारसग्रह' नामक ग्रथ मे श्रीधर के 'मिश्रकव्यवहार' के कुछ वाक्य आये हैं, जिनसे प्रकट होता है कि श्रीधर महावीर के पहले हुए है और महावीर का समय दीक्षित के मत[5] से ७७५ शक तथा डा० दत्त और सिंह के मत[6] से ८५० ई० या ७७२ शक होता है।

★ महावीर

महावीर बीजगणित के प्रसिद्ध आचार्य हो गये है, जिनके ग्रथ 'गणितसारसग्रह' के अनेक अवतरण डा० दत्त और सिंह ने अपने 'हिंदूगणित के इतिहास' मे

१ हिस्ट्री आव हिन्दू मैथमैटिक्स, भाग २, पृष्ठ १२ की पादटिप्पणी।
२. भारतीय ज्योतिषशास्त्र, पृष्ठ २२९। ३ गणक-तरंगिणी, पृष्ठ २२।
४ भारतीय ज्योतिषशास्त्र, पृष्ठ २३०।
५. भारतीय ज्योतिषशास्त्र, पृष्ठ २३०।
६. हिस्ट्री आव हिंदू मैथिमैटिक्स, भाग २, पृष्ठ २०।

दिये हैं। इनका समय ८५०ई० अथवा ७७२ शक कहा जाता है। यह जैनधर्मी थे और जैनधर्म राजा अमोघवर्ष के आश्रय मे रहते थे। राष्ट्रकूट वश के राजा अमोघवर्ष ७७५ शक के लगभग थे, इसलिए यही इनका समय समझना चाहिये। दीक्षित के अनुसार 'गणितसारसग्रह' भास्कराचार्य की 'लीलावती' के सदृश है, परन्तु विस्तार मे उससे बडा है। 'गणक-तरगिणी' मे इनकी कही चर्चा नही है।

★ आर्यभट द्वितीय

आर्यभट द्वितीय गणित और ज्योतिष दोनो विषयो के अच्छे आचार्य थे। उनका बनाया हुआ 'महासिद्धात' ग्रथ ज्योतिष सिद्धात का अच्छा ग्रथ है। इन्होने भी अपना समय कही नही लिखा है। डा० दत्त और सिंह का मत[1] है कि ये ९५० ई० के लगभग थे, जो शककाल ८७२ होता है। दीक्षित भी इनका समय लगभग ८७५ शक बताते हैं, इसलिए यही समय ठीक समझना चाहिये। 'गणक-तरगिणी' मे इनकी चर्चा तक नही है, यद्यपि सुधाकर द्विवेदी ने इनके 'महासिद्धात' का स्वय सम्पादन किया है। सुधाकर द्विवेदी इसकी भूमिका मे केवल इतना लिखते हैं कि भास्कराचार्य ने दृक्काणोदय के लिए जिस आर्यभट की चर्चा की है वह आर्यभट प्रथम नही हो सकते, क्योकि उनके ग्रथ आर्यभटीय मे दृक्काणोदय की गणना नही है, परन्तु 'महासिद्धात' मे है, इसलिए महासिद्धात के रचयिता आर्यभट दूसरे हैं जो भास्कराचार्य से पहले के हैं। यही बात दीक्षित भी लिखते हैं। परतु यह ब्रह्मगुप्त के पीछे हुए हैं, क्योकि ब्रह्मगुप्त ने आर्यभट की जिन बातो का खण्डन किया है वे 'आर्यभटीय' से मिलती है, 'महासिद्धात' से नही। महासिद्धात से तो प्रकट होता है कि ब्रह्मगुप्त ने आर्यभट की जिन-जिन बातो का खण्डन किया है वे इसमे सुधार दी गयी हैं। कुट्टक की विधि मे भी आर्यभट प्रथम, भास्कर प्रथम तथा ब्रह्मगुप्त की विधियो से कुछ उन्नति दिखाई पडती है, इसलिए इसमे सदेह नही है कि आर्यभट द्वितीय ब्रह्मगुप्त के बाद हुए हैं।

ब्रह्मगुप्त और लल्ल ने अयन-चलन के सबध मे कोई चर्चा नही की है, परतु आर्यभट द्वितीय ने इस पर बहुत विचार किया है। मध्यमाध्याय के श्लोक ११-१२ मे उन्होने अयनबिन्दु को ग्रह मानकर इसके कल्पभगण की सख्या ५७८१५९ लिखी है, जिससे अयनबिन्दु की वार्षिक गति १७३ विकला होती है, जो बहुत ही अशुद्ध है। स्पष्टाधिकार मे स्पष्ट अयनाश जानने के लिए जो रीति बतायी गयी है उससे प्रकट होता है कि इसके अनुसार अयनाश २४ अश से अधिक नही हो सकता

१. हिस्ट्री आव हिंदू मैथिमैटिक्स, भाग २, पृष्ठ ८९।

और अयन की वार्षिक गति भी सदा एक-सी नही रहती, कभी घटते-घटते शून्य हो जाती है और कभी बढते-बढते १७३ विकला हो जाती है। इससे सिद्ध होता है कि आर्यभट द्वितीय का समय वह था जब अयनगति के सबध मे हमारे सिद्धांतों मे कोई निश्चय नही हुआ था। मुजाल के 'लघुमानस' मे अयन-चलन के सबंध मे स्पष्ट उल्लेख है, जिसके अनुसार एक कल्प मे अयनभगण १९९६६९ होता है, जो वर्ष मे ५९.९ विकला होता है। मुजाल का समय ८५४ शक है, इसलिए आर्यभट द्वितीय का समय इससे भी कुछ पहले होना चाहिये। महावीर प्रसाद श्रीवास्तव के मत से इनका समय ८०० शक के लगभग होना चाहिये।

इन्होने लिखा है[1] कि इनका सिद्धात और पराशर का सिद्धांत दोनो एक साथ कलियुग के आरभ से कुछ वर्षों के बाद लिखे गये थे और इनकी ग्रह-गणना ऐसी है कि वेध से भी शुद्ध उतरती है। परतु यह कोरी कल्पना है, क्योकि वराह-मिहिर, ब्रह्मगुप्त, लल्ल आदि किसी आचार्य ने इनकी पुस्तक की कोई चर्चा नही की है। इन्होने सप्तर्षि की चाल के सबंध मे भी वैसा ही लिखा है जैसा वराहमिहिर लिखते हैं जिससे जान पडता है कि सप्तर्षि १०० वर्ष मे एक नक्षत्र चलते है। परतु यह भी कोरी कल्पना है। सप्तर्षि मे ऐसी कोई गति नही है।

★ सख्या लिखने की नवीन पद्धति

इनकी पुस्तक मे सख्या लिखने के लिए एक नवीन पद्धति बतायी गयी है, जो आर्यभट प्रथम की पद्धति से भिन्न है। इसे 'कटपयादि' पद्धति कहते है, क्योकि १ के लिए क, ट, प, य अक्षर प्रयुक्त होते है, २ के लिए ख, ठ, फ, र, आदि। शून्य के लिए केवल ञ और न प्रयुक्त होते है।[2] सख्या लिखने के लिए अक्षरो को बायें से क्रमानुसार लिखते हैं, ठीक वैसे ही जैसे अको से सख्याएँ लिखी जाती हैं। स्वर या उसकी मात्राओ का इस पद्धति मे कोई मूल्य नही है। मात्राओ के जोडने से भी अक्षरो का वही अर्थ होता है जो बिना मात्रा के। वे केवल उच्चारण की सुविधा के लिए जोड दी जाती है। इस प्रकार क, का, कि, कू आदि से १ अक का ही बोध होता है। यह रीति आर्यभट प्रथम की रीति से सुगम है, क्योकि याद रखने का काम बहुत कम है। सक्षेप में यह रीति इस प्रकार है—

१. एतत्सिद्धान्तद्वयमीषद्याते कलौ युगे जातम्।
स्वस्थानेक्यतुल्या अनेन खेटाः स्फुटाः कार्याः ॥२॥ पराशरमताध्याय

२. रूपात् कटपयपूर्वा वर्णा वर्णक्रमाद्भवन्त्यङ्काः।
ञनौ शून्यं प्रथमार्थे आ छेदे ऐ तृतीयार्थे ॥२॥ —मध्यमाध्याय

क, ट, प, य = १
ख, ठ, फ, र = २
ग, ड, ब, ल = ३
घ, ढ, भ, व = ४
ङ, ण, म, श = ५
च, त, ष = ६
छ, थ, स = ७
ज, द, = ८
झ, ध = ९
ञ, न = ०

इस पद्धति के अनुसार आर्यभट प्रथम के उदाहरण मे दिये गये एक कल्प मे सूर्य और चद्रमा के भगण इस प्रकार लिखे जायँगे –

१ कल्प मे सूर्य के भगण = घडफेननेननननुनीना
= ४३२००००००००,

और १ कल्प मे चद्रमा के भगण = मथथमगग्लभननुना
= ५७७५३३३४००० ।

इस प्रकार यह प्रकट होता है कि यह पद्धति लिखने और याद रखने के लिए सुगम है ।

इस ग्रथ मे १८ अधिकार है और लगभग ६२५ आर्या छन्द हैं । पहले १३ अध्यायो के नाम वे ही है जो 'सूर्य-सिद्धात' या 'ब्राह्मस्फुट सिद्धात' के ज्योतिष सबधी अध्यायो के हैं, केवल दूसरे अध्याय का नाम है–'पराशरमताध्याय'। १४ वे अध्याय का नाम 'गोलाध्याय' है, जिसमे ११ श्लोको तक पाटीगणित या अकगणित के प्रश्न हैं। इसके आगे के ३ श्लोको मे भूगोल के प्रश्न हैं और शेष ४३ श्लोको मे अहर्गण और ग्रहो की मध्यम गति के सम्बन्ध मे प्रश्न हैं । १५ वे अध्याय मे १२० आर्या छद है, जिनमे पाटीगणित, क्षेत्रफल, घनफल आदि विषय हैं । १६ वे अध्याय का नाम 'भुवनकोष-प्रश्नोत्तर' है जिसमे खगोल, स्वर्गादि लोक, भूगोल आदि का वर्णन है । १७ वाँ प्रश्नोत्तराध्याय है जिसमे ग्रहों की मध्यगति सबधी प्रश्न है । १८ वें अध्याय का नाम कुट्टकाध्याय है जिसमे कुट्टक सबधी प्रश्नो पर 'ब्राह्मस्फुट सिद्धात' की अपेक्षा कही अधिक विचार किया गया है। इससे भी प्रकट होता है कि आर्यभट द्वितीय ब्रह्मगुप्त के पश्चात् हुए हैं ।

★ मुंजाल या मंजुल

मुंजाल का समय प० सुधाकर द्विवेदी ने 'गणक-तरंगिणी' के पृष्ठ १९-२० पर कोलब्रुक के मतानुसार भ्रमवश ५८४ शक लिख दिया है जो होना चाहिये ८५४, क्योंकि इन्होने अपने 'लघुमानस' नामक ग्रंथ मे ग्रहों का ध्रुवकाल ८५४ शक बताया है, जिसको द्विवेदी जी भी उद्धृत करते है, "कृतेष्विभमिते, शाके ८५४ मध्याह्ने रविवासरे चैत्रादौ ध्रुवकान् वक्ष्ये रविचन्द्रेन्दुतुङ्गजान् ।" इस समय की सचाई इनके अयन-चलन सबंधी बातो से भी सिद्ध होती है। भास्कराचार्य द्वितीय ने[1] मुंजाल की बतायी अयन गति लिखी है। मुनीश्वर ने अपनी मरीचि नामक टीका मे मुंजाल के वचन[2] उद्धृत किये हैं, जिनसे सिद्ध होता है कि मुंजाल के अनुसार एक कल्प मे अयन के १९९६६९ भगण होते हैं; इससे अयन की वार्षिक गति १ कला के लगभग आती है, जो प्राय ठीक है। अलबीरूनी के अनुसार इस पुस्तक मे यह भी लिखा था कि उस समय अयनाश ६°५०' था। इसलिए यह निश्चित है कि मुंजाल का समय ८५४ शक या ९३२ ई० है।

मुंजाल एक अच्छे ज्योतिषी थे, इसमे सन्देह नही। तारो का निरीक्षण कर के नयी बाते निकालने का श्रेय इनको मिलना चाहिये। इनके पहले अयन-गति के सबध मे किसी पौरुष सिद्धात-ग्रथ मे कोई चर्चा नही है। दूसरी महत्त्व की बात इनकी चद्र-सम्बन्धी है। इनके पहले किसी भारतीय ज्योतिषी ने नही लिखा था कि चन्द्रमा मे मन्दफल सस्कार के सिवा और कोई सस्कार भी करना चाहिये परन्तु इन्होने यह स्पष्ट लिखा है, इसकी चर्चा सुधाकर द्विवेदी[3] ने भी की है।

'लघुमानस' मुंजाल का लिखा ग्रथ है, जिसमे ज्योतिष-सबधी आठ अधिकार हैं। यह 'बृहन्मानस' नामक ग्रथ का सक्षिप्त रूप है, जैसा अलबीरूनी लिखते हैं। 'बृहन्मानस' के कर्त्ता कोई मनु हैं, इस ग्रंथ की टीका उत्पल ने लिखी है, इसलिए इसका समय ८०० शक के लगभग है।

★ उत्पल

उत्पल या भट्टोत्पल ज्योतिष ग्रथो के बडे भारी टीकाकार थे। 'बृहज्जातक' की टीका मे इन्होने लिखा है कि ८८८ शक (९६६ ई०) के चैत्र शुक्ल ५ गुरुवार

१ गोलबन्धाधिकार १८। २. तद्भगणाः कल्पे स्युर्गोरसरसगोऽङ्कचंद्र १९९६६९ मिता: ॥ भारतीय ज्योतिषशास्त्र पृ० ३१३।

३. चंद्रोच्चस्पष्टान्तरेण रविचंद्रान्तरेण च स्पष्टचंद्रे तदीयफलो याम्यः संस्कारस्य पूर्वाचार्यप्रणीतसंस्कारतो विलक्षणः प्रतिपादितः। ...अयं संस्कारस्य 'इवेक्शन् वेरिएशन्' नामकसंस्कारवत् प्रतिभाति। [गणक-तरंगिणी, पृ० २]

को इसकी टीका लिखी गयी, और 'बृहत्संहिता' की टीका मे लिखा गया है कि ८८८ शक की फाल्गुन कृष्ण द्वितीया गुरुवार को यह विवृति लिखी गयी। दीक्षित ने[1] इस पर शका प्रकट की है कि ये सवत् गत नही है, वर्तमान हैं परतु उनकी यह शका निर्मूल जान पडती है। ये दोनो गत शक सवत् हैं। दूसरी तिथि अमात फाल्गुन मास की है जिसे उत्तर प्रात की परिपाटी के अनुसार चैत्र कृष्ण कहा जा सकता है। 'खण्डखाद्यक' की टीका इससे भी पहले लिखी गयी थी[2] क्योंकि 'बृहत्संहिता' की टीका मे इसकी चर्चा है। 'लघुजातक' पर भी इनकी टीका है।

'बृहत्संहिता' की टीका से पता चलता है कि इन्होने प्राचीन ग्रंथो का गहरा अध्ययन किया था। वराहमिहिर ने जिन-जिन प्राचीन ग्रथो के आधार पर 'बृहत्संहिता' की रचना की थी उन सब ग्रथो के अवतरण देकर इन्होने अपनी टीका की रचना की है।[3] इससे यह भी पता चलता है कि वराहमिहिर से पहले सहिता पर ८, १० आचार्यों ने ग्रन्थ लिखे थे। इस टीका मे सूर्य-सिद्धात के जो वचन उद्धृत किये गये हैं वे इस समय के सूर्य-सिद्धात मे नही मिलते। वराहमिहिर के पुत्र की लिखी 'षट्पचाशिका' की भी इन्होने टीका लिखी है, जिसमे शुभाशुभ प्रश्न पर विचार किया गया है।

★ पृथूदक स्वामी

पृथूदक स्वामी ने 'ब्राह्मस्फुट-सिद्धात' पर एक टीका लिखी है। भास्कराचार्य द्वितीय ने अपने ग्रथो मे इनकी चर्चा कई स्थानो पर की है। दीक्षित के मत से यह भट्टोत्पल के समकालीन है। परन्तु बबुआ मिश्र की सम्पादित 'खण्डखाद्यक' की आमराज की टीका मे लिखा है[4] कि शक ८०० मे इन्होने अयनाश ६$\frac{1}{2}$ अश देखा था। इस प्रकार इनका समय मुजाल से भी पहले का सिद्ध होता है। परन्तु भास्कराचार्य आदि ने इसका उल्लेख नही किया है। इन्होने 'खण्डखाद्यक' की टीका भी की है, जिसकी चर्चा प्रबोधचद्र सेनगुप्त अपनी टीका मे करते हैं।[5]

१. भारतीय ज्योतिषशास्त्र, पृष्ठ २३४।   २ वही, पृष्ठ २३४।

३. वही, पृष्ठ २३५।

४. चतुर्वेदपृथूदकस्वामिना स्वेतदसद्दूषणमित्यभिहितम्। यतस्तेन अष्टाष्टसख्यशाके सार्द्धा षड्दृष्टा इति। कलकत्ता विश्वविद्यालय से प्रकाशित और बबुआ मिश्र की सम्पादित खण्डखाद्यक की टीका, पृष्ठ १०८।

५. भूमिका, २३, ३४।

★ श्रीपति

श्रीपति ज्योतिष की तीनो शाखाओं के अद्वितीय पंडित थे। इनके लिखे ग्रंथ हैं · 'सिद्धांतशेखर,' 'धीकोटिकरण', 'रत्नमाला' (मुहूर्त ग्रंथ) और 'जातक-पद्धति' (जातक ग्रन्थ)। 'धीकोटिकरण' में गणित का जो उदाहरण दिया गया है उसमें ९६१ शक[1] की चर्चा है, इसलिए श्रीपति का समय इसी के लगभग सन १०३९ ई० हो सकता है। प्रबोधचन्द्र सेनगुप्त[2] के अनुसार श्रीपति के पहले कोई भारतीय ज्योतिषी काल-समीकरण के उस भाग का पता नही लगा पाया था जो रविमार्ग की तिर्यक्ता के कारण उत्पन्न होता है।

★ भोजराज

'राजमृगाङ्क' नामक करणग्रन्थ के बनाने वाले राजा भोज कहे गये हैं। यह ग्रंथ 'ब्रह्मसिद्धांत' के ग्रहो मे बीज-संस्कार देकर बनाया गया है। इसका आरम्भ काल शक ९६४ है[3] और इसी समय के ग्रहो का क्षेपक[4] दिया गया है। यह नहीं कहा जा सकता कि इसके रचने वाले स्वयं राजा भोज हैं अथवा उनका आश्रित कोई ज्योतिषी। इस पुस्तक का आदर चार-पाँच सौ वर्ष रहा। इसमे मध्यमाधिकार और स्पष्टाधिकार के केवल ६९श्लोक हैं।[5] अयनांश जानने का नियम भी इसमे दिया गया है।

★ ब्रह्मदेव

ब्रह्मदेव का लिखा 'करणप्रकाश' नामक एक करणग्रंथ है। इसका आरम्भ १०१४ शक (१०९२ई०)मे किया गया था और इसका आधार 'आर्यभटीय' है। ग्रहों की गणना के लिए आर्यभट के ध्रुवाको मे लल्ल के बीज-संस्कार देकर काम लिया गया है। क्षेपक[5] चैत्र शुक्ल प्रतिपदा शुक्रवार शाके १०१४ का है। इसमे ९ अधिकार हैं, जिनमे ज्योतिष संबंधी सभी बातें आ गयी हैं। इस ग्रन्थ मे

१. चन्द्राङ्कनन्दोनशकोऽर्कनिघ्नश्चैत्रादिमासैर्युगयो द्विनिघ्नः, गणकतरंगिणी, पृष्ठ ३०। २. खण्डखाद्यक की अंग्रेजी टीका, पृष्ठ ९३।

३. भारतीय ज्योतिषशास्त्र, पृष्ठ २३८।

४ किसी पुस्तक की ग्रहगणना के आरम्भकाल में सूर्य, चन्द्र, आदि ग्रहों की जो स्थिति है उसे 'क्षेपक' कहते हैं। इसको आगे होने वाली ग्रह की गति में जोड़ देने से उस समय की ग्रह-स्थिति ज्ञात हो जाती है।

५. भारतीय ज्योतिषशास्त्र, पृष्ठ २३९।

४४५ शक को शून्य अयनांश का समय माना गया है और अयनांश की वार्षिक गति एक विकला मानी गयी है । यह ग्रंथ आर्य-पक्ष का है, इसलिए दक्षिण के माध्व सम्प्रदाय के वैष्णव इसी के अनुसार एकादशी व्रत का निश्चय करते आ रहे हैं ।[1]

★ शतानन्द

'भास्वतीकरण' नामक करणग्रन्थ वराहमिहिर के 'सूर्य-सिद्धांत' के आधार पर बनाया गया है । इसके लेखक शतानन्द है जिन्होने ग्रन्थ का आरम्भ १०२१ शक (१०९९ ई०) मे किया था । यह ग्रंथ बहुत प्रसिद्ध था । मलिक मोहम्मद जायसी ने अपने 'पद्मावत' मे इसकी चर्चा की है । इसकी कई टीकाएँ संस्कृत मे हैं । इस ग्रंथ की कुछ विशेषताएँ यहाँ दी जाती हैं

ग्रहो का क्षेपक शक १०२१ की स्पष्ट मेष संक्रांति काल (गुरुवार) का है । दूसरी विशेषता यह है कि इसमे अहर्गण की गणना से ग्रहो को स्पष्ट करने की रीति नही है, वरन् ग्रहो की गति के अनुसार है, जिससे गणना करने मे बडी सुविधा होती है, गुणा भाग नही करना पडता, केवल जोडने से काम चल जाता है । तीसरी विशेषता यह है कि इन्होने शतांश-पद्धति से काम लिया है, अर्थात् राशि, अंश, कला, विकला आदि लिखने की जगह राशि के १०० वें भागो मे अथवा नक्षत्र के १०० वें भागों मे ग्रह-स्थिति बतायी है । उदाहरणार्थ चन्द्रमा की एक वर्ष की गति ९९५$\frac{५}{६}$ नक्षत्र (शतांशो मे) बतायी गयी है, जिसका अर्थ है[2]

$$\frac{९९५\frac{५}{६}}{१००} \text{नक्षत्र} = \frac{९९५\frac{५}{६}}{१००} \times ८०० \text{ कला}$$

$$= ७९६६\tfrac{२}{३} \text{ कला}$$

$$= ४ \text{ राशि } १२ \text{ अंश } ४६ \text{ कला } ४० \text{ विकला ।}$$

शनि का क्षेपक ५९४ शतांश राशि है जिसका अर्थ दशमलव भिन्न मे हुआ ५.९४ राशि । इस प्रकार प्रकट है कि शतानंद ने दशमलव भिन्न का व्यावहारिक प्रयोग किया था । शायद शतांश-पद्धति के पक्षपाती होने के कारण उन्होने अपना नाम भी शतानन्द रखा था ।

'भास्वती' मे तिथिध्रुवाधिकार, ग्रहध्रुवाधिकार, स्फुट तिथ्यधिकार, ग्रहस्फुटाधिकार, त्रिप्रश्न, चंद्र-ग्रहण, सूर्य-ग्रहण, परिलेख नामक आठ अधिकार हैं । इसमे शक ४५० शून्य अयनांश का वर्ष माना गया है और अयनांश की वार्षिक गति १ कला मानी गयी है ।

१ भारतीय ज्योतिषशास्त्र, पृष्ठ २२४ ।
२ भारतीय ज्योतिषशास्त्र, पृष्ठ २४४ ।

'भास्वती' की कई टीकाएँ हुई हैं। एक टीका हिंदी भाषा मे संवत् १४८५ वि० (शक १३५०, १४२८ ई०) मे बनमाली पंडित ने की थी, जिसकी एक खडित प्रति काशी के सरस्वती भवन पुस्तकालय मे है।[1]

इस समय के आस-पास कई ज्योतिषी हो गये हैं जिन्होने करणग्रथो की रचना की है, परतु इनका नाम न गिनाकर अब हम प्रसिद्ध भास्कराचार्य का वर्णन करेंगे, जिनकी कीर्ति सात सौ वर्ष तक फैली रही और जिनकी पुस्तकें सिद्धात शिरोमणि' और 'लीलावती' अब तक भारतीय ज्योतिष के विद्यार्थियो को पढनी पडती हैं। इसी नाम के एक ज्योतिषी आर्यभट प्रथम की शिष्य-परम्परा मे भी थे, इसलिए इनका नाम भास्कराचार्य द्वितीय रखा जायगा।

★ भास्कराचार्य द्वितीय

भास्कराचार्य द्वितीय ने अपना जन्म-स्थान सह्याद्रि पर्वत के निकट विज्जड-विड ग्राम लिखा है, परतु पता नही इसका वर्तमान नाम क्या है, उन्होने अपना जन्मकाल तथा ग्रथनिर्माण-काल स्पष्ट भाषा मे लिखा है।[2] इनका जन्म शक १०३६ (१११४ ई०) मे हुआ था और ३६ वर्ष की वय मे इन्होने 'सिद्धात-शिरोमणि' की रचना की। 'करण-कुतूहल' ग्रथ का आरभ ११०५ शक मे हुआ था, इस-लिए यही इसका रचनाकाल है, जो ११८३ ई० होता है। इससे प्रकट होता है कि 'करण-कुतूहल' की रचना ६९ वर्ष की अवस्था मे की गयी थी। इनके बनाये चार ग्रथ बहुत प्रसिद्ध है १—सिद्धात-शिरोमणि, दो भागो मे जिनके नाम गणिताध्याय और गोलाध्याय है २—लीलावती, ३—बीजगणित और ४—करण-कुतूहल। सिद्धातशिरोमणि' पर इन्होने स्वय वासना-भाष्य टीका लिखी है, जो 'सिद्धात-शिरोमणि' का अग समझी जाती है और साथ ही साथ छपती भी है।

'लीलावती' और बीजगणित' भी यथार्थ मे 'सिद्धात-शिरोमणि' के ही अग माने गये हैं (और इनके अत मे यह लिख भी दिया गया है) क्योकि सिद्धात-ज्योतिष का पूरा ज्ञान तभी हो सकता है जब विद्यार्थियो को पाटीगणित का, जिसमे क्षेत्रफल, घनफल आदि विषयो का भी समावेश है, तथा बीजगणित का आवश्यक ज्ञान हो।

१. गणकतरंगिणी, पृष्ठ ३३।

२ रसगुणपूर्णमहीसमशकनृपसमयेऽभवन्ममोत्पत्तिः।
रसगुणवर्षेण मया सिद्धान्तशिरोमणी रचितः ॥५८॥
—गोलाध्याय का प्रश्नाध्याय।

★ लीलावती

'लीलावती' ग्रंथ मे लीलावती नामक लडकी को सम्बोधन करके प्रश्नोत्तर के रूप मे पाटीगणित, क्षेत्रमिति आदि के प्रश्न बहुत रोचक ढंग से बताये गये हैं। इसमे वे सब विषय आ गये है जिनकी चर्चा 'ब्राह्मस्फुट-सिद्धात' के शुद्ध गणित भाग मे की गयी है। अत मे गणितपाश (क्रमचय[1]) नामक एक अध्याय और है। इसकी भाषा बडी ललित है। इसकी अनेक सस्कृत और हिंदी टीकाएँ हैं, जो बम्बई और लखनऊ से प्रकाशित होकर ज्योतिष के विद्यार्थियो के काम आती है। इसकी कई प्राचीन टीकाएँ भी है, जैसे गगाधर की 'गणितामृत सागरी' (१३४२ शक), ग्रह लाघवकार गणेश दैवज्ञ की 'बुद्धिविलासिनी' (१४६७ शक), धनेश्वर दैवज्ञ की 'लीलावतीभूषण', मुनीश्वर की 'लीलावतीविवृत्ति' (१५४७ शक), महीधर की 'लीलावती विवरण', रामकृष्ण की 'गणितामृतलहरी', नारायण की 'पाटीगणित-कौमुदी', रामकृष्ण देव की 'मनोरजना,' रामचद्र कृत 'लीलावती-भूषण', विश्व-रूप की 'निसृष्ट-दूती', सूर्यदास की 'गणितामृतकूपिका', इत्यादि। वर्तमान काल मे प० बापूदेव शास्त्री की टिप्पणी और प० सुधाकर द्विवेदी की उपपत्ति सहित टीकाएँ भी प्रकाशित हुई है।

★ अन्य ग्रन्थ

भास्कराचार्य के 'बीजगणित' पर कृष्ण दैवज्ञ की 'बीजनवाकुर' शक (१५२४) और सूर्यदास की टीका प्रसिद्ध है। उपपत्ति के साथ इसकी टीका प० सुधाकर द्विवेदी ने भी की है। इनके अतिरिक्त और भी कई टीकाएँ है।

'सिद्धात-शिरोमणि' (गणिताध्याय और गोलाध्याय) ज्योतिष सिद्धात का एक उत्तम और प्रसिद्ध ग्रथ है। इसमे ज्योतिष सिद्धात की सभी बाते विस्तार और उपपत्ति के साथ बतायी गयी है जिनका वर्णन 'ब्राह्मस्फुट-सिद्धात' अथवा 'महासिद्धात' मे है। इसकी अनेक टीकाएँ है। ग्रहलाघवकार गणेश दैवज्ञ की एक टीका है। नृसिह ने 'वासनाकल्पलता' अथवा 'वासनावार्तिका' नामक टीका १५४३ शक मे लिखी थी। मुनीश्वर या विश्वरूप की मरीचि नामक टीका बहुत उत्तम और विस्तार के साथ १५५७ शक मे लिखी गयी थी। 'आर्यभटीय' के टीकाकार परमा-दीश्वर ने 'सिद्धात, दीपिका' नामक टीका की थी। रगनाथ की 'मितभाषिणी' नामक टीका शक १५८० के लगभग लिखी गयी थी। इस ग्रथ का ब्यौरेवार विव-रण आगामी अध्याय मे दिया जायगा।

१ क्रमचय वह संख्या है जो बताती है कि दिये हुए समूह में से गिनती मे दी हुई सख्या के बराबर वस्तुएँ निकाल कर कुल कितने विभिन्न क्रमों में रखी जा सकती हैं।

१४

सिद्धांतशिरोमणि और करण-कुतूहल

सिद्धातशिरोमणि के गोलाध्याय मे पद्रह अध्याय हैं, जिनमे से पहले का नाम गोलप्रशसा है। मगलाचरण के बाद इस अध्याय मे बताया गया है कि ज्योतिषी को क्या-क्या जानना चाहिये। इस पर बल दिया गया है कि शुभाशुभ बताने के लिए भी गणित और गणित-ज्योतिष जानना आवश्यक है। अतिम श्लोक मे भास्कराचार्य ने अपनी पुस्तक की प्रशसा इन शब्दो मे की है।

> गोल श्रोतु यदि मतिर्भास्करीय श्रृणु त्व
> नो सक्षिप्तो न च बहुवृथाविस्तर शास्त्रतत्त्वम्।
> लीलागम्य सुललितपद प्रश्नरम्य स यस्माद्
> विद्वन्! विद्वत्सदसि पठतां पडितोक्ति व्यनक्ति ॥१॥

[अर्थात्—हे पडित, यदि तुम्हारी इच्छा गणित-ज्योतिष सुनने की है तो भास्कराचार्य कृत पुस्तक को सुनो। वह न तो सक्षिप्त है और न व्यर्थ विस्तृत ही है। उसमे शास्त्र का तत्त्व है। उसमे सुन्दर पद है और मनोरम प्रश्न है। वह सुगमता से समझी जा सकती है और उसे पडितो की सभा मे सुनाने से पडिताई प्रकट होती है।[1]]

★ गोलस्वरूप प्रश्नाध्याय

दूसरा अध्याय गोलस्वरूप प्रश्नाध्याय है। इसमें दस श्लोक हैं और सभी में पाठक ग्रथ के रचयिता से प्रश्न पूछता है। उदाहरणार्थ, प्रथम श्लोक का यह अर्थ है

१. पंडित गिरिजाप्रसाद द्विवेदी का सटीक सस्करण (नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ), यहाँ अर्थ अधिकतर इसी पुस्तक से लिये गये हैं।

यह पृथ्वी ग्रह-नक्षत्रो से वेष्टित, भ्रमण करते हुए राशिचक्र के भीतर, आकाश मे कैसे ठहरी है जिससे नीचे नही गिर सकती ? इसका स्वरूप और मान क्या है ?.

टेढे प्रश्न भी है, जैसे यह कि "हे गोलज्ञ ! रविमार्ग के बराबर-बराबर बारह भाग, जो बारह राशियाँ है, बराबर समयो मे क्यो नही उदित होते ? और वे सब देशो मे एक समय मे क्यो नही उदित होते ?"

★ भुवनकोश

'भुवनकोश' नामक तीसरे अध्याय मे विश्व का रूप बताया गया है। कहा गया है कि पृथ्वी क्रमानुसार चद्र, बुध, शुक्र, रवि, मगल, बृहस्पति और नक्षत्रो की कक्षाओ से घिरी हुई है। इसका कोई आधार नही है, केवल अपनी शक्ति से स्थिर है। इसके पृष्ठ पर सदा असुर, मनुष्य, देव और दैत्य आदि के सहित दुनिया स्थित है। कदब के फूल की गाँठ जैसे चारो ओर केसरो से घिरी रहती है वैसे ही पृथ्वी भी चारो ओर पर्वत, उद्यान, ग्राम, यज्ञशाला आदि से घिरी है।

उनके मतो का जोरदार शब्दो मे खडन किया गया है जो कहते थे कि पृथ्वी किसी आधार पर टिकी है। लिखा है कि "यदि भूमि किसी साकार वस्तु के आधार पर स्थित है तो उस आधार का भी कोई आधार होना चाहिये। यो प्रत्येक वस्तु के लिए किसी दूसरे आधार की कल्पना करते चले तो अनवस्था[1] हो जायगी। यदि अत मे निजी शक्ति की कल्पना ही करनी है तो वह पहले ही से क्यो न की जाय ? पृथ्वी मे आकर्षण-शक्ति है, उससे वह आकाश मे फेकी गयी भारी वस्तुओ को अपनी ओर खीचती है और वह भारी वस्तु गिरती हुई दिखाई पडती है, परतु पृथ्वी कही नही गिर सकती, क्योकि आकाश सब ओर समान है ।"

बौद्धो के कथन का कि पृथ्वी गिरती है और जैनो के कथन का कि दो सूर्य है, दो चद्र हैं, जिनका एकातर से उदय होता है, बहुत बलपूर्वक खडन किया गया है। उनके मत का भी खडन किया गया है जो कहते हैं कि पृथ्वी समतल (सपाट) है और मेरु पर्वत के पीछे सूर्य के छिप जाने से रात्रि होती है। बताया है कि जैसे वृत्त की परिधि का छोटा-सा भाग सीधा जान पडता है, वैसे ही "इस बडी भारी भूमि की

१ न्याय मे एक प्रकार का दोष, यह उस समय होता है जब तर्क करते-करते कुछ परिणाम न निकले और तर्क भी समाप्त न हो, जैसे कारण का कारण, और भी उसका कारण, फिर उसका भी कारण—हिंदी-शब्द सागर।

तुलना मे, मनुष्य के अत्यन्त क्षुद्र होने के कारण, भूमि के ऊपर उसकी दृष्टि जहाँ तक जाती है, वह सब सपाट ही जान पडती है।"

फिर बताया गया है कि पृथ्वी कैसे नापी जा सकती है। कहा है कि भूमध्य रेखा से उज्जयिनी की दूरी नाप कर उसे १६ से गुणा करने पर पृथ्वी की परिधि ज्ञात होगी, क्योंकि उज्जयिनी का अक्षाश २२½ अश, अर्थात् $\frac{1}{16}$ ३६० अश, है। इसके बाद लका, यमकोटि, रोमकपत्तन, सिद्धपुर, सुमेरु और बडवानल की परिभाषाएँ या स्थितियाँ बतायी गयी हैं। फिर कुछ भौगोलिक बाते बतायी गयी हैं, जो बहुत ठीक नही है। वे केवल पौराणिक परम्परा से सकलित जान पडती हैं।

श्लोक ४८ मे बताया गया है कि भूमध्य रेखा पर खगोल (आकाशीय गोल) कैसा दिखाई पडेगा "भूमध्य रेखा पर मनुष्य दक्षिण और उत्तर दोनो ध्रुवो को क्षितिज पर देखेगा और आकाश को अपने सिर के ऊपर जलयत्र (रहट) की तरह घूमता हुआ देखेगा", जो पूर्णतया सत्य है। इसके बाद ध्रुव के उन्नताश और स्थान के अक्षाश मे सबध बताया गया है। फिर पृथ्वी की परिधि, उसका व्यास और उसके पृष्ठ का क्षेत्रफल बताया गया है। इसमे परिधि और व्यास का अनुपात बहुत शुद्ध (३ १४१६) लिया गया है। भास्कराचार्य ने पृष्ठ के क्षेत्रफल के सबध मे लल्लाचार्य की गणना को अशुद्ध बताया है, जो उचित ही है। लल्ल ने अशुद्ध सूत्र से गणना की थी, क्योकि उन्होने परिधि से वृत्त के क्षेत्रफल को गुणा किया था। भास्कराचार्य ने परिधि को व्यास से गुणा किया है, जो पूर्णतया शुद्ध है।

★ मध्यगतिवासना

मध्यगतिवासना नामक चौथे अध्याय मे सूर्य, चद्रमा और ग्रहो की मध्य गतियाँ दी गयी है। प्रथम तीन श्लोको मे बताया गया है कि पृथ्वी के ऊपर सात स्तर वायुओ के है। पहले मे मेघ आदि है। उसके ऊपर वे वायु है जिनसे चद्रमा सूर्य, मगल आदि चलते रहते है। विचार करने की बात है कि बहुत पहले ही आर्यभट ने 'आर्यभटीय' मे लिखा था—"जैसे नाव पर चढे हुए मनुष्य को, जिधर वह जाती है उससे विपरीत दिशा मे, किनारे के अचल वृक्ष आदि चलते हुए प्रतीत होते हैं, इसी प्रकार भूमध्य रेखा पर अचल नक्षत्र पूर्व से पश्चिम दिशा मे जाते हुए प्रतीत होते है," परतु आर्यभट के इस सिद्धात को कि पृथ्वी घूमती है और तारे अचल हैं, न तो लल्ल, श्रीपति आदि ने माना, और न भास्कराचार्य ने।

इसके बाद समझाया गया है कि क्यो सूर्य, चद्रमा आदि की गतियाँ विभिन्न होती है, यद्यपि ये सब पिंड एक ही वायु से सचालित होते है। कारण यह बताया

गया है कि उनमे स्वगति भी होती है। "जैसे कुम्हार के चाक पर चींटी विलोम दिशा मे चलने पर भी चाक के घूमने के कारण कुल मिलाकर आगे ही बढती है", इसी प्रकार सूर्य आदि भी।

फिर, श्लोक ८ से अध्याय के अन्त तक (श्लोक २५ तक) सौर वर्ष, चाद्र मास और अधिमास की परिभाषाएँ तथा उनके मान, कितने-कितने दिनो पर अधिमास लगते है, अधिमास सम्बन्धी कुछ अन्य प्रश्न और उनके उत्तर, तथा कुछ अन्य बाते बतायी गयी है। सौर वर्ष आदि बनाने की वह रीति नही अपनायी गयी है जो 'सूर्य-सिद्धात' मे है। यहाँ बताया गया है कि सौर वर्ष ३६५ दिन १५ घडी ३० पल और २२/३० विपल का होता है, 'सूर्य-सिद्धात' मे युग में वर्षो की सख्या बतायी गयी थी।

★ ज्योत्पत्ति और छेद्यकाधिकार

पाँचवाँ अध्याय ज्योत्पत्ति है। इसमे त्रिकोणमिति के कुछ सूत्र दिये गये है और कुल ६ श्लोक हैं। आगामी अध्याय छेद्यकाधिकार है। इसमे वे नियम दिये गये हैं जिनसे सूर्य, चद्रमा और ग्रहो की स्फुट स्थितियाँ, अर्थात् वे स्थितियाँ जिनमे ये पिंड वस्तुत दिखाई पडते हैं, जानी जा सकती है। इस अध्याय मे दोनो सिद्धान दिये गये है, एक तो वह जो सूर्य-सिद्धात के सम्बन्ध मे बताया गया है, अर्थात् सूर्य या चद्रमा एक छोटे वृत्त मे चलता है, जिसका केन्द्र एक बडे वृत्त मे चलता है, और दूसरा यह कि सूर्य आदि पिंड वृत्त मे चलते है परन्तु पृथ्वी केन्द्र पर नही, उससे हट कर है। भास्कराचार्य के मत से भूमि ब्रह्माण्ड के केन्द्र मे अवश्य है, परतु सूर्य, चद्र, ग्रहादि जिन वृत्तो मे चलते है उनके केन्द्र पृथ्वी मे भिन्न है।

भास्कराचार्य ने छेद्यक उस चित्र को कहा है जिसमे सूर्य आदि किसी पिंड की कक्षा दिखायी जाय। छेद्यक बनाने की रीति विस्तार से बतायी गयी है। यह भी बताया है कि सूर्य और चन्द्रमा का आभासी व्यास घटा-बढा क्यो करता है "अपने उच्च मे स्थित रहने पर पिंड पृथ्वी से बहुत दूर रहता है और नीच मे समीप रहता है। इसलिए पिंड का बिम्ब क्रमानुसार छोटा और बडा दिखाई पडता है। इसके बाद कुछ प्राचीन आचार्यों के मत का खडन किया गया है।

★ गोलबन्धाधिकार और त्रिप्रश्नवासना

सातवाँ अध्याय गोलबधाधिकार है। इसमे बताया गया है कि कैसे बीच मे काठ के गोल से पृथ्वी, और उसके केंद्र से जाने वाली छडी पर वृत्त बाँधकर चद्र, बुध आदि की कक्षाएँ प्रदर्शित की जा सकती हैं, और ज्योतिष-अध्ययन मे आने वाले याम्यो-

त्तर, क्षितिज आदि अनेक वृत्त कैसे दिखाये जा सकते हैं। स्पष्ट है कि इस प्रकार का गोल केवल शिष्य को ज्योतिष समझाने के लिए है, ग्रहो और नक्षत्रो की स्थितियाँ नापने के लिए नही। यहाँ के वर्णन के अनुसार भी गोल वैसा ही बनेगा जैसा सूर्य-सिद्धात के सबध मे पहले बताया जा चुका है।

इसी अध्याय मे अयनाश, क्राति, शर आदि कई उपयोगी ज्योतिष परिमाण ज्ञात करने के भी नियम दिये गये हैं।

आगामी अध्याय त्रिप्रश्नवासना है। उसमें सूर्योदय का समय जानने की रीति बतायी गयी है। वर्णन किया गया है कि कहाँ कब कितना दिनमान होता है। बताया गया है कि भूमध्यरेखा पर दिन-रात क्यो बराबर होते हैं। यह भी बताया गया है कि उत्तर ध्रुववृत्त के भीतर (अर्थात् वृत्त के भीतर जिसका अक्षाश लगभग ६६° उत्तर होता है) दिन-रात की व्यवस्था कैसी होती है, किस प्रकार वहाँ बहुत समय तक दिन ही बना रहता है, पृथ्वी के ठीक उत्तर ध्रुव या दक्षिण ध्रुव पर क्या दिखाई पडता है, और चद्रमा पर दिन और रात किस प्रकार होते हैं। कहा गया है "पितर लोग चद्रमा के पृष्ठ पर निवास करते है और इसलिए चद्रमा को अपने पैर के नीचे मानते हैं। वे हमारी अमावस्या पर सूर्य को अपने सिर पर देखते हैं। इसलिए उस दिन उनका मध्याह्न होता है। चद्रमा जब ६ राशि चल लेता है और हमारी पूर्णिमा होती है तब सूर्य चद्रमा के नीचे चला जाता है और पितरो की अर्धरात्रि होती है।"

कोई राशि क्यो शीघ्र उदित होती है, कोई क्यो देर मे, इस प्रश्न का उत्तर यह दिया गया है "रविमार्ग का जो भाग तिरछा है वह थोडे काल मे और जो सीधा है वह अधिक काल में उदित होता है", फिर बताया है कि कौन-सी राशियाँ अधिक तिरछी है, कौन-सी प्राय सीधी। यह भी बताया गया है कि कौन-से देश मे कर्क और मिथुन राशियाँ सदोदित रहेगी, अर्थात् क्षितिज के नीचे कभी जायेगी ही नही, और इसी प्रकार के कई अन्य प्रश्नो का भी उत्तर दिया गया है। इस सबध मे लल्लाचार्य का एक कथन असगत बताया गया है।

अक्षाश जानने की रीति यो बतायी गयी है "ध्रुव के वेध द्वारा जो उन्नताश और नताश प्राप्त हो वे ही अक्षाश और लबाश[1] है, फिर, विषुव के दिन के मध्याह्न मे जो सूर्य के नताश और उन्नताश हो वे क्रमानुसार अक्षांश और लबांश होते हैं।

१ ९० अंश से अक्षांश को घटाने पर प्राप्त शेष को लंबांश कहा गया है।

इस अध्याय मे कई एक परिमाणो की गणना की रीति बतायी गयी है और कहा गया है कि "इसी प्रकार विद्वान् लोग अन्य हजारो क्षेत्रो की कल्पना करके शिष्यो को बताये ।"

★ ग्रहणवासना, दृक्कर्मवासना और शृङ्गोन्नतिवासना

आगामी दो अध्यायो मे ग्रहण की गणना बतायी गयी है । उसके बाद वाले अध्याय मे बताया गया है कि चद्रमा के शृग (नोक) किस दिशा मे है यह कैसे जाना जाय । इन विषयो के कठिन होने के कारण अधिकाश बातो को यहाँ छोड दिया जा रहा है, केवल एक-दो अत्यत सरल बाते चुन कर यहाँ रखी जाती हैं । प्रथम श्लोक मे बताया गया है कि सूर्य-ग्रहण क्यो कही मे दिखाई पडता है, कही से नही "जिस प्रकार मेघ सूर्य को ढँक लेता है वैसे ही चद्रमा सूर्य से शीघ्र चल कर सूर्य-बिब को अपने काले बिब से ढक लेता है । इसलिए सूर्य-ग्रहण मे पश्चिम दिशा मे स्पर्श और पूर्व दिशा मे मोक्ष होता है । चद्रमा और सूय की दृग्यो मे भेद रहने से सूर्य किमी देश मे ढँका हुआ दिखाई पडता है और किमी मे नही । चद्रग्रहण मे छादक (ढँकने वाला) बडा होता है । इसलिए ग्रहण के समय दिखाई पडने वाले चद्रमा के दोनो शृग मद (मोटे) होते हैं और ग्रहण की अवधि बडी होती है । परतु सूर्य-ग्रहण मे छादक के छोटा होने से सूर्य के शृग तीखे होते है और ग्रहण की अवधि छोटी होती है ।"

ग्रहण के ब्योरो को जानने के लिए चित्र खीचने की रीति विस्तार से बतायी गयी है । 'शृगोन्नतिवासना' मे यह भी बताया गया है कि चद्रमा मे क्यो कलाएँ दिखाई पडती है ।

★ यत्राध्याय

इस अध्याय का उद्देश्य प्रथम श्लोक मे बताया गया है "काल के सूक्ष्म अवयवो का ज्ञान बिना यत्र के असभव है । इसलिए सक्षेप मे कुछ यत्रो का वर्णन करता हूँ । उन यत्रो के नाम ये है गोल, नाडी-वलय, यष्टि, शकु, घटी, चक्र, चाप, तुर्य, फलक और धी । परतु इन सब यत्रो मे एक धी-यत्र सबसे उत्तम है ।"

इनमे से गोल-यत्र तो वही है, जो गोलबधाधिकार मे बताया गया है ।

नाडीवलय-यत्र के लिए लिखा है कि काठ का चक्र बनाकर उसकी परिधि को घटी आदि मे अकित करे । बीच मे कील, चक्र के समतल से लब दिशा मे, जड दे, तो यत्र तैयार हो जायगा । कील की छाया देख कर इसमे समय ज्ञात किया जाता है । चक्र के धरातल को इच्छानुसार चाहे क्षैतिज समतल मे अथवा विषुवत् के समतल मे स्थिर किया जा सकता है ।

यष्टि का अर्थ है छड़ी, बल्ली या स्तंभ। नाम से ही यंत्र का ज्ञान हो जाता है। बनाने के लिए कोई ब्योरा नहीं दिया गया है। शंकु के लिए 'सिद्धांत शिरोमणि' में बहुत कम ब्योरा है, परंतु शंकु क्या होता था यह अन्य ग्रंथों से ज्ञात है (पृष्ठ १२७ देखें)। शंकु को हाथीदाँत का बनाना चाहिये केवल यही विशेष बात बतायी गयी है।

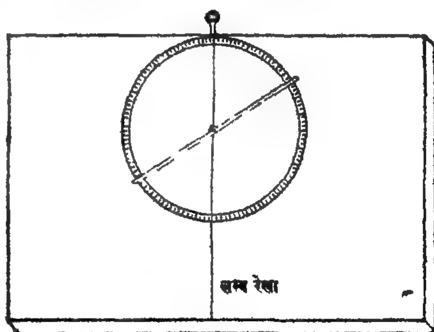
आधे घड़े के आकार का ताँबे का घटी-यंत्र बनता था। पेंदी में एक छेद रहता था। पानी में इसके डूबने के समय से समय का ज्ञान होता था।

"किसी काष्ठ या धातु का वृत्ताकार चक्र-यंत्र बना कर उसकी परिधि को ३६० अंशों में अंकित करें और ढीली जंजीर से लटका दें। केंद्र में एक कील रहनी चाहिये" इस प्रकार चक्र-यंत्र ऊर्ध्वाधर धूप-घड़ी का काम देता था। इससे सूर्य का उन्नतांश नापा जाता था।

"वृत्त का आधा चाप-यंत्र और चाप का आधा तुर्य-यंत्र कहा जाता है।"

★ फलक-यंत्र और धी-यंत्र

फलक-यंत्र के वर्णन में भास्कराचार्य ने बहुत भूमिका बाँधी है। एक श्लोक में यंत्र की प्रशंसा की गयी है, दूसरे में सूर्य-वंदना और यंत्र की पुनः प्रशंसा। फिर इसे बनाने के लिए यह आदेश है—"फलक-यंत्र को आयताकार, ९० अंगुल चौड़ा और १८० अंगुल लंबा बनाना चाहिये। लंबाई के बीच में ढीली जंजीर लगाकर इसे लटका दें, जिससे यह घूम सके (और सदा ऊर्ध्वाधर रहे)।" फिर इस पर विविध रेखाओं आदि के अंकित करने के लिए आदेश है। बीच में कील रहेगी और इसी कील के सहारे ६० अंगुल लंबी, अंगुल भर चौड़ी, आधा अंगुल मोटी पट्टी घूमा करेगी। इसमें छेद करके इसे कील पर इस प्रकार पिरोना चाहिये कि पट्टी घूम सके और घुमाने पर इसका एक किनारा केंद्रीय खड़ी रेखा पर पड़ सके।



फलक-यंत्र

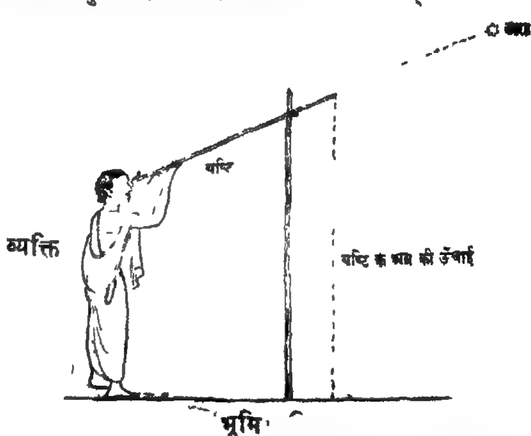
यह चित्र भास्कराचार्य के वर्णन के अनुसार बनाया गया है।

यंत्र की उपयोग-विधि यों बतायी गयी है "इस फलक-यंत्र को इस प्रकार रखना चाहिये जिसमें इस यंत्र के दोनों ओर सूर्य की रश्मियाँ पड़े", अर्थात् यंत्र का समतल ऐसी दिशा मे हो जाय कि सूर्य उसी समतल में रहे। फिर तो सूर्य का उन्नतांश कील की छाया से जाना जा सकता है। मध्य की पट्टी के किनारे को किसी तारे या ग्रह की दिशा मे करके उसका भी उन्नतांश नापा जा सकता है। वस्तुत यह यंत्र अरब लोगो के अस्तरलाबर (यंत्रराज) का पूर्वज जान पडता है (चित्र देखो)।

कुछ पाश्चात्यों की राय है कि भास्कराचार्य यंत्रो के उपयोग को बहुत आवश्यक नहीं समझते थे, और इसलिए उन्होने ज्योतिष की उन्नति क्रियात्मक रूप से नही की, केवल अच्छी गणना बतायी। यह विश्वास भास्कराचार्य के इस श्लोक पर आश्रित है

अथ किमु पृथुतन्त्रैर्धीमतो भूरियन्त्रैः
स्वकरकलितयष्टेर्दत्तमूलाग्रदृष्टे. ।
न तदविदितमानं वस्तु यद्दृश्यमानं
दिवि भुवि च जलस्थं प्रोच्यतेऽथ स्थलस्थम् ॥४०॥

[अर्थात् बुद्धिमानो को बडे ग्रंथ और बहुत-से यंत्रो से क्या प्रयोजन है? हाथ मे लकडी लेकर, उसके मूल मे आँख लगाकर, वेध करने से आकाश, भूमि और जल मे दिखाई पडने वाली सब वस्तुओ का मान ज्ञात हो सकता है।]



धी-यंत्र
यष्टि के अग्र तथा आँख की ऊँचाइयाँ और दोनो के बीच की क्षैतिज दूरी जानकर आकाशीय पिंडो का उन्नतांश इस यंत्र से नापा जाता था।

यही धी-यंत्र है (धी = बुद्धि)। इसके उपयोग की विधि यो बतायी गयी है "जो हाथ मे यष्टि लेकर बाँस का मूल और अग्र वेध कर अपना और बाँस का अंतर और ऊँचाई जान लेता है, कहो वह धीयंत्र विशारद क्या नही जानता?"

यद्यपि इस अध्याय के प्रथम श्लोक मे धी-यन्त्र की बडी प्रशसा की गयी है, तथापि इसमे सदेह नही कि यह यत्र बहुत स्थूल है। भास्कराचार्य ने धी-यत्र पर कई उदाहरण दिये हैं जिनमे गणित के दाँव पेंच-बहुत सुन्दर हैं, परतु स्वय यत्र कितनी सूक्ष्मता से नाप सकेगा इसकी उपेक्षा की गयी है। कुछ प्रश्न तो विशुद्ध त्रिकोणमिति के हैं। उदाहरणत, एक प्रश्न यह है 'हे मित्र! एक समभूमि से ऊँचे सीधे बाँस का मूल किसी घर आदि से छिपा हुआ है, केवल उसका अग्र दिखाई देता है। यदि तुम यही बैठकर उसकी ऊँचाई और यहाँ से दूरी बताओ, तो हम धी-यत्र विशारदो मे तुमको श्रेष्ठ मानें।" इसका उत्तर भास्कराचार्य ने स्वय दिया है जिसमे दो स्थानो से बाँस के अग्र के उन्नताशो को नाप कर त्रिकोणमिति से बाँस की दूरी और ऊँचाई की गणना की रीति बतायी गयी है।

★ स्वयचल यन्त्र

इसके बाद ऐसे यत्र का वर्णन है जो स्वय चले। आधुनिक विज्ञान का कहना है कि जब तक कोयला, पेट्रोल आदि से उत्पन्न हुई या अन्य प्रकार से आयी ऊर्जा (एनर्जी) खर्च न होगी तब तक कोई यत्र स्वय चलता न रहेगा। इसलिए स्पष्ट है कि भास्कराचार्य का बनाया हुआ यत्र कभी बन न पाया होगा। निर्माण विधि यो बतायी गयी है "अच्छे काठ का खरादा हुआ एक चक्र बनाओ। उसकी परिधि मे बराबर-बराबर दूरियो पर अरे[1] लगाओ। ये अरे (त्रिज्या की सीध मे न रहे, उनके सापेक्ष) एक ओर कुछ झुके रहे। अरे सब एक समान छिद्र वाले (पोले) हो। इन अरो के छिद्रो मे इतना पारा छोडो कि वे आधे भर जायँ। इसके बाद छिद्रो का मुख अच्छी तरह बद कर दो। फिर इस चक्र को खराद की भाँति दो आधारो मे पिरोये हुए दो लोह दड के बीच मे कस दो। तब (चला देने पर) यह चक्र स्वय घूमता रहेगा।"

इसके बाद एक पनचक्की का वर्णन है जो स्वय बराबर चलती रहेगी। आधुनिक विज्ञान के अनुसार यह भी बेकार है—अपने आप नही चलती रह सकती।

भास्कराचार्य ने स्वय कहा है कि इन यन्त्रों का गोल से कोई सबध नही है। केवल "पूर्व आचार्यों के कथनानुसार यहाँ उनका वर्णन किया गया है।"

★ अन्तिम तीन अध्याय

तेरहवाँ अध्याय 'ऋतुवर्णन' है। इसमे पन्द्रह श्लोको मे ऋतुओ का वर्णन रसिकतापूर्वक किया गया है। ज्योतिष से इस अध्याय का कोई सबध नही है।

१. केन्द्र से परिधि तक जाने वाले डडों को अरा कहते हैं।

भास्कराचार्य ने स्वय लिखा है कि "यहाँ ऋतुवर्णन के बहाने कवियो की प्रीति के लिए रसिको का मन हरने वाली यह छोटी कविता दी गयी है" ।

आगामी अध्याय प्रश्नाध्याय है । इसमे ज्योतिष सबधी प्रश्न और उनके उत्तर हैं । दो उदाहरण देना यहाँ पर्याप्त होगा । एक प्रश्न यह है "अहर्गण के साधन मे जितने गत अधिमास और अवम हो उनका और उनके शेषो का योग जान कर जो गणक कल्पादि से सौर, चाद्र, सावन अहर्गणो को गणित से बताये वह बीज-गणितज्ञ पडित, सश्लिष्ट-स्फुट-कुट्टक मे उद्भट, बालकरूपी क्षुद्रमृग को भगाने मे सिंह के समान विजयी होता है ।। १० ।।"

"उज्जयिनी से पूर्व मे नब्बे अश पर कोई नगर है और वही से पश्चिम नब्बे अश पर कोई (दूसरा) नगर है, और पूर्व मे जो नगर है उससे ईशानकोण मे नब्बे अश पर (तीसरा) और पश्चिम मे जो नगर है उससे वायुकोण मे नब्बे अश पर (चौथा) नगर है । हे गोलक्षेत्रचतुर ! कुछ देर अपने चित्त मे इन प्रश्नो पर भली भाँति विचार कर, उक्त नगरो के अक्षाश बताओ ।" भास्कराचार्य के उत्तर मे इन नगरो का अक्षाश ०°, ०°, ४५°, और ३०° निकला है ।

अन्तिम अध्याय का नाम ज्योत्पत्ति है । इसमे कोणो की ज्याओ की गणना करने की रीति बतायी गयी है और कुछ अन्य त्रिकोणमितीय प्रश्नो पर भी विचार किया गया है ।

★ अन्य ग्रथ

'करण-कुतूहल' नामक ग्रथ मे ग्रहो की गणना के लिए सुगम रीति बतायी गयी है जिस पर कई टीकाएँ लिखी गयी है । इसके अनुसार पचाग बनाने का काम सरलता से किया जा सकता है ।

अन्य भाषाओ मे भी भास्कर के ग्रथो का अनुवाद किया गया है । अकबर बादशाह के नवरत्न फैजी ने फारसी मे 'लीलावती' का अनुवाद सन् १५८७ ई० मे किया था । शाहजहाँ बादशाह के समय मे अताउल्लाह रसीदी ने १६३४ ई० मे 'बीजगणित' का अनुवाद किया । कोलब्रुक ने १८१७ ई० मे 'लीलावती' और 'बीजगणित' का अनुवाद अग्रेजी मे किया । टेलर ने १८१६ ई० में 'लीलावती -का अनुवाद तथा ई० स्ट्रेची ने 'बीजगणित' का अनुवाद १८१३ ई० मे अग्रेजी मे किया । महामहोपाध्याय बापूदेव शास्त्री ने 'गोलाध्याय' का अग्रेजी अनुवाद १८६६ ई० मे किया । पडित गिरिजाप्रसाद द्विवेदी ने 'गोलाध्याय' और 'गणिताध्याय' दोनो पर सस्कृत और हिन्दी मे एक अच्छी टीका लिखी है जो नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ से सन् १९११ और १९२६ ई० मे प्रकाशित हुई है ।

ऊपर के वर्णन से स्पष्ट है कि भास्कराचार्य ने गणित-ज्योतिष का विस्तार किया और उपपत्ति सम्बन्धी बातो पर पूरा ध्यान दिया, परन्तु आकाश के प्रत्यक्ष वेध से बहुत कम काम लिया। वेधो के लिए इन्होंने 'ब्राह्मस्फुट-सिद्धात' को आधार माना।

किसी-किसी ग्रन्थ मे भास्कराचार्य रचित 'मुहूर्त ग्रन्थ' तथा 'विवाह पटल' नामक ग्रन्थ का भी वर्णन है परन्तु ये उतने प्रसिद्ध नही हुए।



१५

भास्कराचार्य के बाद

भास्कराचार्य के बाद कई ज्योतिषी हुए, परन्तु उनमे भास्कर के समान कोई विख्यात न हो सका, ज्योतिष में विशेष उन्नति भी भास्कर के बाद न हो पायी, जैसा यहाँ प्रस्तुत विवरण से पता चलेगा। नवीन ज्योतिषी साधारणत भाष्य लिखकर या किसी प्राचीन सिद्धात को सत्य मान उससे करण-ग्रन्थ बनाकर या फलित ज्योतिष पर ग्रन्थ लिख कर ही सतोष करने लगे। फिर एक समय ऐसा भी आ गया कि उन्नति करना ही पाप समझा जाने लगा।

★ वाविलाल कोचन्ना

तैलग प्रान्त के वाविलाल कोचन्ना ज्योतिषी ने एक करण ग्रथ शक १२२० मे लिखा था[1], जिसमे फाल्गुन कृष्ण ३० गुरुवार शक १२१९ का क्षेपक[2] दिया है। यह पुस्तक वर्तमान 'सूर्य-सिद्धात' के आधार पर लिखी गयी थी। इस पुस्तक मे कोई बीज-सस्कार नही दिया है जैसा 'मकरद' मे है। मद्रास मे वारन नामक अग्रेज विद्वान् ने 'कालसकलित' नामक एक ज्योतिष की पुस्तक १८२५ ई० मे लिखी है, जिसमे इस पुस्तक से बहुत कुछ सामग्री ली गयी है। इससे जान पडता हैं कि मद्रास (तमिलनाडु) में इस पुस्तक से उस समय तक पचाग बनाये जाते थे।

१. इस अध्याय के पृष्ठ १९८ तक की सारी बातें मेरे द्वारा सपादित 'सरल विज्ञान-सागर' नामक ग्रन्थ मे छपे श्री महावीरप्रसाद श्रीवास्तव के एक लेख से ली गयी हैं।

२ 'क्षेपक' की परिभाषा के लिए पृष्ठ १७१ पर पाद-टिप्पणी देखें।

★ बल्लालसेन

मिथिलाधिपति श्री लक्ष्मणसेन के पुत्र महाराजाधिराज बल्लालसेन ने शक १०९० (११६८ ई०) में 'अद्‌भुतसागर' नामक संहिता का एक बृहत् ग्रन्थ रचा जो वराहमिहिर की 'बृहत्संहिता' के ढंग का ग्रन्थ है। उसमें गर्ग, वृद्धगर्ग, पराशर, कश्यप वराहसंहिता, विष्णुधर्मोत्तर, देवल, वसन्तराज, वटकणिक, महाभारत, वाल्मीकि रामायण, यवनेश्वर, मत्स्यपुराण, भागवत, मयूरचित्र, ऋषिपुत्र, राजपुत्र, पंच-सिद्धांतिका, ब्रह्मगुप्त, भट्ट बलभद्र, पुलिशाचार्य, सूर्यसिद्धांत, विष्णुचन्द्र और प्रभाकर के अनेक वचन उद्धृत हैं। 'वराहसंहिता' में अध्यायों के नाम 'चार' से प्रकट किये गये हैं, जैसे ग्रहचार, राहुचार आदि, परन्तु 'अद्‌भुतसागर' में अध्यायों के नाम 'आवर्त' रखे गये है, जैसे 'अगस्त्यावर्त' में अगस्त तारे के उदय-अस्त के विषय में हैं, इत्यादि। बल्लालसेन ने कई आकाशीय घटनाओं का उल्लेख किया है, जिससे जान पड़ता है कि यह केवल ग्रंथकार ही नहीं थे, वरन् तारों और नक्षत्रों का भी वेध करते थे। बुध-सूर्य-युति और शुक्र-सूर्य-युति का भी परिचय इनको था। अयन-बिन्दुओं के संबंध में भी इन्होंने स्वयं[1] परीक्षा करके लिखा है।

इन सब बातों से स्पष्ट है कि 'अद्‌भुतसागर' वास्तव में एक विशद और अद्‌भुत ग्रंथ है।

★ केशवार्क

केशवार्क का बनाया हुआ 'विवाह-वृन्दावन' नामक एक मुहूर्त ग्रंथ है जिसमें विवाह संबंधी मुहूर्तों का अच्छा परिचय है। इसकी टीका भी पीछे की गयी थी। ये गणेश दैवज्ञ के पिता केशवाचार्य से भिन्न थे और उनसे बहुत पहले हुए थे। 'गणक-तरंगिणी' के अनुसार इनका समय शक ११६४ (१२४२ ई०) के लगभग है क्योंकि गणेश दैवज्ञ की टीका से प्रकट होता है कि ग्रन्थ निर्माण-काल में अयन १२ अंश था।

★ कालिदास

इतिहास के बहुत-से विद्वान् कालिदास को 'शकुन्तला' के रचयिता प्रसिद्ध कालिदास समझते हैं और इनका समय विक्रमीय संवत् के आरम्भ में समझते हैं,

१ सकलवसुधाधिनाथश्रीमद्बल्लालसेनदेवेन ।
अयनद्वयं यथावत् परीक्ष्य संलिख्यते सवितुः ॥
इदानीं दृष्टिसंवादादयनं दक्षिणं रवेः ।
भवेत्पुनर्वसोरर्धे विशाखायामुत्तरायणम् ॥ गणक-तरंगिणी, पृष्ठ ४४।

परन्तु यह ठीक नही है। इन्होने 'ज्योतिर्विदाभरण' नामक एक मुहूर्त ग्रथ की रचना की है जिसमें २० अध्याय है। अन्तिम अध्याय में राजा विक्रमादित्य की सभा का वर्णन किया गया है और लिखा गया है कि कलि सवत् ३०६८ में यह ग्रथ रचा गया।[1] परन्तु यह या तो लोगो को ठगने के लिए स्वय ग्रथकार ने लिखा है अथवा किसी अन्य ने भ्रम से लिख दिया है, क्योकि इसमे अयनाश निर्णय करने और क्रातिसाम्य का विचार करने की बाते सिद्ध करती हैं कि यह ग्रथ इतना पुराना नही हो सकता। अयनाश के सबध मे प्रथमाध्याय के १८ वे श्लोक मे लिखा है "शाक शराम्भोधियुगोनितो हृतो मान खतर्कैरयनाशका स्मृता।" क्रातिसाम्य कब सभव होता है, इस विषय मे चौथे अध्याय मे लिखा है

ऐन्द्रे त्रिभागे च गते भवेतयो शेषे ध्रुवोपक्रमसाम्यसभव।
यदेकरेखास्थितभेशखण्डगू स्याता तदाऽपक्रमचक्रवालके॥

इससे प्रकट है कि कालिदास का समय वही है जो केशवार्क का है। इसलिए ये 'रघुवश' या 'शकुन्तला' के कालिदास से भिन्न है।[2]

★ महादेव

महादेव ने पैतामह आर्यभट, ब्रह्मगुप्त, भास्कर, आदि आचार्यों के सिद्धातो के अगाध समुद्र को पार करने के लिए 'महादेवी सारणी' नामक एक नौका शक १२३८ मे तैयार की थी। इसमे ग्रथारभकाल के ग्रहो का क्षेपक देकर ग्रहो की वार्षिक गति दे दी गयी है, जिसकी सहायता से ग्रहो की स्थिति बडी सरलता से ज्ञात हो जाती है। इसमे कुल ४२१ श्लोक है।

इसी के आदर्श पर नृसिह दैवज्ञ ने शक १४८० मे 'महादेवी' नाम की एक दूसरी सारणी भी तैयार की, जिसमे *अयनाश* १३°४५' है और पलभा[3] ४½ अगुल।

★ महेन्द्रसूरि

महेद्रसूरि फिरोजशाह बादशाह की सभा के प्रधान पडित थे। उन्होने 'यन्त्रराज' नामक यत्र भी १२९२ शक मे बनाया था। इनकी लिखी 'यन्त्रराज' नामक पुस्तक की टीका इनके शिष्य मलयेन्दुसूरि ने लिखी थी जिसको उपपत्ति के साथ

१ **वर्षे सिन्धुरदर्शनाम्बरगुणैर्याते कले सम्मिते।**
मासे माधवसंज्ञिके च विहितो ग्रन्थक्रियोपक्रम॥ गणक-तरगिणी, पृष्ठ ४६।

२ गणक-तरगिणी, पृष्ठ ४६-४७।

३ अर्थात् विषुव के दिन मध्याह्न के समय १२ अगुल के शंकु की छाया।

महामहोपाध्याय सुधाकर द्विवेदी ने शक १८०४ (१८८२ ई०) मे चन्द्रप्रभा प्रेस से प्रकाशित किया था। इन्होने सूर्य की परम क्रान्ति २३°३५′ पायी और अयनाश की वार्षिक गति ५४ विकला लिखी है। इस ग्रथ मे पाँच अध्याय हैं जिनके नाम हैं—गणिताध्याय, यत्रघटनाध्याय, यत्ररचनाध्याय, यत्रशोधनाध्याय और यत्र-विचारणाध्याय। सुधाकर द्विवेदी समझते हैं कि यह ग्रथ शायद किसी फारसी ग्रथ का अनुवाद है।[1]

★ महादेव

महादेव ने पचाग बनाने की सुविधा के लिए 'कामधेनु' नामक करण-ग्रथ शक १२७९ (१३५७ ई०) मे बनाया था।

★ पद्मनाभ

'ध्रुवभ्रमयत्र' नाम का ग्रथ पद्मनाभ ने १३२० शक के लगभग रचा था जिसमे केवल ३११ श्लोक हैं। इसमे ध्रुवभ्रमयत्र का वर्णन है जिससे रात को ध्रुवमत्स्य नामक नक्षत्र पुज को वेध करके समय का ज्ञान करने की रीति बतायी गयी है। इस ग्रथ की टीका स्वय ग्रन्थकार ने की है। दिन मे सूर्य के वेध से समय का ज्ञान करने की रीति है जिससे लग्न का ज्ञान भी हो सकता है। २८ नक्षत्रो के योगतारो के मध्योन्नताश भी दिये गये हैं, जिससे प्रकट होता है कि यह २४ अक्षाश के स्थानो के लिए बनाया गया था।

★ दामोदर

दामोदर का 'भटतुल्य' नामक आर्यभटानुसारी एक करण-ग्रथ है जिसका आरभ वर्ष शक १३३९ (१४२७ ई०) है, ये पद्मनाभ के शिष्य थे और इन्होने 'ध्रुवभ्रमयत्र' पर टीका लिखी थी। इसमे अयनगति ५४ विकला वार्षिक बतायी गयी है। इन्होने नक्षत्रो के योगतारो के भोगाश और शर दिये है जो अन्य ग्रथ-कारो के भोगाशो मे कुछ भिन्न हैं, इससे जान पडता है कि इन्होने स्वय वेध कर के इनका निश्चय किया है।

★ गगाधर

गगाधर ने कलि सवत् ४५३५ (शक १३५६) मे प्रचलित 'सूर्य-सिद्धात' के अनुसार एक तत्र-ग्रथ रचा है जिसका नाम है 'चाद्रमानाभिधान तत्र।' इसमे चाद्र मास के अनुसार ग्रहो की गति देकर ग्रह स्पष्ट करने की रीति बतायी गयी है।

१. गणक-तरंगिणी, पृष्ठ ४९।

★ मकरन्द

मकरद ने शक १४०० (१४७८ ई०) में 'सूर्य-सिद्धांत' के अनुसार तिथ्यादि साधन के लिए अपने ही नाम की एक सारणी काशी मे रची थी, जिसके अनुसार काशी और मिथिला आदि प्रान्तो मे अब भी पचाग बनाये जाते हैं। यह सारणी दिवाकर दैवज्ञ के मकरद-विवरण और विश्वनाथ के उदाहरण के साथ प्रकाशित हुई है और आज भी मिलती है। गोकुलनाथ ने १६८८ शक मे इसकी उपपत्ति भी लिखी है। इस सारणी का अनुवाद अग्रेजी मे बेटली ने किया था। इसी का विस्तार करके मिरजापुर के प० रघुबीरदत्त ज्योतिषी ने 'सिद्धखेटिका' नामक एक सारणी तैयार की थी जो शाके १८०५ (१८८३ ई०) मे भारतमित्र यत्रालय से प्रकाशित हुई थी। इस सारणी मे तिथि, नक्षत्र, योगो और ग्रहो की दैनिक गति दी गयी है जिससे इन विषयो की स्पष्ट गणना बहुत ही सुगमता से की जा सकती है। इसमे पचाग बनाने की प्राय सभी बाते बतायी गयी हैं। इसमे बीज-सस्कार करने के लिए भी कहा गया है और इसका नियम बताया गया है।

★ केशव द्वितीय

'विवाह-वृदावन' के रचयिता केशव की चर्चा पहले हो चुकी है जिन्हे 'गणक-तरगिणी' मे केशवार्क कहा गया है। दूसरे केशव उनसे भिन्न है। यह 'ग्रह-लाघव' के प्रसिद्ध लेखक गणेश दैवज्ञ के पिता और ज्योतिष के महान् आचार्य और सशोधक थे। इनका जन्म पश्चिमी समुद्र के तीर नदिग्राम मे हुआ था। इनके जन्म का समय कही नही लिखा मिलता। सूर्य, चद्रमा और ताराग्रहो का वेध करके गणना ठीक करने के लिए इन्होने बडा जोर दिया है और भविष्य के लिए पथप्रदर्शक का काम किया है। इनकी प्रसिद्ध पुस्तक 'ग्रहकौतुक' है जिसकी मिताक्षरा टीका भी इन्होने स्वय लिखी थी। इससे प्रकट होता है कि ग्रहों के वेध में ये निपुण थे। ब्राह्म, आर्यभटीय और सूर्य-सिद्धात आदि के अनुसार आये हुए ग्रहो के स्थानो में बहुत अन्तर देखकर इन्होंने लिखा है कि किस ग्रह के लिए कितना बीज-सस्कार देना चाहिये और बताया है कि सदैव वर्तमान घटनाओ को देखकर ग्रहगणित करना चाहिये।

एव बहुधतरं भविष्ये सुगणकैर्नक्षत्रयोगग्रहयोगोदयास्तादिभिः वर्तमान घटनामवलोक्य न्यूनाधिकभगणाद्यैर्ग्रहगणितानि कार्याणि। यद्वा तत्कालक्षेपक-वर्ष-भोगान् प्रकल्प्य लघुकरणानि कार्याणि।[1]

१ भारतीय ज्योतिषशास्त्र, पृष्ठ २५९।

'ग्रहकौतुक' का आरम्भ शक १४१८ (१४९६ ई०) मे हुआ था। इसके अतिरिक्त इन्होंने 'पर्वग्रहसिद्धि', 'जातकपद्धति', 'जातकपद्धतिनिवृत्ति', 'ताजकपद्धति', 'सिद्धातपासना-पाठ', 'मुहूर्त-तत्त्व', 'कायस्थादि-धर्म-पद्धति', 'कुण्डाष्टक-लक्षण', 'गणित-दीपिका' नामक पुस्तको की रचना की थी। इससे प्रकट है कि ये ज्योतिष की सभी शाखाओ के अच्छे विद्वान् थे और ग्रहो की वेध सम्बन्धी बातो को आजकल के वैज्ञानिको की तरह लिखते थे।

*** गणेश दैवज्ञ**

गणेश दैवज्ञ भी अपने पिता के समान ज्योतिष की प्राय सभी शाखाओ के अच्छे विद्वान् थे और ग्रहो का वेध करके उनकी ठीक-ठीक गणना करने के पक्ष मे थे।[1] इनका मुख्य ग्रथ 'ग्रहलाघव' है जिसमे ग्रहो की गणना करने के लिए ज्या कोटिज्या आदि से काम नही लिया गया है। यह बडे पाडित्य की बात है। 'ग्रहलाघव' का आरम्भ शक १४४२ (१५२० ई०) है। यह इतना अच्छा ग्रथ समझा गया था कि इसकी कई टीकाएँ हुई। शक १५०८ मे गगाधर ने, शक १५२४ मे मल्लारि ने और लगभग शक १५३४ मे विश्वनाथ ने इसकी टीकाएँ लिखी थी। सुधाकर द्विवेदी ने इस पर उपपत्ति के साथ एक सुन्दर टीका लिखी है जिसमे मल्लारि और विश्वनाथ की टीकाओ का भी समावेश है। इस ग्रथ का प्रचार महाराष्ट्र, गुजरात, कर्नाटक, ग्वालियर आदि क्षेत्रो मे अब भी है।

इस ग्रंथ मे मध्यमाधिकार, स्पष्टाधिकार, पचताराधिकार, त्रिप्रश्न, चन्द्रग्रहण, सूर्यग्रहण, स्थूल ग्रहण साधन, उदयास्त छाया, नक्षत्रछाया, शृगोन्नति, ग्रहयुति और महापात नामक १४ अधिकार है। विश्वनाथ और मल्लारि ने अपनी टीकाओ मे पचाग-ग्रहणाधिकार का नाम भी लिखा है।

'बृहत्तिथिचितामणि' और 'लघुतिथिचितामणि' नामक सारणियाँ भी गणेश दैवज्ञ की बनायी हुई हैं, जिनसे पचाग के लिए तिथि, नक्षत्र, तथा योगो का साधन बहुत सरलता से और कम समय मे किया जा सकता है। इनके अतिरिक्त निम्नाकित ग्रथ भी गणेश दैवज्ञ के लिखे हुए हैं —

सिद्धात-शिरोमणि टीका, लीलावती टीका (शक १४६७), विवाह-वृन्दावन टीका (शक १४७६), मुहूर्त तत्त्व टीका, श्राद्धादि निर्णय, छन्दोऽर्णव टीका, सुधीररजनी, तर्जनी यन्त्र, कृष्ण जन्माष्टमी-निर्णय और होलिका-निर्णय।

१ कथमपि यदिदं चेद्भूरिकाले श्लथं स्यान्मुहुरपि परिलक्ष्येन्दुग्रहाद्युक्षयोगम्।
प्रथमसगुरुतुल्यप्राप्तशुद्धिप्रकारैः कथितसदुपपत्त्या शुद्धिकेन्द्रे प्रचाल्ये।
—बृहत्तिथि-चितामणि (गणक-तरगिणी, पृष्ठ ६३ के अनुसार)।

★ लक्ष्मीदास

लक्ष्मीदास ने शक १४२२ (१५०० ई०) मे भास्कराचार्य के 'सिद्धात-शिरोमणि' की टीका उपपत्ति और उदाहरण के साथ की थी, जिसका नाम है गणिततत्त्व चितामणि।'

★ ज्ञानराज

'सिद्धात-सुन्दर' नामक करण-ग्रन्थ के कर्ता ज्ञानराज थे। यह वर्तमान सूर्य-सिद्धात के अनुसार बनाया गया है। इसका क्षेपक १४२५ शक का है, इसलिए यही इसका रचना काल समझना चाहिये। पहले गोलाध्याय है जिसमे सृष्टिक्रम, लोकसस्था, आदि १२ अध्याय है और गणिताध्याय मे मध्यमाधिकार आदि ८ अध्याय है। मध्यमाधिकार मे बीज-सस्कार की बात भी कही गयी है। यह नही बताया है कि इनके समय मे अयनाश क्या था, परतु अयनाश की वार्षिक गति एक कला बतायी है और लिखा है कि मध्याह्न छाया से जाने हुए स्पष्ट सूर्य और गणना से आये हुए स्पष्ट सूर्य का अतर निकाल कर अयनाश ठीक-ठीक ज्ञान कर लेना चाहिये जैसा 'सूर्यसिद्धात' मे बताया गया है।

★ सूर्य

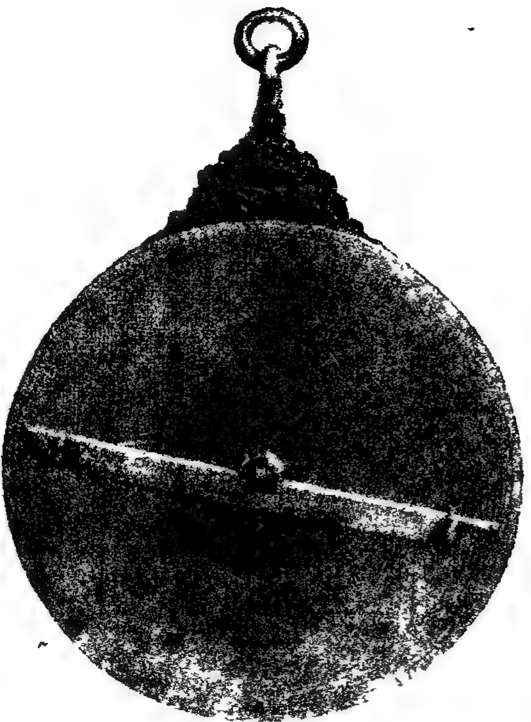
सूर्य ज्ञानराज के पुत्र थे। भास्कराचार्य के बीजगणित के भाष्य मे इन्होने अपना नाम सूर्यदास लिखा है और एक अन्य ग्रन्थ मे अपना नाम सूर्यप्रकाश लिखा है। लीलावती की टीका 'गणितामृत-कूपिका' इन्ही की लिखी हुई है, जो १४६३ शक की रचना है। उस समय इनकी अवस्था ३४ वर्ष की थी। इसलिए इनका जन्म शक १४२९ मे हुआ था। इनके लिखे ग्रन्थो के नाम है लीलावती-टीका बीज (गणित) टीका, श्रीपति पद्धति गणित, बीजगणित ताजिक ग्रन्थ, काव्यद्वय और बोध-सुधाकर वेदात ग्रथ। कोलब्रुक के अनुसार इन्होने सम्पूर्ण सिद्धात-शिरोमणि टीका भी लिखी है, परतु लीलावती की टीका मे इन्होने स्वय जिन अपने आठ ग्रथो के नाम लिखे हैं उनमे यह नाम नही आया है।

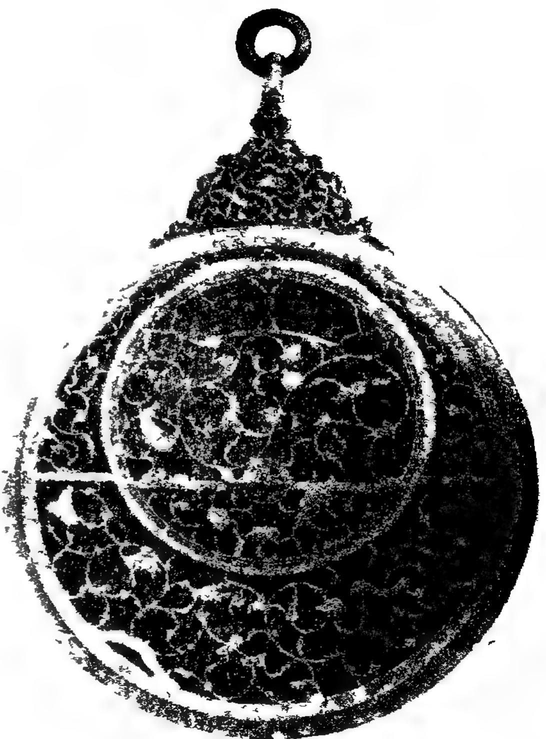
★ अनत प्रथम

अनत प्रथम ने शक १४४७ मे पचाग बनाने के लिए 'अनतसुधारस' नामक ग्रथ लिखा था, जो सुधाकर द्विवेदी के मत से एक सारणी है।

★ ढुढिराज

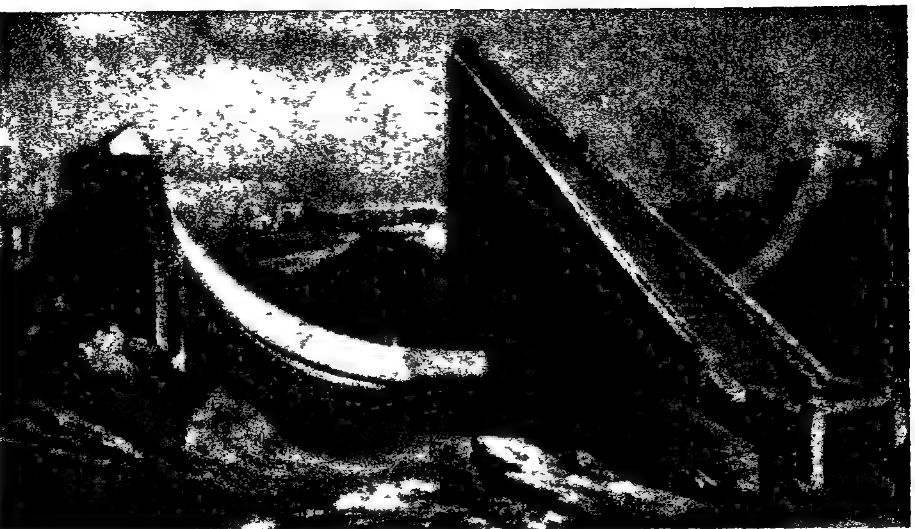
ढुढिराज का बनाया 'जातकाभरण' ग्रथ बहुत प्रसिद्ध है, जिससे जन्मपत्री बनायी जाती है। इन्होने अनन्तकृत 'सुधारस' की टीका भी की है, जिसका नाम





यंत्रराज

जयसिंह के बनवाये पीतल के ये यंत्र जयपुर में सुरक्षित हैं।



सम्राट्-यंत्र, दिल्ली

सन् १८१५ मे प्रकाशित एक चित्र मे। अब इस यंत्र का पुनरुद्धार कर दिया गया है। दिल्ली के प्रसिद्ध 'जंतर-मंतर' नामक उद्यान मे यह सबसे बड़ा यंत्र है। इससे तारो की स्थिति बताने वाले निर्देशांक (विषुवांश और क्रांति) नापे जाते है।

'सुधारसकरणचषक' है और ग्रहलाघवोदाहरण, ग्रहफलोपपत्ति, पचागफल, कुडकल्पलता ग्रथो को भी लिखा है । इन्होने अपना जन्मकाल कहीं नही लिखा है परतु ज्ञानराज के यह शिष्य थे, इसलिए उनके पुत्र 'सूर्य' के समकालीन अवश्य रहे होगे ।

★ नीलकठ

नीलकठ ने 'ताजिक नीलकठी' नामक बहुत प्रसिद्ध ग्रथ लिखा है, जिसे ज्योतिषी लोग वर्षफल बनाने के लिए अब भी काम मे लाते है । इसमे फारसी और अरबी के बहुत-से शब्द आये है । यह अकबर बादशाह के दरबार के सभा-पडित थे और मीमामा तथा साख्यशास्त्र के अच्छे विद्वान् थे । नीलकठी का निर्माण-काल शक १५०९ (१५८७ ई०) है । इस पर विश्वनाथ ने उदाहरण के साथ एक टीका शक १५५१ मे की थी । सुधाकर द्विवेदी लिखते है कि इन्होने एक जातकपद्धति भी लिखी है, जो मिथिला मे बहुत प्रसिद्ध है ।

★ रामदैवज्ञ

रामदैवज्ञ नीलकठ के छोटे भाई थे । शक १५२२ मे इनका रचित 'मुहूर्तचितामणि' ग्रथ बहुत प्रसिद्ध है और ज्योतिष के विद्यार्थियो को पढाया जाता है । इस प्रान्त मे यात्रा, विवाह, उत्सव आदि सभी बातो के लिए इसी ग्रन्थ के आधार पर साइत निकाली जाती है । इस ग्रथ पर 'पीयूषधारा' नामक टीका इनके भतीजे नीलकठ के पुत्र गोविन्द ने लिखी है, जो बहुत प्रसिद्ध है ।

इनका रचा 'रामविनोद' नामक एक करण-ग्रथ भी है, जिसे अकबर बादशाह के कृपापात्र जयपुर के महाराज रामदास की प्रसन्नता के लिए शक १५१२ मे पचाग बनाने के लिए लिखा गया था । इसमे वर्षमान, क्षेपक और ग्रहगति वर्तमान सूर्य-सिद्धात के अनुसार दिये गये हैं । बीज-सस्कार भी दिया गया है । इसमे ११ अधिकार और २८० श्लोक है ।

★ कृष्ण दैवज्ञ

कृष्ण दैवज्ञ बादशाह जहाँगीर के प्रधान पडित थे । भास्कराचार्य के बीजगणित की नवाकुर नामक सुन्दर टीका इनकी लिखी हुई है जिसमे कई नवीन कल्पनाएँ हैं । सूर्य-सिद्धात की गूढार्थप्रकाशिका टीका के लेखक रगनाथ लिखते है कि कृष्णदैवज्ञ ने श्रीपतिपद्धति की टीका और 'छादक-निर्णय' भी लिखा है । इन्होने अपना समय नही लिखा है । सुधाकर द्विवेदी का अनुमान है कि इनका जन्मकाल शक १४८७ के लगभग होगा ।

★ गोविंद दैवज्ञ

गोविंद दैवज्ञ नीलकठ दैवज्ञ के पुत्र और राम दैवज्ञ के भतीजे थे। इन्होने 'मुहूर्तचिन्तामणि' की 'पीयूषधारा' टीका काशी मे शक १५२५ (१६०३ ई०) मे लिखी थी। यह ज्योतिष, व्याकरण, काव्य, साहित्य आदि मे निपुण थे और १४७१ शक के आश्विन शुक्ल ७ रविवार पुनर्वसु नक्षत्र मे उत्पन्न हुए थे।

★ विष्णु

विदर्भ देश मे पाथरी नाम का एक प्रसिद्ध गाँव है जिससे पच्छिम १० कोस पर गोदा नदी के उत्तर किनारे पर गोलग्राम एक गाँव है। इसमे एक कुल ऐसा था जिसमे बहुत-से विद्वान् और ग्रथकार हो गये है। विष्णु इसी कुल के थे। इनका लिखा 'सौरपक्षीय' एक करण-ग्रथ है जिसका आरम्भवर्ष शक १५३० है। इसकी टीका उदाहरण के साथ इनके भाई विश्वनाथ ने शक १५४५ मे की थी। 'सिद्धात-तत्त्व-विवेक' के कर्ता प्रसिद्ध कमलाकर इसी वश के थे।

★ मल्लारि

मल्लारि उपर्युक्त विष्णु के वश मे थे। इन्होने 'ग्रहलाघव' पर उपपत्ति सहित एक सुन्दर टीका लिखी है जिससे जान पडता है कि वेध के कामो मे यह बडे निपुण थे और समझते थे कि प्राचीन ज्योतिष ग्रथो मे गणना का जो भेद पड जाता है उसका कारण क्या है और बीज-सस्कार की आवश्यकता क्यो पडती है। इन्होने अपना समय नही लिखा है, परतु सुधाकर द्विवेदी का मत है कि यह शक १४९३ मे उत्पन्न हुए होगे।

★ विश्वनाथ

विश्वनाथ भटोत्पल के समान टीकाकार थे और पूर्ववर्णित गोलग्राम मे उत्पन्न हुए थे। 'ताजिकनीलकठी' की टीका मे वह लिखते हैं कि शक १५५१ (१६२९ ई०) मे यह टीका पूरी हुई थी। विष्णुकृत करण-ग्रन्थ की टीका १५४५ मे की गयी थी। इन्होने जो उदाहरण दिये हैं वे शक १५३४ के हैं। इनके उदाहरण मुख्यत १५०८, १५३०, १५३२, १५४२ और १५५५ शक के है।

इन्होने 'सूर्य-सिद्धात' पर 'गहनार्थप्रकाशिका' तथा 'सिद्धातशिरोमणि,' करण-कुतूहल, मकरद, ग्रहलाघव, गणेश दैवज्ञ कृत 'पातसारणी,' अनत सुधारस, और रामविनोद-करण पर टीकाएँ तथा नीलकठी पर समातत्रप्रकाशिका टीका (शक १५५१ मे) लिखी हैं। इन सब ग्रथो को इन्होने काशी मे लिखा था।

★ नृसिंह

नृसिंह भी गोलग्राम के प्रसिद्ध वंश में उत्पन्न हुए थे और इन्होंने अपने चाचा विष्णु तथा मल्लारि से शिक्षा पायी थी। शक १५३३ में 'सूर्यसिद्धांत' पर सौरभाष्य नामक टीका उपपत्ति के साथ तथा 'सिद्धांत-शिरोमणि' पर वासना-वार्तिक टीका १५४३ शक में लिखी थी, जिनमें पर्याप्त विशेषता है। इससे प्रकट होता है कि ये गणित ज्योतिष में बडे निपुण थे।

★ रंगनाथ

रंगनाथ विदर्भ प्रान्त के पयोष्णी नदी के तीर पर दधिग्राम के प्रसिद्ध कुल में उत्पन्न हुए थे। इन्होंने 'सूर्यसिद्धांत' पर 'गूढार्थप्रकाशिका' टीका लिखी है, जो शक १५२५ (१६०३ ई०) में, जिस दिन इनके पुत्र मुनीश्वर का जन्म हुआ था, प्रकाशित हुई थी। यह ज्योतिष सिद्धान्त के अच्छे आचार्य थे, क्योंकि अपनी टीका उपपत्ति सहित लिखी है।

★ मुनीश्वर

मुनीश्वर रंगनाथ के पुत्र थे और शक १५२५ में उत्पन्न हुए थे। इन्होंने 'लीलावती' पर 'निसृष्टार्थदूती लीलावती-विवृति' नामक टीका, सिद्धान्त-शिरोमणि के गणिताध्याय और गोलाध्याय पर मरीचि नामक टीका और 'सिद्धान्तसार्वभौम' नामक स्वतंत्र सिद्धान्त ग्रन्थ शक १५६८ में रचा था। 'गणक-तरंगिणी' के अनुसार इन्होंने 'पाटीसार' नामक स्वतंत्र गणित पर भी पुस्तक लिखी थी। यह प्रसिद्ध भास्कराचार्य के बडे प्रशंसक थे। 'सिद्धांतसार्वभौम' के वर्षमान, ग्रहभगण, आदि सूर्य-सिद्धांत से लिये गये हैं।

इनका दूसरा नाम विश्वरूप था। यह शाहजहाँ बादशाह के आश्रय में थे और उनके राज्याभिषेक का समय इन्होंने अपनी पुस्तक में लिखा है।

दिवाकर

दिवाकर गोलग्राम के प्रसिद्ध ज्योतिषियों के कुल में शक १५२८ में उत्पन्न हुए थे। शक १५४७ में 'जातक मार्गपद्म' नामक जातक ग्रंथ लिखा था। 'केशवीजातक पद्धति' पर प्रौढमनोरमा टीका भी इन्हीं की लिखी हुई है। इन्होंने शक १५४१ में मकरंदसारणी पर मकरंद विवरण नामक उदाहरण सहित टीका भी लिखी थी।

★ कमलाकर

कमलाकर ज्योतिष के एक एक प्रसिद्ध आचार्य हैं। इनका जन्म शक १५३० (१६०८ ई०) के लगभग हुआ था।

'सिद्धाततत्त्वविवेक' कमलाकर का प्रसिद्ध सिद्धात-ग्रथ है, जिसे इन्होने काशी मे शक १५८० मे प्रचलित 'सूर्य-सिद्धान्त' के अनुसार लिखा था। इसमे बहुत-सी नवीन बातो का समावेश है, परतु इन्होने लिखा है कि 'सूर्य-सिद्धात' की गणना से यदि वेधसिद्ध गणना मे अतर दिखाई पडे तो भी उसमे बीज-संस्कार करके गणना न करनी चाहिये। एक प्रकार से इन्होने अमावस्या, पूर्णिमा आदि की परिभाषा ही बदल दी, अमावस्या वह क्षण नही रह गयी जब सूर्य और चद्रमा के भोगाशो का अतर वस्तुत शून्य हो, अमावस्या वह क्षण हो गयी जब 'सूर्य-सिद्धात' के अनुसार सूर्य और चद्रमा के भोगाशो का अतर शून्य निकले। इस प्रकार यह भी सभव हो गया कि सूर्य-ग्रहण का मध्य अमावस्या से कई घटे बाद या पहले हो। इस विषय पर इनके वचन[1] 'सूर्य-सिद्धात' के अधभक्त बडे जोरो मे अपने समथन में उपस्थित करते है। इन्होने भास्कराचार्य और मुनीश्वर की कई ठीक बातो का खडन केवल इसलिए किया है कि ये 'सूर्य-सिद्धान्त' के अनुकूल नही है। स्पष्ट है कि कमलाकर के समय मे ज्योतिष का पतन इतना हो चुका था कि उन्नति करना भी पाप समझा जाने लगा।

'सिद्धाततत्त्वविवेक' मे कुछ नयी बाते भी लिखी गयी है जिनसे पता चलता है कि यह विदेशी ज्ञान को एक हद तक अपनाना अनुचित नही समझते थे। किसी भारतीय ज्योतिष ग्रथ मे ध्रुवतारा के चलने की बात नही लिखी है, परतु इन्होने लिखी है। स्थानो के पूरब-पच्छिम अतर को पुराने ज्योतिषी रेखाश या देशान्तर कहते थे, परतु इन्होने इसका नाम 'तूलाश' रखा है, जो फारसी के 'तूल' (लबाई) शब्द से निकला है। विषुववृत्त पर खालदात्त नगर को मुख्य याम्योत्तर वृत्त पर समझ कर २० नगरो के अक्षाश और तूलाश दिये गये है जिसके अनुसार कुछ नगरो के अक्षाश और तूलाश नीचे दिये जाते है

	अक्षांश		तूलांश	
	अश	कला	अश	कला
उज्जयिनी	२२	१	११२	०
इद्रप्रस्थ	२८	१३	११४	१८
सोमनाथ	२२	३५	१०६	०
काशी	२६	५५	११७	२०

१ अदृष्टफलसिद्ध्यर्थं निर्बीजार्कोक्तमेव हि।
गणितं यदि दृष्टार्थं तद् दृष्ट्युद्भवतः सदा ।। मध्यमाधिकार, ३२६।

	अक्षांश		तूलांश	
	अंश	कला	अंश	कला
लखनऊ	२६	३०	११४	१३
कन्नौज	२६	३५	११५	०
लाहौर	३१	५०	१०९	२०
काबुल	३४	४०	१०४	०
समरकंद	३९	४०	९९	०

इसमे स्वय काशी का अक्षाश डेढ अश के लगभग अशुद्ध है। तूलाशो मे भी २ अश तक न्यूनता और अधिकता है। खालदात्त का औसत देशातर यहाँ के आँकडो मे ३४° ५२′ ग्रिनिच से पच्छिम निकलता है। वहाँ भूमध्य-रेखा पर कोई नगर नही है। निकटतम नगर जिसका नाम सभवत खालदात्त हो सकता है काबेडेल्लो है जिसका देशान्तर ३४° ५०′ पश्छिम और अक्षाश ७°०′ दक्षिण है।

इन्होने तुरीय यत्र से वेध करने की रीति विस्तार के साथ लिखी है। यह भी लिखा है कि सूर्यग्रहण काल मे चद्रमा पर रहने वालो को पृथ्वी पर ग्रहण लगा हुआ दिखाई पडता है जो बिलकुल ठीक है। मेघ, भूकप, उल्कापात का कारण भी लिखा है जो कुछ-कुछ ठीक है। अकगणित, रेखाणित, क्षेत्रविचार और ज्यासाधन की रीतियाँ कई बातो मे बिलकुल नयी है। अधिकाश सिद्धात-ग्रथो मे ३४३८ की त्रिज्या के अनुसार ज्याओ की सारणी दी गयी है, परतु कमलाकर के ग्रथ में त्रिज्या ६० मान कर प्रत्येक अश की ज्या दी गयी है जो गणना के लिए बडी सुगम है। ग्रह के भोगाश से विषुवाश निकालने की सारणी भी है। यह बात किसी और सिद्धात ग्रथ मे नही है। इन सब नवीन बातो को लिखते हुए भी यह ज्योतिष की शोध के बिलकुल विरुद्ध थे यह दु खजनक बात है।

पूर्वलिखित मुनीश्वर इनके समकालीन थे और दोनो एक दूसरे के प्रबल विरोधी थे। मुनीश्वर भास्कराचार्य के पक्ष मे थे और यह सूर्य-सिद्धात के पक्ष मे।

'सिद्धाततत्त्वविवेक' ज्योतिष की आचार्य परीक्षा मे नियत है और इस पर प्रतापगढ (अवध) के मेहता सस्कृत विद्यालय के ज्योतिष के अध्यापक प० गगाधर मिश्र ज्योतिषाचार्य की अच्छी टीका है। इसका एक सस्करण सुधाकर द्विवेदी और मुरलीधर झा की टिप्पणी सहित व्रजभूषणदास कपनी ने सन् १९२४ मे प्रकाशित किया था।

★ नित्यानद

नित्यानद कुरुक्षेत्र के समीप इद्रपुरी के रहने वाले थे और इन्होने सवत् १६९६ (१६३९ ई०) मे 'सिद्धातराज' नामक ग्रथ की रचना की थी। इसमे गोला-

ध्याय और गणिताध्याय के प्राय सब 'अधिकार' हैं। विशेषता यह है कि इसमे वर्ष-मान सायन है और इसी के अनुसार ग्रहो के भगणो के मान दिये गये है, और मीमासाध्याय मे कहा गया है कि सायन मान ही देवर्षि के मत के अनुसार ठीक है, निरयन नही। इनके अनुसार एक कल्प मे सायन दिनो की सख्या १५७७८४७७४८१०१ है। इसलिए १ वर्ष मे ३६५.२४२५ दिन अथवा ३६५ दिन १४ घडी ३३ पल ७.४ विपल होते हैं। इस समय सूक्ष्म यत्रो से निकाला हुआ सायन वर्ष का मान ३६५ दिन १४ घडी ३१ पल ५३.४ विपल है।

ग्रहो को स्पष्ट करने से लिए बीज-सस्कार करने को भी कहा गया है। 'भग्रहयुत्यधिकार' मे ८४ तारो के भोगाश और शर दिये गये हैं।

१६

जयसिंह और उनकी वेधशालाएँ

महाराज सवाई जयसिंह द्वितीय, जयपुर के थे और उनका जन्म १६८६ ई०[1] में हुआ था।[2] तेरह वर्ष की आयु में वह आँबेर राज्य की गद्दी पर बैठे। उसके थोड़े ही वर्ष बाद औरंगजेब का देहान्त हुआ। अपना राज्य स्थापित करने में उन्हें पहले तो कठिनाई हुई, परन्तु १७०८ में उन्होंने पूरे प्रांत पर अपना अधिकार कर लिया। १७१९ में मुहम्मदशाह ने उन्हें आगरा प्रांत का शासक नियुक्त किया और कुछ ही काल बाद मालवा का। उनकी मृत्यु १७४३ में हुई।

जयसिंह का काल अत्यन्त अशांतिमय था, परन्तु उन्होंने अधिकतर चाणक्य-नीति से काम लिया और सफलता पायी। उन्होंने नयी राजधानी स्थापित की, जिसका नाम जयनगर अथवा जयपुर पड़ा। उनके समय में वह विद्या का केन्द्र बन गया। उन्होंने बहुत-सी धर्मशालाएँ और सराय बनवायी, और पाँच प्रमुख नगरों में ज्योतिष वेधशालाएँ स्थापित की। उन्होंने वैज्ञानिक अन्वेषण का नवीन मार्ग खोज निकाला और उसमें उन्हें पर्याप्त सफलता भी मिली। इस बारे में उनकी लगन आज भी अनुकरणीय है। उनकी वेधशालाएँ भारतीय इतिहास के अन्धकारमय काल में परम उज्ज्वल प्रकाश-स्तंभ की तरह उत्पन्न हुई।

बचपन में ही जयसिंह को ज्योतिष से प्रेम था और जैसा उन्होंने स्वयं लिखा है, सदा अनुशीलन करते रहकर इसके सिद्धांतों और नियमों का प्रगाढ़ ज्ञान

१ यह वही वर्ष है जिसमें प्रसिद्ध ब्रिटिश वैज्ञानिक न्यूटन की 'प्रिंसिपिया' नामक पुस्तक समाप्त हुई। इस पुस्तक में गति-विज्ञान के आधुनिक सिद्धांत हैं।

२. इस अध्याय की अधिकांश बातें के० महोदय द्वारा लिखित 'ए गाइड टु दि ऑब्जर्वेटरीज ऐट दिल्ली, जयपुर, उज्जैन एंड बनारस' से ली गयी हैं।

उन्होने प्राप्त किया। परतु उन्होने देखा कि उस समय की सारणियो से गणना करने पर परिणाम दृक्तुल्य नही निकलता, अर्थात् उन्होने देखा कि आकाशीय पिडो की वेधप्राप्त और गणनाप्राप्त स्थितियो मे अतर रहता है। इसलिए उन्होने स्वय नवीन सारणियाँ बनाने का सकल्प किया। इस उद्देश्य के लिए उन्होने प्रत्येक रीति से सफलता पाने की चेष्टा की। उन्होने हिन्दू, मुसलिम और यूरोपियन ग्रथो का अध्ययन किया। कई विदेशी ग्रथो को एकत्र किया और उनका अनुवाद करा लिया। उन्होने इन सब कामो के लिए कई विद्वान् लगा रखे थे और उनमे से कुछ को तो उन्होने विदेश भी भेजा ताकि वे वहाँ से काम सीखकर आयें। उन्होने कुछ यूरोपियन तथा अन्य देश के ज्योतिषियो को अपने यहाँ आमत्रित कर लिया। पहले उन्होने दिल्ली मे एक बडी-सी वेधशाला बनवायी और सात वर्षों तक सावधानी से वेध आदि करते रहे, जिसका मुख्य उद्देश्य था एक नवीन तारा सूची बनाना। पीछे उन्होने जयपुर, उज्जैन, बनारस और मथुरा मे भी वेधशालाएँ स्थापित की।

★ ज्ञान कहाँ से प्राप्त किया ?

जयसिह के लेखो से तथा अन्य सामग्री से इस बात का पता चलता है कि वह इन ग्रथो से परिचित थे टालमी की 'ऐलमैजेस्ट', उलूगबेग की ज्यौतिष सारणियाँ, यत्रराज (ऐस्ट्रोलेब) पर कुछ ग्रथ, ला हायर की ज्यौतिष सारणियाँ, फ्लैमस्टीड की 'हिस्टारिया सेलेस्टिस ब्रिटैनिका', यूक्लिड की ज्यामिति, समतल तथा गोलीय त्रिकोणमिति पर कुछ पुस्तके और लघुगणक (लॉगरिथ्म) बनाने की रीति। अवश्य ही उन्होने अन्य पुस्तक भी पढी होगी, परतु उनका पता लगना असभव है, क्योकि उनका पुस्तकालय अब नष्ट हो गया है।

टालमी के 'सिनटैक्सिस' नामक ग्रथ ने यूरोप मे एक हजार वर्षों तक राज किया और अरब वालो मे भी अनुवाद के बाद इस ग्रथ का राज लगभग उतने ही काल तक बना रहा। जयसिह इस पुस्तक से अत्यन्त प्रभावित थे और उन्होने इसका अनुवाद अरबी पाठ से कराया। अनुवादकर्ता जगन्नाथ नाम के एक पडित थे, जो जयसिह के ज्योतिषियो के प्रधान थे। जगन्नाथ ने इस पुस्तक का नाम 'सम्राट्-सिद्धात' रखा। जगन्नाथ ने लिखा है कि जयसिह को नवीन यत्र बनाने का और नवीन रीतियाँ निकालने का बडा शौक था और इसमे वह बहुत चतुर थे। वेधशाला के लिए नाडी-यत्र, गोल-यत्र, दिगश-यत्र दक्षिणोदग्भित्ति, वृत्त-षष्ठाशक, सम्राट्-यत्र और जयप्रकाश – ये यत्र आवश्यक बताये गये है।

★ जयसिंह की सारणियाँ

'ज़िज मुहम्मदशाही' नाम का सारणी-समूह जयसिंह के आदेशानुसार बना। इसका नाम उस समय के सम्राट् मुहम्मद शाह के नाम पर रखा गया था। इस ग्रंथ की एक अपूर्ण प्रति जयपुर मे है, एक सम्पूर्ण फारसी अनुवाद ब्रिटिश म्यूज़ियम मे है। यह सारणी उलूग बेग की सारणी को परिशोधित करके बनायी गयी थी। भूमिका के अनुसार "उलूग बेग की सारणी ८४१ हिजरी के लिए थी। ज़िज मुहम्मदशाही ११३८ के लिए है, अर्थात् उलूग बेग की सारणी को बने २९७ वर्ष हो गये है। इतने समय मे अयन ४ अंश ८ विकला हुआ। ज़िज मुहम्मदशाही मे क्रांति आदि का मान गोल से लिया गया है।" आगे यह भी लिखा है "जयसिंह ने देखा कि तारो की स्थितियाँ प्रचलित सारणियो से, उदाहरणत सईद गुरगानी और खाकानी की नवीन सारणियो से या तसहीलात मुल्ला चाँद अकबरशाही से, या हिंदू या यूरोपीय ग्रथो से, अशुद्ध निकलती है और वेधप्राप्त स्थितियो मे बहुत अतर पडता है। विशेष कर अमावस्या के बाद चाँद दिखाई पडने मे गणना और आँख से देखी बात मे मेल नही है। परतु इन बातो पर धर्म-कर्म और राज्य की बाते आश्रित है। फिर, ग्रहो के उदय-अस्त मे भी वेध और गणना मे अतर रहता है और तथा चाद्र ग्रहणो मे, और अन्य कई बातो मे भी, बहुत अतर पडता है। तो उन्होने परम शक्तिमान् सम्राट् (मुहम्मद शाह) से इस बातकी चर्चा की। उन्होने प्रसन्न होकर उत्तर दिया कि 'आप ज्योतिष के सब भेदो को जानते है, आपने इसलाम के ज्योतिषियो और गणितज्ञो को, ब्राह्मणो और पडितो को, तथा यूरोप के ज्योतिषियो को एकत्र किया है और वेधशाला बनवायी है, तो आप ही इस प्रश्न को हल करने का कष्ट उठाये, जिससे गणना से मिले समय और घटना के वस्तुत होने के समय का अतर मिट जाय।'

"यद्यपि यह अत्यन्त कठिन कार्य था, तथापि उन्होने इस आज्ञा का पालन करने के लिए कमर कसी और दिल्ली मे वेधशाला के योग्य कई यत्र बनवाये, जैसे समरकद मे बने थे और जो मुसलमानी ग्रथो के अनुसार थे, जैसे पीतल का ज़ातुल-हल्का, जिसका व्यास वर्तमान गज से तीन गज था, और ज़ातुल शक्तैन, और ज़ातुल-ज़कर्तैन, और सद्स-फख्री और शामला।

"परतु यह देखकर कि पीतल के यत्र उतने सूक्ष्म वेध नही कर सकते थे जितना उन्होने समझा था, क्योकि ये यत्र छोटे होते है, उनमे कला के अक नही बन पाते, और उनकी धुरी घिस जाती है और उनमे हचक उत्पन्न हो जाती है, वृत्त के केंद्र हट जाते है, और यत्र के समतल विचलित हो जाते है, वे इस परिणाम पर

पहुँचे कि हिपार्कस और टालमी के वेधो मे अशुद्धियाँ इन्ही कारणो से उत्पन्न हुई होगी ।

"इसलिए उन्होने दारुल-खिलाफत शाह जहानाबाद .. (दिल्ली) मे स्वय आविष्कृत यत्र बनवाये, जैसे जयप्रकाश और रामयत्र और सम्राट्-यत्र, जिसका अर्धव्यास १८ हाथ है और जिसमे एक कला डेढ जौ के बराबर है । इन्हे पत्थर और चूने से बनवाया, जो पूर्णतया स्थिर रहते है, और उनके बनाने मे ज्या-मिति के नियमो पर ध्यान रखा गया और उन्हे याम्योत्तर तथा स्थान के अनुसार साधा गया, और नापने तथा स्थायी करने मे सावधानी रखी गयी । इससे वृत्तो के हिलने, केंद्रो के हिलने तथा हटने, और कलाओ की नापो मे सब असमानताएँ दूर हो गयी । इस प्रकार के वेधशाला बनाने की शुद्ध रीति स्थापित हुई और वह अतर जो तारो और ग्रहो की गणना-प्राप्त तथा वेधप्राप्त स्थितियो मे था, दूर कर दिया गया ।

"और इन वेधो की सचाई की परीक्षा लेने के लिए उन्होने उसी प्रकार के यत्र सवाई जयपुर, मथुरा, बनारस और उज्जैन मे बनवाये । जब ये वेधशालाएँ बन गयी तो देशातरो का सस्कार करने पर सब जगह के वेधो मे एकता पायी गयी ।

" जब वेधशालाएँ बन गयी तो तारो की स्थितियाँ प्रतिदिन देखी जाने लगी । जब इस काम मे कई वर्ष बीत चुके तो समाचार मिला कि यूरोप मे हाल मे कई वेधशालाएँ बनी है और वहाँ के विद्वान् भी इसी प्रकार के काम मे लगे है और वे बराबर परिश्रम कर रहे है कि ज्योतिष की सूक्ष्मताओ को शुद्धता से नापा जाय ।

"इस कारण पादरी मैन्यूअल के साथ कई चतुर व्यक्तियो को उस देश मे भेजा गया और नवीन सारणियाँ मँगाकर, जो तीस ही साल पहले रची गयी थी, और उसके पहले की भी सारणियाँ मँगाकर और उनकी जाँच करके वेधो से तुलना की गयी, तो पता चला कि चद्रमा की स्थिति मे आधे अश का अन्तर पडता है । इसलिए वे इस परिणाम पर पहुँचे कि यूरोप के यत्र उतनी नाप के और उतने बडे व्यास के नही बने थे, इसीसे उनमे जो गतियाँ नापी गयी थी वे पूर्णतया सच्ची नही थी ।[1] "

१ फ्लैमस्टीड का अधिकांश काम भित्ति-यंत्र से हुआ था, जिसका अर्धव्यास ७ फुट था । फ्लैमस्टीड के पास दो दूरदर्शक भी थे ।

★ यन्त्रराज

जयपुर में यन्त्रराजो (ऐस्ट्रोलेबो) का अच्छा सग्रह है। जयसिंह ने पहले बडे यन्त्रराजो से काम लेना चाहा, परन्तु ये सतोषप्रद न निकले। जयपुर मे सात यन्त्र-राज है लेकिन उनकी रचना एक प्रकार की नही है। साधारण यन्त्र मे धातु का एक वृत्त होता है जो अकित रहता है और एक कडी से लटकता रहता है। उस पर एक पट्टी घूम सकती है जिसको आकाशीय पिंड की दिशा मे साधा जाता है। इस प्रकार उस पिंड का उन्नताश ज्ञात हो जाता है।

अरब वाले बहुत पहले से ही अच्छे यन्त्रराज बनाने लग गये थे। सत्रहवी शताब्दी तक यह प्रधान यन्त्र था। साधारणत यह पीतल का बनता था और इसका व्यास २ इच से लेकर कई फुट तक होता था। अच्छे यन्त्रराजो मे गणना की सुविधा के लिए कई पत्र रहते थे जिन पर विशेष रेखाएँ खिची रहती थी। इनसे लेखाचित्रीय रीतियो से वही फल प्राप्त किया जा सकता था जो लबी गणना से प्राप्त होता था। सक्षेप मे यन्त्रराज की रचना इस प्रकार की होती है

यन्त्रराज का उदर यह धातु का गोल पत्र होता है जिसकी बारी उठी हुई होती है, अर्थात् यह छिछली थाली के समान होता है। यन्त्र के अन्य भाग इसी मे डाले जाते है। इसको अरबी मे उम्म (माँ) कहते है।

उम्म के भीतर जाने योग्य एक वृत्ताकार पत्र मे झँझरी की तरह कटा रहता है। देखने मे ऐसा जान पडता है कि बहुत-सी पत्तियाँ बनी हैं, परतु ये पत्तियाँ अनि-यमित स्थितियो मे नही रहती। प्रत्येक पत्ती की नोक सावधानी से ठीक स्थान पर बनायी जाती है और किसी तारे की स्थिति सूचित करती है। उम्म के भीतर रेखाएँ खिची रहती है, या उम्म के भीतर डाले जाने वाले पत्र पर रेखाएँ खिची रहती है, जो झँझरी के खुले भागो से दिखाई पडती है। इस प्रकार तारो के निर्देशाक पढे जा सकते है। इस झँझरी वाले पत्र को अरबी मे अकबूत (मकडी) कहते है।

यन्त्रराज की पीठ पर धातु की एक पट्टी घूमती है। इस पट्टी के प्रत्येक सिर पर समकोण बनाती हुई एक छोटी पट्टी होती है। इन दो छोटी पट्टियो मे एक-एक छेद होता है। तारे को इन्ही छेदो मे से देखा जाता है। इस प्रकार लबी पट्टी, जिसे अरबी मे अलहिदाद कहते है, किसी भी तारे की दिशा मे कर दी जा सकती है। इसे हम दर्शनी कहेगे।

ऊपर बताये गये वृत्ताकार धातुपत्र और दर्शक एक कील के बल पर घूमते है जिसे अरबी मे कुत्ब कहते है। इस उद्देश्य से कि कील निकल न पडे उसमे चौकोर छेद करके एक कीलक पहना कर कस दिया जाता है। इस कीलक का मुड

बहुधा घोडे के मुंड की आकृति का बना दिया जाता था। इसी से अरब वाले इसे फरस (घोडा) कहते थे।

सम्पूर्ण यंत्र एक छल्ले से लटका रहता है। यह छल्ला उस घुंडी मे पिरोया रहता है जो उम्म की बारी मे जडा रहता है।

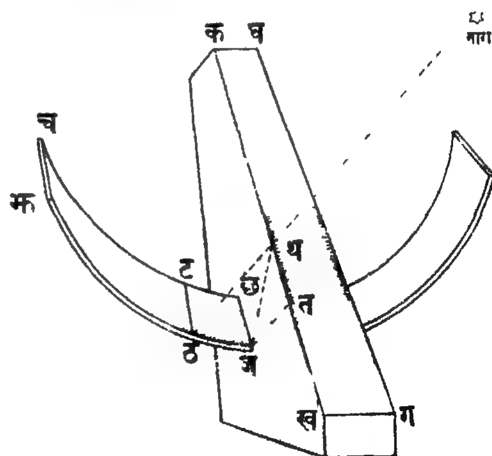
यंत्र की पीठ पर, जिधर दर्शनी रहती है, अंश आदि अंकित रहते हैं। इसके अतिरिक्त अन्य रेखाएँ या सारणियाँ रहती है, जिनका चुनाव यंत्र बनाने वाले या बनवाने वाले की इच्छा पर निर्भर है।

यंत्र मे नापने वाले भाग तो केवल पीठ पर लगी दर्शनी और पीठ पर अंकित अंश आदि ही है। अन्य सब भाग केवल गणना की सुविधा के लिए रहते है।

★ सम्राट्-यंत्र

जयसिंह ने जिन यंत्रो को अपने ढंग से बनवाया वे थे सम्राट् यंत्र, जयप्रकाश और राम-यंत्र। प्रत्यक्ष है जयप्रकाश का नाम जयसिंह के नाम पर पडा। राम-यंत्र का नाम जयसिंह के एक पूर्वज रामसिंह के नाम पर था। इन तीनो यंत्रो मे से अधिकतम महत्त्व का सम्राट्-यंत्र था। नाम से भी यह स्पष्ट है।

इस यंत्र से प्रत्येक क्षण आकाशीय पिंड-संबंधी दो कोण पढे जा सकते है, एक तो होराकोण और दूसरा वह जिसे क्रांति कहते है। होराकोण पढने के लिए सम्राट् यंत्र मे बेलनाकार वक्रतल पर अंशांकन खुदे रहते है, और क्रांति पढने के लिए सीधे समतल पर। यंत्र का स्वरूप पार्श्वांकित चित्र मे दिखाया गया है। यंत्र मध्य समतल के हिसाब से सममित है, अर्थात् यंत्र जैसा बायी ओर है, ठीक वैसा ही दाहिनी ओर भी है। अब यदि हम एक ओर के भाग पर, मान ले बायी ओर वाले भाग पर, विचार करे तो हम देखते है कि खडी भीत (दीवार)



सम्राट-यंत्र

इस यंत्र से तारो के विषुवांश और क्रांतियाँ नापी जाती हैं।

की एक कोर क ख पृथ्वी के अक्ष के ठीक समानातर है। च छ ज झ एक बेलनाकार पृष्ठ है जिसका अक्ष क ख है। जब सूर्य याम्योत्तर[1] मे रहता है तो कोर क ख की परछाईं (प्रतिच्छाया) ठीक जड छ ज पर पडती है, परतु इसके कुछ समय पहले च झ और छ ज के बीच कही पडेगी। मान लो तब क ख की परछाईं ट ठ पर पडती है। तो बारी (किनारा) च छ अथवा झ ज पर खुदे अशाकनो मे ठीक पता चल जाता है कि कितने घटो मे सूर्य मध्याह्न पर आयेगा। यही होरा-कोण है।[2]

कोर क ख पर अँगुली या छडी रख कर और उसे आवश्यकतानुसार क या ख की दिशा मे हटा कर पता लगाया जा सकता है कि कोर के किस बिंदु की पर-छाईं बिंदु ठ पर पड रही है। मान ले पता चला कि वह बिंदु थ है। फिर मान ले कि बिंदु ज स रेखा क ख पर गिराया गया लब रेखा ज त है। तो क ख पर खुदे हुए अशाकनो को पढने से कोण त ज थ का मान ज्ञात हो जाता है। यही क्राति है।

यदि सूर्य के बदले किसी तारे का वेध करना हो तो ज झ के ऐसे बिंदु पर आँख लगा कर देखना होगा कि वह तारा रेखा क ख पर दिखाई पडे, अर्थात् वह समतल ठ क ख मे रहे, फिर पता लगाना होगा कि क ख का कौन-सा बिंदु तारे के सीध मे है। तब ज ठ और त थ के मानो से तारे का होराकोण और क्राति इन दोनो का पता चल जायगा।

होराकोण से विषुवाश की गणना की जा सकती है, और विषुवाश और क्राति ये ही आकाशीय पिंड के सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण निर्देशाक है। इनके ज्ञात हो जाने पर आकाश मे पिंड की स्थिति पूर्णतया ज्ञात हो जाती है।

जब पिंड दक्षिण की ओर रहता है तब बेलनाकार पृष्ठ च छ ज झ की बारी च छ से काम लिया जाता है, परतु जब किसी उत्तर की ओर के पिंड का वेध करना रहता है तो बारी च छ पर आँख लगाना असुविधाजनक होता है। तब बारी ज झ पर आँख लगायी जाती है। बारी च छ के लिए भी कोर क ख पर अशाकन खुदे रहते हैं। क ख के बीच मे कुछ दूर तक दोहरा अशाकन रहता है, एक बारी च छ के लिए, दूसरा बारी ज झ के लिए।

१ उत्तर, दक्षिण और शिरोबिंदु से होकर जाने वाले समतल को याम्यो-त्तर कहते हैं।

२ होराकोण यह बताता है कि इष्ट क्षण से कितने घटे बाद सूर्य (अथवा अन्य आकाशीय पिंड) याम्योत्तर मे आयेगा।

जब आकाशीय पिड याम्योत्तर के पश्चिम रहता है तब दाहिनी ओर के बेलनाकार खड का प्रयोग किया जाता है और कोर ग घ के अशाकनो को पढा जाता है।

कोर क ख और ग घ के अशाकनो को पढ सकने के लिए क ख और ग घ के बीच सीढी लगी रहती है। इसी प्रकार च छ, ज झ, इत्यादि की बगल मे भी कोई प्रबध रहता है कि वहाँ तक द्रष्टा सुगमता से पहुँच सके। दिल्ली के सम्राट्-यत्र का उत्तर-दक्षिण विस्तार १२० फुट है, पूरब-पश्चिम विस्तार १२५ फुट और ऊँचाई ६८ फुट।

इस यत्र से धूप-घडी का काम भी निकल सकता है, परतु यदि पाठक कभी अपनी घडी को ऐसे यत्र से मिलाना चाहे तो उसे स्मरण रखना चाहिये कि धूप-घडी और साधारण घडी के समयो मे अन्तर रहता है। यह अन्तर घटा-बढा करता है और घडी के समय से धूप-घडी का समय कभी आगे रहता है, कभी पीछे। महत्तम अन्तर १६$\frac{१}{२}$ मिनट तक पड सकता है।

★ जयप्रकाश

जयप्रकाश यत्र वस्तुत एक गोले का आधा भाग होता है जिसके भीतरी पृष्ठ पर रेखाएँ खुदी रहती है और अशाकन भी रहते है। गोले के केद्र को निर्धारित करने के लिए दो तार तने रहते है, जिनका मिलन-बिदु गोल के ठीक केद्र पर रहता है। इस बिदु की परछाई देखकर बताया जा सकता है कि सूय के निर्देशाक (जैसे होराकोण और क्राति) क्या है। यदि परछाई कटे हुए भागो मे कही पड रही हो तो ठीक उसी प्रकार के सहयोगी यत्र को देखा जाता है जिसमे ठीक वे भाग बने रहते है जो पहले यत्र मे कटे रहते है।

ग्रहो और तारो का वेध कर सकने के लिए गोले के पृष्ठ से कुछ भाग काट कर निकाले रहते है। इस प्रकार वेधकर्ता उचित स्थान पर आँख लगा कर देख सकता है कि जब आँख, केद्र और तारा तीनो एक ही सीध मे रहते है तब आँख किन अशाकनो पर रहती है।

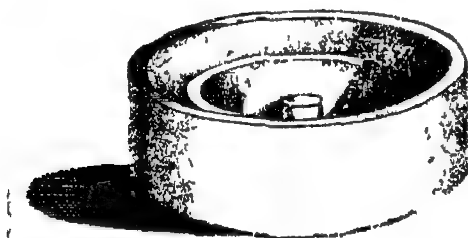
★ राम-यत्र

राम-यत्र मे एक बेलनाकार ऊर्ध्वाधर भीत होती है और उस पर अशाकन रहते है। बीच मे एक ऊर्ध्वाधर स्तभ रहता है जिसकी परछाई देखी जाती है। ऐसा भी हो सकता है कि सूर्य का उन्नताश इतना बढ जाय कि परछाई भीत पर न पडकर यत्र के फर्श पर पडे। इसीलिए फर्श पर भी अशाकन रहते हैं। तारो का भी वेध सभव हो सके इस उद्देश्य से भीत और फर्श दोनो थोडी-थोडी दूर पर कटे

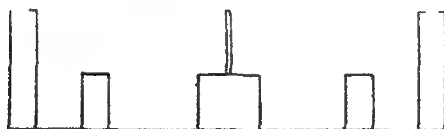
रहते है। फर्श भूमि से लगभग कमर की ऊँचाई पर बना रहता है। इस प्रकार उचित स्थान पर आँख लगायी जा सकती है। इस यत्र से आकाशीय पिंडो के उन्नतांश (ऊँचाई) और दिगश (दिशा) ये दोनो निर्देशाक सुगमता से जाने जा सकते है। जयप्रकाश यत्र की तरह इस यत्र मे भी एक जोडी यत्रो की आवश्यकता पडती है, जिनमे से एक मे ठीक वे ही भाग कटे रहते है जो दूसरे मे नही कटे रहते।

★ दिगश-यत्र

दिगश-यत्र मे दो बेलनाकार ऊर्ध्वाधर भीते एक के भीतर एक रहती है और उनके केद्र मे खडा स्तभ रहता है। स्तभ लगभग ४ फुट ऊँचा होता है, भीतरी भीत ठीक उतनी ही ऊँची होती है और बाहरी उसकी दुगुनी ऊँचाई की। दोनो भीतो के सिरे अशाकित रहते है। भीतरी दीवार के सिरे पर आँख लगा कर देखा जाता है। केद्रीय स्तभ मे लोहे की सीधी खडी छड रहती है जिसका ऊपरी सिरा



दिगश-यत्र, काशी। इससे दिगश नापा जाता है।





दिगश-यत्र, काशी। इसमे पूर्वोक्त यत्र की काट दिखायी गयी है।

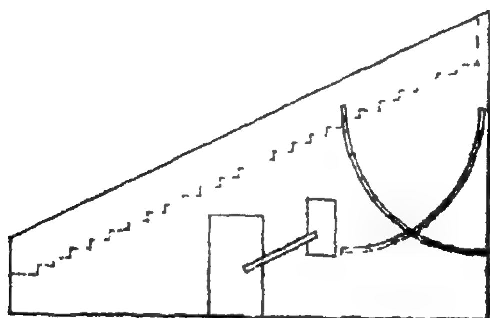
ठीक उतनी ही ऊँचाई पर रहता है जितनी बाहरी भीत की ऊँचाई होती है। इस यंत्र से दिगंश (दिशा) नापी जाती थी।

★ नाडीवलय-यंत्र

नाडीवलय-यंत्र वृत्ताकार पत्थर होता है, जिसके दोनों पृष्ठ समानांतर और ठीक आकाशीय विषुवत् के समतल में रहते हैं। इससे तुरन्त पता चल जाता है कि सूर्य (या अन्य पिंड) विषुवत् के उत्तर है या दक्षिण। दिन में बीच की कील की छाया देखकर समय भी जाना जा सकता है।

★ दक्षिणोदग्भित्ति-यंत्र

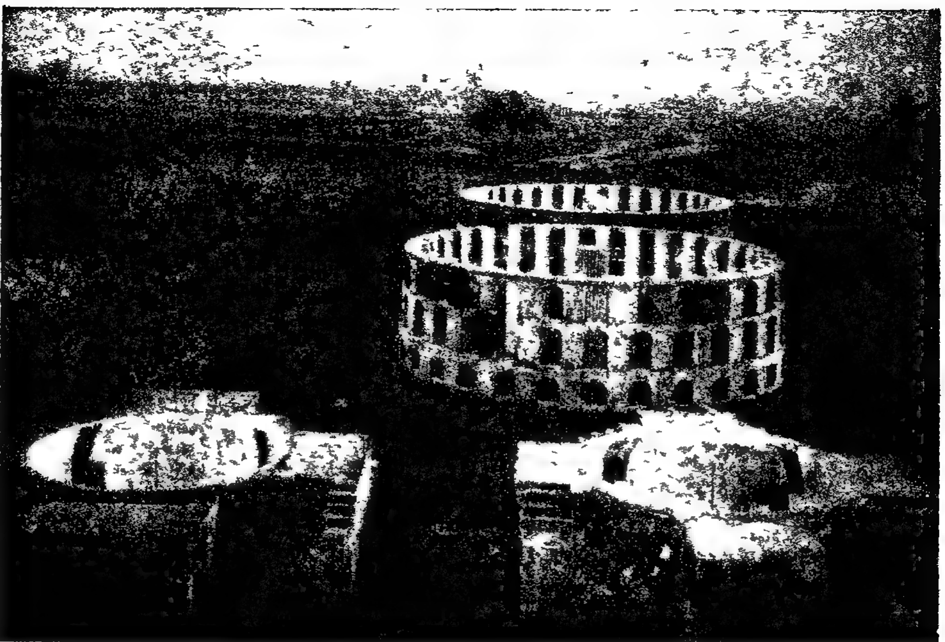
याम्योत्तर में बनी भीत पर कील लगी रहती है और इसे केंद्र मानकर दीवार पर एक अंशांकित वृत्त खिंचा रहता है, जिससे आकाशीय पिंडों का याम्योत्तर उन्नतांश नापा जा सकता है। इसी को दक्षिणोदग्भित्ति-यंत्र कहते हैं। सुविधा के लिए पूरे





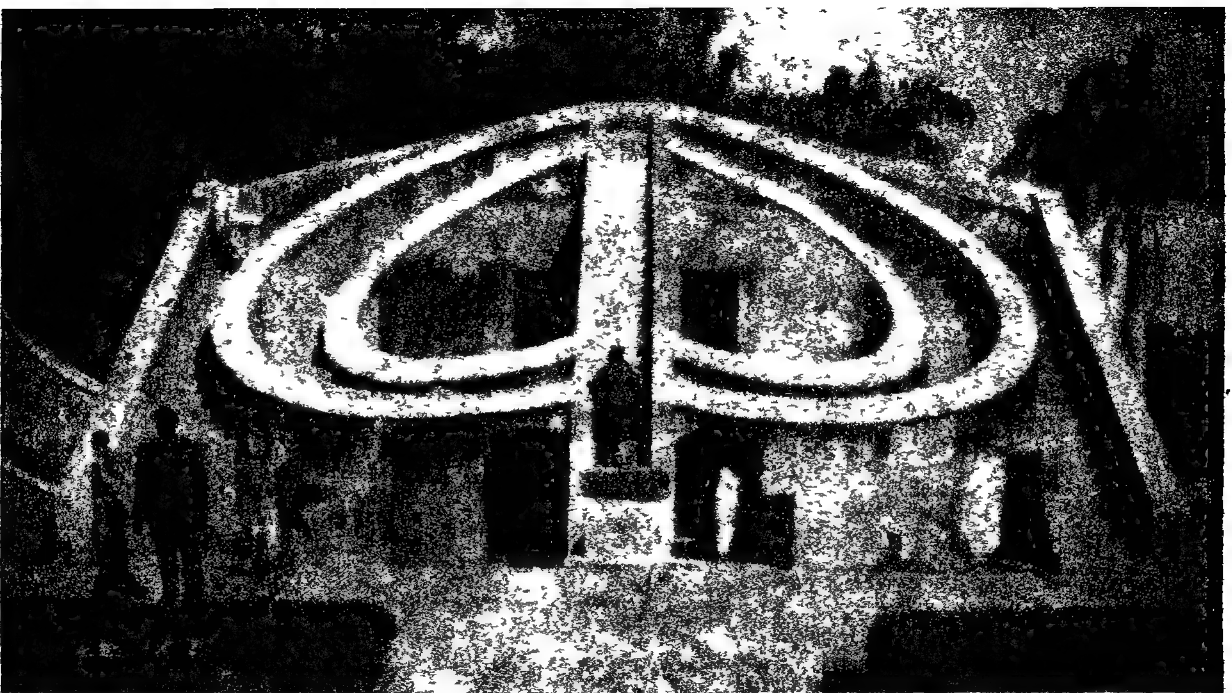
दक्षिणोदग्भित्ति-यंत्र, काशी। इससे याम्योत्तर उन्नतांश नापा जाता है।

वृत्त के बदले वृत्त का केवल चतुर्थांश ही खिंचा रहता है और शिरोबिंदु के उत्तर और दक्षिण दोनों ओर वेध कर सकने के लिए दो कीलें रहती हैं और दो वृत्त-चतुर्थांश बने रहते हैं।



रामयंत्र, दिल्ली

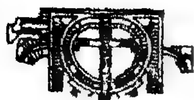
रामयंत्र में वस्तुतः एक जोडी यंत्र रहते हैं और इनसे उन्नतांश और दिगंश नापे जाते हैं। अग्रभूमि मे एक जोडी जयप्रकाश यंत्र है। [के० महोदय की पुस्तक "ऐस्ट्रोनॉमिकल ऑबज़रवेटरीज़ ऑव जयसिंह" से]

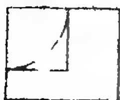


छायाकार अरुण कुमार राय

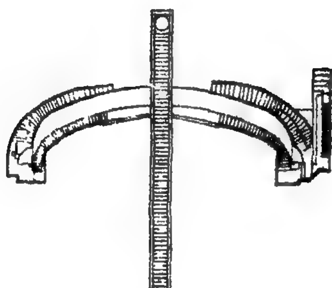
मिश्र-यंत्र, दिल्ली

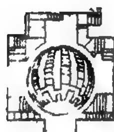
दिल्ली के जंतर-मंतर में एक यंत्र यह भी है। इस अकेले यंत्र से कई यंत्रों का काम चल सकता है। इसी से इसे मिश्रयंत्र कहते हैं।

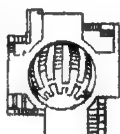


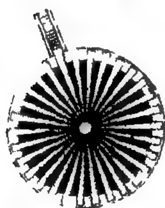
















जंतर-मंतर, दिल्ली

★ षष्ठांश-यन्त्र

षष्ठांश-यन्त्र मे एक अँधेरी कोठरी मे वृत्त का छठाँ हिस्सा याम्योत्तर-समतल मे बनी भीत पर अंकित रहता है। सूर्य की रश्मियाँ एक छिद्र से आती है। वे कहाँ पडती है, यह देखकर सूर्य का उन्नतांश जाना जा सकता है।

★ मिश्र-यन्त्र

मिश्र-यन्त्र सम्राट्-यन्त्र की तरह होता है, परतु बीच वाली सीढी और भीतो की अगल-बगल दो या अधिक अशांकित अर्धवृत्त होते है जिनके समतल क्षैतिज नही होते। दिल्ली मे जो मिश्र-यन्त्र है उसमे प्रत्येक ओर दो अर्धवृत्त है। एक अर्धवृत्त ग्रिनिच का याम्योत्तर प्रदर्शित करता है, दूसरा ज्यूरिच (जरमनी) का। इस प्रकार इस यन्त्र से दिल्ली मे बैठे-बैठे वे वेध किये जा सकते हैं जो ग्रिनिच या ज्यूरिच मे सम्राट्-यन्त्र से हो सकते है।

★ दिल्ली और जयपुर की वेधशालाएँ

जयसिंह की प्रत्येक वेधशाला मे पूर्वोक्त सब यन्त्र नही है। दिल्ली मे एक सम्राट्-यन्त्र, एक जोडी जयप्रकाश, एक जोडी राम-यन्त्र और एक मिश्र-यन्त्र केवल ये ही है। मिश्र-यन्त्र की पूव भीत पर दक्षिणोदग्भित्ति-यन्त्र भी बना है। मिश्र-यन्त्र की उत्तर वाली भीत ऊर्ध्वाधर होने के बदले उमसे ५° का कोण बनाती है। इस भीत पर एक बडा-सा अशांकित वृत्त बना है। इसे कर्कराशि-वलय कहते हैं। जब सूर्य विषुवत् से महत्तम उत्तर दूरी पर (कर्क राशि मे) पहुँचता है तो वह इस भीत के धरातल से कुछ कला (लगभग १० कला) उत्तर चला जाता है और इसलिए कुछ दिनो तक इस भीत पर धूप पडती है और केन्द्रीय कील की परछाही अशांकित वृत्त पर पडती है। इस यन्त्र से प्रत्यक्ष हो जाता है कि दक्षिणायन कब से आरभ हुआ।

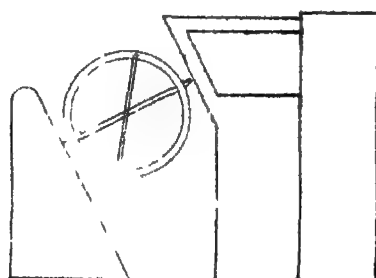
दिल्ली की वेधशाला बहुत कुछ टूट-फूट गयी थी, परतु १८५२ मे जयपुर के राजा ने यन्त्रो की मरम्मत करवा दी। १९१० मे जयपुर के महाराज ने वेधशाला का पुनरुद्धार कराया। इस कार्य मे कुछ यन्त्रो को फिर से बनवाना पडा और प्रायः सभी अशांकनो को फिर मे अंकित करना पडा। खेद है, अधिकांश अंकन चूने मे किये गये और फिर मिट रहे है।

जयपुर की वेधशाला सुरक्षित दशा मे है। वहाँ पत्थर आदि के बडे यन्त्रो के अतिरिक्त धातु के भी कई यन्त्र है। सग्रहालय (म्यूजियम) मे अन्य कई यन्त्र भी है, जो निस्सदेह जयसिंह द्वारा सगृहीत हुए थे। जयपुर मे सम्राट्-यन्त्र, षष्ठांश-यन्त्र, राशिवलय-यन्त्र, जयप्रकाश, कपाल, राम-यन्त्र, दिगंश-यन्त्र, नाडीवलय-यन्त्र, दक्षिणो-

दृग्भित्ति-यंत्र, दो बड़े यंत्रराज, १७½ फुट व्यास का पीतल का उन्नतांश चक्र-यंत्र और क्रांतिवृत्त-यंत्र हैं।

राशिवलय-यंत्र सम्राट्-यंत्रो की तरह बने बारह यंत्रो का समूह है। एक-एक राशि के लिए एक-एक यंत्र बना है। इनमे चतुर्थांश बेलनाकार अंशांकित खड विषुवत् के धरातल मे न होकर ऐसे धरातलो मे है कि जब यंत्र की विशेष राशि क्षितिज के ऊपर आती है तो उसका धरातल यंत्र के धरातल मे रहता है। कपाल बहुत कुछ जयप्रकाश की तरह है, परंतु इससे "उदय होते समय राशियो का वेध किया जाता है।"

चक्र-यंत्र मे छ फुट व्यास का धातु का एक अंशांकित चक्र है, जिसकी धुरी पृथ्वी की धुरी के समानांतर है। चक्र पर दर्शनी लगी है। वस्तुत: यह आधुनिक





चक्र यंत्र, काशी

[धातु के बने इस यंत्र से विषुवांश और क्रांति की नाप हो सकती है।]

'इक्विटोरियल' यंत्र की तरह है, अंतर केवल इतना ही है कि इसमे दूरदर्शी के बदले सरल दर्शनी है।

क्रांतिवृत्त-यंत्र मे पीतल के दो वृत्त है, जिनमे से एक सदा विषुवत् के धरातल मे रहता है और दूसरा रविमार्ग के धरातल मे लाया जा सकता है। सिद्धांतत इससे भोगांश और शर नापे जा सकते हैं, परंतु यह भद्दा यंत्र है और इससे सूक्ष्म माप नही हो पाती हैं।

मानमंदिर, काशी

[जयसिंह द्वारा बनवायी गयी यह वेधशाला आज भी देखी जा सकती है।]



अन्य यन्त्रो का वर्णन पहले दिया जा चुका है। जयपुर का सम्राट्-यन्त्र बहुत भव्य यन्त्र है। यह ९० फुट ऊँचा है और १४७ फुट लबा। इसके बेलनाकार चतुर्थांशो की त्रिज्या ४९ फुट १० इच है। इसके अशाकनो से एक विकला तक नाप सभव है, परतु वस्तुत इतनी सूक्ष्मता नही आ पाती, क्योकि परछाईं पर्याप्त तीक्ष्ण नही पडती।

★ काशी की वेधशाला

काशी मे जयसिंह की बनवायी वेधशाला मानमदिर की छत पर है। मानमदिर को आमेर-नरेश मानसिंह ने बनवाया था। वेधशाला दशाश्वमेध घाट के पास है और साधारणत वेधशाला ही को लोग अब मानमदिर कहते है। वहाँ ये प्रधान यन्त्र है (१) सम्राट्-यन्त्र, (२) नाडीवलय-यन्त्र (३) दिगश-यन्त्र और (४) चक्र-यन्त्र।

सम्राट्-यन्त्र काशी मे वैसा ही बना है जैसा अन्य वेधशालाओ मे, परतु नाप मे यह जयपुर के सम्राट्-यन्त्र से छोटा है। इसकी ऊँचाई २२ फुट ३।। इच है, और तिरछी कोर, जिसकी परछाईं देखी जाती है, ३९ फुट ८।। इच लबी है। प्रत्यक चतुर्थांश की त्रिज्या ९ फुट १।। इच है। तिरछी कोर और चतुर्थांशो की बाग्यिाँ पत्थर की है और अशाकन सावधानी से बने है। चतुर्थांशो पर आधे घटे वाले चिह्नो पर धातु के छोटे वृत्त लगे है जिन पर अक खुदे है। उत्तर वाली बागी पर देवनागरी अक है, दक्षिण वाली पर अग्रेजी अक। चतुर्थांशो के अकन मिनट की चौथाई तक बने है, साथ ही वे अश और अश के दशम भी बताते है।

पूरब वाली खडी भीत पर दक्षिणोदग्भित्ति-यन्त्र बना हुआ है। इस यन्त्र के प्रत्येक चतुर्थांश की त्रिज्या १० फुट ७ इच है। एक पृथक् बना हुआ दक्षिणोदग्भित्ति-यन्त्र भी है। एक छोटा सम्राट्-यन्त्र भी है, जिसकी ऊँचाई केवल सवा आठ फुट है।

अन्य यन्त्रो का ब्योरेवार वर्णन आवश्यक नही जान पडता। उनके निर्माण और प्रयोग की विधि पहले बतायी जा चुकी है।

काशी की यह वेधशाला लगभग सन् १७३७ ई० मे बनी थी, परतु विविध यात्रियो और प्राचीन लेखको ने विविध दिनाक बताये है, जिससे यह दिनाक बहुत पक्का नही माना जा सकता।

उन्नीसवी शताब्दी के मध्य मे वेधशाला की एक बार मरम्मत हुई थी। सन् १९१२ मे महाराज जयपुर ने सारी वेधशाला का पुनरुद्धार कराया और कार्य बहुत सतोषजनक रीति से हुआ।

★ आधुनिक यत्रो से तुलना

बहुधा लोग यह जानना चाहते है कि आधुनिक यन्त्रो की तुलना मे जयसिंह के यन्त्र कितने अच्छे ठहरते हैं। उत्तर यह है कि आधुनिक यन्त्र कही अधिक सूक्ष्म और शुद्ध मान देते हैं। सबसे छोटा यन्त्र थियोडोलाइट भी, जिसमे दिगश और उन्नताश नापने के लिए चार इच या पाँच इच के वृत्त लगे रहते हैं जयसिंह के यन्त्रो से अधिक उत्तम मान देता है। कारण यह है कि इन वृत्तो का अशाकन चाँदी पर किया जाता है जो पीतल की अपेक्षा कम रवादार होती है और ये अशाकन इतने घने होते है कि उन्हे प्रवर्धक ताल द्वारा पढना पडता है। फिर यन्त्र की धुरी छेद मे नही पिरोयी रहती है। वह अग्रेजी अक्षर v की तरह द्विशूलो पर आरूढ रहती है। इसमे धुरी मे हचक हो ही नही पाती। फिर, यन्त्र घडी की तरह सच्चा बनाया जाता है, और तिस पर भी उसकी सचाई पर भरोसा न करके उसकी त्रुटियो को नापा जाता है, और गणना से इन त्रुटियो के प्रभाव को दूर किया जाता है। इन त्रुटियो को नापने मे एक आवश्यक क्रिया यह है कि यन्त्र के घूर्णशील भाग को उठाकर पलट दिया जाता है, जिसमे एक ओर की धुरी दूसरी ओर चली जाय। यह काम ईंट-पत्थर के बने विशाल काय यन्त्रो से नही हो सकता। परन्तु सबसे अधिक सूक्ष्मता तो इससे आती है कि यन्त्र मे दूरदर्शी लगा रहता है। दूरदर्शी मे आँख लगाने पर तारा तो दिखाई पडता ही है, साथ ही समकोण पर परस्पर काटती हुई दो महीन रेखाएँ पडती है, जिन्हे 'स्वस्तिक तार' कहते है, और तारा तथा ये रेखाएँ दोनो पूर्णतया तीक्ष्ण और स्पष्ट दिखाई पडती है। जब तारा ठीक स्वस्तिक के केन्द्र पर रहता है तब दूरदर्शी ठीक तारे की दिशा मे रहता है। स्वस्तिक और तारा दोनो के तीक्ष्ण और स्पष्ट दिखाई पडने के कारण दूरदर्शी को तारे पर साधने का काम बडी सूक्ष्मता से किया जा सकता है। बिना दूरदर्शी के यन्त्रो मे यन्त्र के दर्शनी नामक भाग के दोनो सिरे कभी भी स्पष्ट नही देखे जा सकते। जब निकट सिरे को स्पष्ट देखने की चेष्टा की जाती है तब केवल वही स्पष्ट दिखाई पडता है, जब दूर वाले सिरे को स्पष्ट देखने की की चेष्टा की जाती है तब निकट वाला सिरा अस्पष्ट हो जाता है। यही कठिनाई सम्राट्-यन्त्र, जयप्रकाश, राम-यत्र इत्यादि सभी मे पडती है और उनसे सूक्ष्म वेध नही किया जा सकता।



१७

जयसिंह के बाद

जयसिंह के बाद पाश्चात्य ज्योतिष भारत मे सुगमता से प्रवेश पाने लगा क्योकि यहाँ अग्रेजो की शक्ति बढने लगी। यहाँ हम केवल उन्ही ज्योतिषियो की चर्चा कर रहे है जो प्राचीन भारतीय ज्योतिष के विद्वान् थे।

★ मणिराम

'ग्रहगणितचिन्तामणि' मे शक १६९६ चैत्र शुक्ल १ रविवार के प्रातःकाल का क्षेपक दिया गया है, जो ग्रहलाघव से बहुत कुछ मिलता है और ध्रुवाङ्क उससे सूक्ष्म है।[1] ग्रथकार मणिराम सूर्य-सिद्धात के अनुयायी जान पडते है, परतु इन्होने ग्रहलाघव की पद्धति से काम लिया है। इन्होने स्वय वेध करके ग्रथ मे ध्रुवाक शुद्ध किये हैं। अयनाश सूर्य-सिद्धात के अनुसार माना है। इस ग्रथ मे कुल १२ अधिकार हैं और श्लोको की सख्या १२० है।

★ नृसिंह, उपनाम बापूदेव शास्त्री

बापूदेव शास्त्री बनारस मे ज्योतिष के प्रसिद्ध आचार्य थे और इस प्रान्त मे अब तक प्रसिद्ध है। भारतीय और पाश्चात्य ज्योतिष के ये अगाध विद्वान् थे। इनका जन्म महाराष्ट्र प्रान्त के अहमदनगर जिले मे गोदा नदी के किनारे टोके गाँव मे शक १७४३ (१८२१ ई०) मे हुआ था। इन्होने नागपुर मे ढुढिराज मिश्र से 'बीजगणित', 'लीलावती' और 'सिद्धातशिरोमणि' का अध्ययन किया और अन्त मे काशी मे आकर सस्कृत कालेज के प्रधान गणिताध्यापक हुए। यह बगाल एशिया-

१ इस अध्याय की सारी बातें मेरे द्वारा संपादित 'सरल विज्ञान-सागर' नामक ग्रथ में छपे श्री महावीरप्रसाद श्रीवास्तव के एक लेख से ली गयी हैं।

टिक सोसाइटी के आदरणीय सभासद तथा कलकत्ता और इलाहाबाद विश्वविद्यालयो के सदस्य थे। इनको महामहोपाध्याय की पदवी भी मिली थी।

यह भारतीय ज्योतिष मे सुधार करने की आवश्यकता समझते थे और चाहते थे कि पचागो की गणना शुद्ध वेधसिद्ध मूलाको से करनी चाहिये। इसका प्रचार करने के लिए इन्होने पुस्तके लिखी और पचाग भी बनाना आरम्भ किया, परतु उस समय काशी के पडितो के दल ने इनका घोर विरोध किया। दैवदुर्विपाक से म० म० सुधाकर द्विवेदी इस विरोधी दल के अग्रणी थे, इसलिए ज्योतिष-सबधी सुधार अब तक नही हो पाया। आश्चर्य तो यह है कि जिस सूर्य-सिद्धात को सुधाकर द्विवेदी स्वय आर्षग्रथ नही मानते थे[1] और कहते थे कि यह हिपार्कस नामक यवन ज्योतिषी के ग्रन्थ के आधार पर लिखा गया है[2] उसी को प्रामाणिक कह कर पचाग बनाने के लिए आवश्यक समझते थे और पहले के आचार्यों के चलाये हुए बीजसस्कार की पद्धति को भी त्याज्य समझते थे। सुधाकर द्विवेदी का मत था कि तिथियाँ अदृश्य घटनाएँ है, उन्हे सूर्य-सिद्धात के अनुसार बनाना चाहिये, ग्रहण दृश्य घटना है, उसकी गणना आधुनिक ज्योतिष से करनी चाहिये। उत्तर प्रदेश के कई पचाग आज भी इसी सिद्धात पर बनते हैं, जिसका मुख्य कारण यही जान पडता है कि सूर्य-सिद्धात का नाता लोगो ने धर्म मे जोड रखा है और इसलिए पूजा-पाठ की गणना के लिए उसके बदले किसी अन्य ग्रथ को ठीक मानना अनुचित समझते हैं, परन्तु यदि वे ग्रहण की भी गणना सूर्य-सिद्धात से करते है तो घटो का अतर पड जाता है और जनता भी देख लेती है कि ज्योतिषीगण अज्ञानी और ढोगी है।

बापूदेव शास्त्री रचित ग्रथो के नाम नीचे दिये जाते है

रेखागणित प्रथमाध्याय, त्रिकोणमिति, सायनवाद, प्राचीन ज्योतिषाचार्याशय-वर्णन, अष्टादश विचित्र प्रश्न सग्रह सोत्तर, तत्त्वविवेक परीक्षा, मानमन्दिरस्थ यत्र वर्णन, और अकगणित। ये सब सस्कृत भाषा मे हैं और छपकर प्रकाशित हुए है। कुछ सस्कृत ग्रथ अप्रकाशित है, जैसे चलन-कलन सिद्धात के २० श्लोक, चापीय त्रिकोणमिति सबधी कुछ सूत्र, सिद्धातग्रथोपयोगी टिप्पणी, यत्रराजोपयोगी छेद्यक, और लघुशकुच्छिन्न क्षेत्रगुण।

१ 'भट्टोत्पलानन्तर भास्कराचार्यत प्रागेव भारतवर्षेऽस्य सूर्यसिद्धान्तस्य प्रचारो जात।' सुधावर्षिणी टीका की भूमिका, पृ० १ (१९२५ ई०)

२ पचांग विचार, पृ० ११, १२।

इनके लिखे हिंदी मे भी ग्रथ प्रकाशित हुए है जैसे अकगणित, बीजगणित, फलित विचार और सायनवादानुवाद। 'सिद्धातशिरोमणि' के गोलाध्याय का अँग्रेजी अनुवाद इन्होने विलकिनसन के सहयोग से किया है। 'सूर्यसिद्धात' का अँग्रेजी अनुवाद भी किया है। ये दोनो ग्रथ सन १८६१-६२ ई० मे प्रकाशित हुए थे।

इन्होने 'सिद्धातशिरोमणि' के गणित और गोल दोनो अध्यायो का शोधपूर्वक टिप्पणी के साथ एक सस्करण शक १८८८ (१८६६ई०) मे और 'लीलवती' का १८०५ शक मे प्रकाशित किया था। यह शक १७९७ से १८१२ तक 'नॉटिकल अलमनक' के आधार पर पचाग बनाकर प्रकाशित करते थे। अब भी इनके नाम के पचाग मे यही विशेषता पायी जाती है। १८१२ शक मे इनका देहावसान हुआ।

★ नीलाबर शर्मा

नीलाबर शर्मा का जन्म शक १७४५ (१८२३ ई०) मे हुआ था और आप गगा और गडकी के सगम से दो कोस पर पटना के रहने वाले मैथिल ब्राह्मण थे। इन्होने यूरोपीय पद्धति के अनुसार गोलप्रकाश नामक ग्रथ सस्कृत भाषा मे लिखा है, जिसको १७९३ शक मे प० बापूदेव शास्त्री ने शोधकर छपाया था। इसमे पाँच अध्याय हैं ज्योत्पत्ति, त्रिकोणमितिसिद्धात, चापीयरेखागणितसिद्धात, चापीय त्रिकोणमितिसिद्धान्त और प्रश्न।

★ विनायक (उपनाम केरो लक्ष्मण छत्रे)

विनायक (उपनाम केरो लक्ष्मण छत्रे) का जन्म महाराष्ट्र प्रान्त मे शक १७४६ (१८२४ ई०) मे हुआ था। यह गणित, ज्योतिष और सृष्टि-विज्ञान मे बडे निपुण थे और इन्होने बम्बई प्रान्त के अनेक स्कूलो और कालेजो मे उच्च पद पर काम किया। इनका लोकप्रिय नाम नाना था।

इन्होने फ्रासीसी और अँग्रेजी ज्योतिष ग्रथो के आधार पर 'ग्रहसाधनकोष्ठक' नामक एक मराठी ग्रथ शक १७७२ मे तैयार किया था, जो शक १७८२ मे छापा गया था। इस ग्रथ मे वर्तमान सूर्य-सिद्धात के अनुसार लिया गया है परतु ग्रह-गतिस्थिति सायन ली गयी है, जीटा पिसियम को रेवती का योगतारा माना है, जो शक ४९६ मे बसत विषुव पर था। अयन की वार्षिक गति ५०.१ विकला मानी है। शक १७८७ (१८६५ ई०) से इन्होने नाविक पचाग के अनुसार पचाग प्रकाशित करना आरभ किया। इस बात मे आपा साहब पटवर्धन ने इनकी सहायता की, जिससे यह पचाग खूब चलने लगा और इसका नाम पड गया 'नानापटवर्धनी' पंचाग।

तिथि-साधन के लिए तिथिचिंतामणि के समान एक ग्रंथ नाना साहब ने लिखा था, परन्तु अब इसका प्रचार नही है। इन्होने स्कूलो के लिए मराठी मे पदार्थविज्ञान-शास्त्र और अकगणित की पुस्तके लिखी थी।

★ लेले

विसाजी रघुनाथ लेले का जन्म नासिक मे शक १७४९ (१८२७ ई०) मे हुआ था और शक १८१७ मे ६८ वर्ष की अवस्था मे देहान्त हुआ। इन्होने मराठी पत्रिकाओ मे इस बात का खूब आन्दोलन किया कि पचाग सायन पद्धति से बनाना चाहिये और इस बात मे केरो पत का विरोध किया। कई वर्षों तक ग्रहलाघव की सहायता से सायन पचाग बनाकर चलाते रहे। फिर नाविक पचाग की सहायता से काम लेते थे, परतु इस काम के लिए अपना कोई स्वतत्र ग्रथ नही लिखा।

★ रघुनाथ

चितामणि रघुनाथ आचार्य का जन्म शक १७५० (१८२८ ई०) मे तमिल प्रान्त मे हुआ था। यह यूरोपीय ज्योतिष और गणित के अच्छे विद्वान् थे और रायल एशियाटिक सोसयटी के फेलो थे। १८४७ ई० से मद्रास वेधशाला मे काम करने लगे और उसके प्रथम सहायक के पद पर पहुँच गये थे। इन्होने यहाँ से तारो की एक सूची तैयार की और दो रूपविकारी तारो की खोज की। ज्योतिषचितामणि ग्रथ इनका ही लिखा हुआ है जिसके तीन भाग है। पहले मे मध्यम गति, पृथ्वी आदि ग्रहो के आकार और उनके महत्त्व पर विचार किया गया है। दूसरे मे स्फुट गति आदि पर लिखा गया है और तीसरे का 'नामकरण-पद्धति' है, जिसमे ग्रह-गणित करने के लिए बहुत से कोष्ठक है। यह ग्रथ तमिल भाषा मे लिखा गया था।

यह शक १७९१ से नाविक पचाग के आधार पर दृग्गणित पचाग बनाकर प्रकाशित करने लगे, जिसे आपके दो पुत्र शक १८०८ तक चलाते रहे। आपका वर्षमान सूर्यसिद्धात के अनुसार था और अयनाश २२°५' था।[1]

★ गोडबोले

कृष्णशास्त्री गोडबोले का जन्म शक १७५३ (१८३१ ई०) मे बम्बई प्रात मे हुआ था। उस प्रात के कई स्कूलो के शिक्षक के पद पर रह कर यह हेड-मास्टरी से रिटायर हुए और पूना मे रहने लगे थे। इन्होने बम्बई की वेधशाला मे भी कुछ दिनो तक काम किया था। यह १८८६ ई० में स्वर्गवासी हुए।

१ भारतीय ज्योतिषशास्त्र, पृष्ठ ३०४-३०५।

शक १७७८ में इन्होने वामनकृष्ण जोशी गद्रे के सहयोग से 'ग्रहलाघव' का मराठी भाषांतर उदाहरण सहित किया, जो प्रधानत विश्वनाथ की टीका का भाषातर है। इस पुस्तक का दूसरा सस्करण भी छपा है। कृष्ण शास्त्री ने 'ग्रह-लाघव' की उपपत्ति भी मराठी मे लिखी है। शक १८०७ मे एक छोटा-सा ज्योतिषशास्त्र का इतिहास लिखा और पाठशालोपयोगी बहुत-सी गणित की पुस्तको की रचना की।

★ चद्रशेखर सिंह

चन्द्रशेखर सिंह सामत का जन्म शक १७५७ (१८३५ ई०) मे उडीसा प्रात मे कटक से ५०-६० मील पश्चिम खडपाग गांव के एक राजवश मे हुआ था। बचपन मे इन्होने सस्कृत, व्याकरण, स्मृति, पुराण, तर्कशास्त्र और आयुर्वेद की शिक्षा पायी थी और सभी महत्त्वपूर्ण काव्य ग्रथ पढ लिये थे। जब यह दस वर्ष के थे तब इनके एक चाचा ने फलित ज्योतिष का कुछ पाठ पढाया और आकाश के कुछ नक्षत्रो और ग्रहो का परिचय कराया। धीरे-धीरे इस बालक का मन आकाश दर्शन और तारो की बदलती हुई स्थिति को देखने मे लग गया। इन्होने घर के पुस्तकालय मे सस्कृत सिद्धान के जितने भी ग्रथ मिले सबको अपने आप ही भाष्यो की सहायता से पढ डाला।

जब यह ग्रहो की स्थिति की गणना करने लगे तब इन्हे विदित हुआ कि गणना से ग्रहो की जो स्थिति निकलती थी, वह आकाश मे ग्रहो की प्रत्यक्ष स्थिति से नही मिलती थी, दोनो मे बडा अन्तर पडता था।

अपने बनाये स्थूल यत्रो से इन्होने सूर्य, चद्रमा और ग्रहो के मूलाको का सशोधन करके एक पुस्तक लिख डाली, जिसका नाम है 'सिद्धातदर्पण'। यह ज्योतिष-सिद्धात का एक सुन्दर ग्रन्थ है। जगन्नाथपुरी और उडीसा प्रात मे इसी के अनुसार बनाये हुए पचाग शुद्ध माने जाते है।

'सिद्धातदर्पण' का मूल ताम्रपत्र पर उडिया अक्षरो मे लिखा गया था, जिसको कटक कालेज के गणित के अध्यापक श्री योगेशचन्द्र राय ने अपनी अग्रेजी भूमिका के साथ सन् १८९९ ई० (श० १८२१) मे प्रकाशित किया। यह ग्रथ उडीसा और बिहार के ज्योतिष के छात्रो को पढाया जाता है।

★ शकर बालकृष्ण दीक्षित

शकर बालकृष्ण दीक्षित का जन्म भी शक १७७५ मे आषाढ शुक्ल १४ भौमवार (ता० २०-२१ जुलाई, सन् १८५३) को रत्नागिरी के मुरुड गांव मे

हुआ था। कठिनाई के कारण इनकी शिक्षा मैट्रिकुलेशन से अधिक नही हुई थी। महाराष्ट्र प्रात के अनेक मराठी और अंग्रेजी स्कूलो और ट्रेनिग कालेजो मे इन्होने शिक्षक का काम किया। इनकी बुद्धि बडी प्रखर थी। मराठी मे विद्यार्थी बुद्धि-वर्धिनी (सन् १८७६ ई०), सृष्टिचमत्कार (१८८२ ई०), ज्योतिर्विलास (१८९२ ई०) और धर्ममीमासा (१८९५ ई०) नामक पुस्तके छपायी थी। डब्लू० एम० सिवेल के सहयोग से इन्होने 'इडियन कैलेंडर' नामक ग्रथ अँग्रेजी मे लिखा था। परन्तु इनका, सबसे उपयोगी और गभीर विद्वत्ता का ग्रथ मराठी मे 'भारतीय ज्योतिषशास्त्र' है, जो सन् १८८७ ई० (शक १८०९) नवम्बर मास मे आरभ होकर सन् १८८८ (शक १८१०) के अक्टूबर तक समाप्त हुआ। इस पुस्तक पर इन्हे पूना की दक्षिणा पुरस्कार कमेटी से पुरस्कार भी मिला था।

इस ग्रथ के पहले भाग के पहल विभाग मे वैदिक काल का वर्णन है, जिसमे वैदिक सहिता और ब्राह्मणो मे आये हुए ज्योतिष-सबधी वचनो का अवतरण देकर बताया गया है कि वैदिक ऋषियो को ज्योतिष सम्बन्धी बातो का कितना ज्ञान था।

दूसरे विभाग मे वेदागकाल के ज्योतिष का वर्णन है। इसमे आर्च और याजुष ज्योतिष का विस्तृत वर्णन है। इसके कुछ श्लोको का अर्थ भी, जो पहले नही ज्ञात था, किया गया है। अथर्व-ज्योतिष की भी चर्चा है। इसी विभाग मे कल्पसूत्र, निरुक्त और पाणिनीय व्याकरण मे आये हुए ज्योतिष-सबधी वचनो का विवेचन है। यह पहले प्रकरण मे है। दूसरे प्रकरण मे स्मृति और महाभारत मे आये हुए सब ज्योतिष-सबधी वचनो का विवेचन है। इस प्रकार पहला भाग डिमाई अठपेजी नाप के १४७ पृष्ठो मे समाप्त हुआ है।

दूसरे भाग मे ज्योतिष सिद्धात-काल के ज्योतिष शास्त्र का इतिहास दिया गया है। पहले खड का नाम गणित-स्कध है, जिसके मध्यमाधिकार प्रकरण १ मे प्राचीन सिद्धातपचक के पितामह-सिद्धात, वसिष्ठ-सिद्धात, रोमक-सिद्धात और पुलिश-सिद्धात का विवेचन बडी विद्वत्ता के साथ किया गया है। फिर वर्तमान काल के सूर्य-सिद्धात, सोम-सिद्धात, वसिष्ठ-सिद्धात और शाकल्य-सहितोक्त ब्रह्म-सिद्धात का उत्तम वर्णन है। इसके बाद प्रथम आर्यभट (शक ४२१) से लेकर सुधाकर द्विवेदी (शक १८०६) तक के ज्योतिष के प्रसिद्ध आचार्यों और उनके ग्रथो का वर्णन १११ पृष्ठो मे किया गया है। ग्रथो मे लिखे हुए काल की शुद्धता जाँचकर लिखी गयी है और यह भी बताया गया है कि किस ग्रन्थ मे क्या विशेषता है।

इसके बाद भारतीय ज्योतिष पर मुसलमान ग्रथकारो, विशेषकर अलबीरूनी के मन का विवेचन किया गया है।

दूसरे प्रकरण मे भुवनसस्था के सबध मे भिन्न-भिन्न आचार्यों के मतो का तुलनात्मक विवेचन है। तीसरे प्रकरण मे अयन (विषुव-चलन) पर विस्तृत विवेचन किया गया है। चौथा प्रकरण वेधप्रकरण है, जिसमे दिखाया गया है कि हमारे ग्रन्थो मे वेध-सबधी बातो और यत्रो का कैसा वर्णन है।

स्पष्टाधिकार के प्रकरण १ मे ग्रहो की स्पष्ट गति और स्थिति के सबध मे तुलनात्मक विवेचन है प्रकरण २ मे पचाग और विविध सनो तथा सवतो का वर्णन किया गया है। इसी प्रकरण मे पचागशोधन विचार नामक एक अध्याय है, जिसके ३२ पृष्ठो मे दिखाया गया है कि पचाग का शोधन करना क्यो आवश्यक है, सायन-पचाग क्यो स्वाभाविक है।

इस प्रकार कुल ४४२ पृष्ठों मे इतनी बाते लिखी गयी है। इसके आगे सक्षेप मे त्रिप्रश्नाधिकार, चद्रसूर्य ग्रहणाधिकार, छायाधिकार, उदयास्ताधिकार, शृगोन्नति, ग्रहयुति, भग्रहयुति और महापात अध्याय है। भग्रहयुति अध्याय मे योगतारो के भोगाशो और शरो पर तुलनात्मक विचार विस्तार के साथ किया गया है।

'सहितास्कध' मे सहिता और मुहूर्त-सम्बन्धी पुस्तको का वर्णन है।

'जातकस्कध' मे जातकशास्त्र सबधी पुस्तको का वर्णन है और बताया गया है कि जन्मपत्री क्या है, कैसे बनायी जाती है और उसका सिद्धात क्या है। अन्त मे ताजिक पर भी थोडा-सा विचार है, जिससे वर्षफल बनाया जाता है। (ताजिक = फलित ज्योतिष के एक विभाग का मुसलमानी नाम)

उपसहार मे भारतीय ज्योतिष की तुलना अन्य देशो के ज्योतिष से की गयी है और इस सबध मे अनेक भारतीय और विदेशी विद्वानो के मतो का विवेचन किया गया है। अन्त मे सस्कृत और अन्य ज्योतिष ग्रन्थो की तथा ज्योतिष ग्रथकारो की सूची दी गयी है। ज्योतिष के अतिरिक्त उन अन्य पुस्तको की भी सूची है जिससे ज्योतिष सबधी अवतरण लिये गये हैं। अन्त मे विषयानुसार सूची देकर ५६० पृष्ठो मे पुस्तक समाप्त की गयी है।

★ केतकर

वेंकटेश बापूजी केतकर का जन्म पौष शुक्ल १४ शुक्रवार शक १७७५ (१८५४ ई०) मे हुआ था और १८७४ ई० से यह बम्बई प्रान्त के स्कूलो मे

शिक्षक का काम करने लगे थे। यह बागलकोट के अंग्रेजी स्कूल मे हेडमास्टर के पद पर भी थे। प्राच्य और पाश्चात्य ज्योतिष के अद्वितीय विद्वान् और ग्रंथकार थ। इनकी मृत्यु शक १८५२ (१९३० ई०) मे ७६ वर्ष की अवस्था मे हुई।

इन्होने ज्योतिष पर कई ग्रथ लिखे है, जिनके नाम है सस्कृत मे ज्योतिर्गणित, केतकीग्रहगणित, वैजयन्ती, केतकी परिशिष्ट, सौरार्यब्रह्मपक्षीय तिथिगणिनम्, केतकी वासना भाष्यम्, शास्त्रशुद्धपचागअयनाश निणय और भूमण्डलीय सूर्यग्रहणगणित, और मराठी मे नक्षत्र विज्ञान, ग्रहगणितम्, गोलद्वयप्रश्न, भूमडलीयगणित।

ज्योतिर्गणित—यह बडे आकार के लगभग ५०० पृष्ठो का ग्रथ है, जिसमे पचाग बनाने, ग्रहण की गणना करने, नक्षत्रो के उदय और अस्त का गणित करने की सभी आवश्यक बातो के लिए कोष्ठक दिये गये है, जिनके आधार पर पचाग सुगमता और शुद्धतापूर्वक बनाये जा सकते है। जिन पाश्चात्य गवेषणाओ और गणनाओ के आधार पर कोष्ठक बनाये गये है उनके सूत्र भी दे दिये गये है। दशमलव भिन्न का उपयोग करके गुणा-भाग करने का काम बहुत सरल कर दिया गया है। भुजज्या, कोटिज्या आदि की सारणी दे दी गयी है। यह एक अपूर्व ग्रथ है, जिससे ग्रथकर्ता के गभीर परिश्रम और विद्वत्ता का पता चलता है। इसके ध्रुवाक शक १८०० के है। इस ग्रथ मे इन्होने रेवती योगतारा को नक्षत्र चक्र का आदि बिन्दु मानकर तथा चित्रा को नक्षत्र चक्र का मध्य मानकर दोनो प्रकार से अयनाश दे दिये है, क्योकि महाराष्ट्र प्रात मे इन दोनो पद्धतियो से पचाग बनाये जाते है और प्रत्येक के समर्थक बडे-बडे विद्वान् है। परन्तु पीछे से ये केवल चित्रा मत के समर्थक हो गये और केतकी ग्रहगणित तथा पचाग अयनाश निर्णय मे यह सिद्ध किया कि प्राचीन परम्परा के अनुसार चित्रा तारा ही नक्षत्र चक्र का मध्य होना चाहिये जिससे अश्विनी नक्षत्र या मेष का आदि बिंदु चित्रा से १८०° पर ठहरता है। यह ग्रथ शक १८१२ के लगभग लिखा गया था।

केतकी ग्रहगणित—यह ग्रहलाघव के ढग पर, सस्कृत श्लोको मे, अर्वाचीन ज्योतिष के आधार पर पचाग बनाने के लिए उपयोगी ग्रथ है। पुराने ढग के पडित श्लोको को याद करके गणना करने का काम सुगमता से कर सकते है, अत उनके लिए यह बहुत उपयोगी है। इससे तिथि, नक्षत्र आदि की तथा ग्रहो की स्पष्ट गणना पर्याप्त शुद्ध होती है।

इस पर ग्रथकार ने अपनी अकविवृति व्याख्या भी की है, जिसमे उदाहरण देकर ग्रन्थ को और सुगम बना दिया है। इसके साथ ग्रथकार के सुयोग्य पुत्र दत्तराज वेंकटेश केतकर ने 'केतकी परिमलवासनाभाष्य' नामक टीका लिखी है, जिसमे चित्र देकर वैज्ञानिक रीति से नियमो की उपपत्तियो का वर्णन विस्तार के साथ किया है। यह पुस्तक शक १८१८ मे लिखी गयी थी और शक १८५१ (१९३० ई०) मे आर्य-भूषण मुद्रणालय से प्रकाशित हुई। सस्कृत मे अर्वाचीन ज्योतिष पर यह अच्छी पुस्तक है।

वैजयन्ती—इसमे पचागोपयोगी तिथि, नक्षत्र और करणो की गणना करने के लिए सारणियाँ है जिनसे गणना बडी आसानी से की जा सकती है। इसमे चद्रमा मे केवल ५ सस्कार देकर काम लिया गया है।

नक्षत्र-विज्ञान—इसमे आकाश के विविध प्रकार के तारो का वर्णन, उनकी सूची, भोगाश, शर तथा आकाश के मानचित्र दिय गये है। जिन नक्षत्रो के नाम भारतीय ज्योतिष मे नही है, उनके नाम इन्होने स्वय बनाये है, जैसे 'ओफियूकस' के लिए 'भुजगधारि', 'पेगासस' के लिए 'उच्चैश्रवा', 'लायरा' के लिए 'स्वरमण्डल', आदि।

★ तिलक

बाल गगाधर तिलक का जन्म शक १७७८ (१८५६ ई०) मे हुआ। यह गणित, ज्योतिष, विज्ञान, प्राचीन इतिहास, दर्शन और वेद के अद्वितीय विद्वान् थे। राजनीति के भी यह प्रकाड पडित और नेता थे, जिसके कारण इन्हे कई बार जेल जाना पडा था। इनकी देश-विदेश सभी जगह प्रसिद्धि है और इन्हे 'लोकमान्य' कहा जाता है। यह 'मराठा' नामक अग्रेजी पत्र तथा 'केसरी' नामक मराठी पत्र के सफल सम्पादक थे। इनके लिखे तीन ग्रथ बहुत प्रसिद्ध है

(१) ओरायन,

(२) आर्कटिक होम इन दि वेदाज, और

(३) गीतारहस्य।

ओरायन—यह अग्रेजी मे ज्योतिष-सबधी ग्रथ है और सन् १८९३ ई० मे लिखा गया था। इसमे तिलक ने वेद, ब्राह्मण, सहिता तथा ज्योतिष के ग्रथो से सिद्ध किया है कि किसी समय वसत विषुव ओरायन (मृगशिरा) नामक नक्षत्र मे था, जिससे वेद का काल ४५०० वर्ष ईसा पूर्व ठहरता है। इसके पहले पाश्चात्य विद्वान् कहते थे कि वेदकाल २००० ईसा पूर्व से अधिक पुराना नही है। इनके

मत का समर्थन प्रोफेसर याकोबी ने भी अपनी स्वतन्त्र गणना से किया। इस ग्रथ की गभीरता और नवीनता पर विदेशी पण्डित मैक्समूलर भी मुग्ध था।

आर्कटिक होम इन दि वेदाज—यह भी अँग्रेजी का ग्रथ है, जिसमे वेदो, पुराणो तथा ईरान की पौराणिक कथाओ और भूगर्भविज्ञान के आधार पर सिद्ध किया गया है कि प्राचीन आर्य उत्तरी ध्रुव के पास निवास करते थे और वही से जैसे-जैसे जलवायु प्रतिकूल होता गया वे भारतवर्ष मे आये। यह पुस्तक सन् १९०३ ई० मे लिखी गयी थी।

गीतारहस्य—यह दर्शनशास्त्र का एक अपूर्व ग्रथ है। इसमे भगवद्गीता के अनुवाद के साथ-साथ प्राच्य और पाश्चात्य दर्शन की तुलना करके दिखाया गया है कि भगवद्गीता का सिद्धात क्या है। इसीके एक श्लोक 'मसाना मार्गशीर्षोऽहम्' के अर्थ की खोज मे इन्होने 'ओरायन' ग्रथ का निर्माण किया था।

इन पुस्तको के सिवा 'केसरी' समाचार पत्र के द्वारा महाराष्ट्र प्रात मे ज्योतिष सबधी बातो की ओर लोगो का ध्यान आकर्षित किया और बताया कि पचाग बनाने की रीति मे किस प्रकार का सुधार करने की आवश्यकता है। इनके मत के अनुसार एक पचाग महाराष्ट्र प्रात मे चलता है जिसमे अयनाश का मान रैवत पक्ष के अनुसार माना जाता है।[1] इनका देहावसान सन् १९२१ ई० मे हुआ।

★ सुधाकर द्विवेदी

सुधाकर द्विवेदी काशी के निकट खजुरी ग्राम के निवासी थे। इनका जन्म शक १७८२ (१८६० ई०) मे हुआ था। प० बापूदेव शास्त्री के पेंशन लेने पर यह बनारस सस्कृत कालेज के गणित और ज्योतिष के मुख्य अध्यापक हुए। इनको सरकार से महामहोपाध्याय की पदवी मिली थी। यह शक १८४४ (१९२२ ई०) मे स्वर्गवासी हुए।

यह गणित और ज्योतिष के अद्वितीय विद्वान् थे। इन्होने अनेक प्राचीन ज्योतिष ग्रथो को शोध करके टीकाएँ लिखी है और अर्वाचीन उच्च गणित पर स्वतन्त्र ग्रथ भी लिखे हैं। इनके रचे ग्रथो के नाम हैं

(१) दीर्घवृत्त लक्षण (शक १८००), (२) विचित्र प्रश्न (शक १८०१) जिसमे २० कठिन प्रश्न और उत्तर है, (३) वास्तव चद्रशृगोन्नतिसाधन (शक

१ अर्थात् रेवती (जीटा पिसियम) नामक तारे से नक्षत्र-चक्र का आरम्भ माना जाता है।

१८०२), इसमे लल्ल, भास्कर, ज्ञानराज, गणेश, कमलाकर, बापूदेव आदि की लिखी रीतियो मे दोष दिखाकर यूरोपीय ज्योतिषशास्त्र के अनुसार वास्तव भ्रुगोन्नति साधन कैसे किया जाता है, दिखाया गया है। इसमे ९२ पद्य है।

४—द्युचरचार, शक १८०४ मे लिखा गया था, इसमे ग्रहो की कक्षा का विवेचन यूरोपीय ज्योतिष के अनुसार किया गया है।

५—पिडप्रभाकर, शक १८०७ मे लिखा गया था, इसमे वास्तु (भवन-निर्माण) सबधी बाते है।

६—भाभ्रमरेखानिरूपण मे दिखाया गया है कि शकु की छाया से कैसा मार्ग बनता है।

७—धराभ्रम मे पृथ्वी के दैनिक भ्रमण का विचार किया गया है।

८—ग्रहणकरण मे इस पर विचार किया गया है कि ग्रहणो का गणित कैसे करना चाहिये।

९—गोलीय रेखागणित।

१०—यूक्लिड की ६ठी, ११वी और १२वी पुस्तको का सस्कृत मे श्लोकबद्ध अनुवाद।

११—गणक-तरगिणी मे भारतीय ज्योतिषियो की जीवनी और उनकी पुस्तको का सक्षिप्त परिचय है, जिसकी चर्चा यहाँ कई जगहो पर आयी है। यह शक १८१२ मे लिखी गयी थी।

ये सब ग्रथ सस्कृत मे है। सुधाकरजी की सस्कृत टीकाओ के ग्रथ ये है—

१—यत्रराज पर प्रतिभाबोधक टीका, शक १७९५।

२—भास्कराचार्य की लीलावती पर सोपपत्तिक टीका, शक १८००।

३—भास्कराचार्य के बीजगणित की सोपपत्तिक टीका, शक १८१०।

४—भास्कराचार्य के करण-कुतूहल की वासनाविभूषण टीका, शक १८०३।

५—वराहमिहिर की पचसिद्धान्तिका पर पचसिद्धातिकाप्रकाश टीका, शक १८१० मे, जो डाक्टर थीबो की अग्रेजी टीका और भूमिका के साथ शक १८११ मे प्रकाशित हुई थी।

६—सूर्यसिद्धात की सुधावर्षिणी टीका १९०६ ई० के जून मास मे पूर्ण हुई थी और इसका पहला सस्करण 'बिब्लियोथिका इडिका' के दो भागो (सख्या ११८७ और १२९६) मे सन् १९०९ और १९११ ई० मे प्रकाशित हुआ था। इसका दूसरा सस्करण बगाल की एशियाटिक सोसायटी ने १९२५ ई० मे प्रकाशित किया, जो इस समय काशी मे मिलता है।

७—ब्राह्मस्फुट-सिद्धात टीका सहित १९०२ ई० मे प्रकाशित हुआ था।

८—आर्यभट द्वितीय का महासिद्धात टीका सहित पहले बनारस सस्कृत सीरीज, सख्या १४८, १४९ और १५० मे निकला था, जो १९१० मे पुस्तकाकार प्रकाशित किया गया था।

९—याजुष और आर्च ज्योतिष पहले बनारस की 'पडित' पत्रिका मे सोमाकर और सुधाकर के भाष्य सहित निकला था, जो १९०८ ई० मे अलग पुस्तकाकार भी प्रकाशित किया गया था।

१०—ग्रहलाघव की सोपपत्तिक टीका, जिसमे मल्लारि और विश्वनाथ की टीकाएँ भी सम्मिलित की गयी है।

इन टीकाओ के अतिरिक्त हिंदी मे 'चलनकलन', 'चलराशिकलन' और 'समीकरण मीमासा' नाम की उच्च गणित की पुस्तकें भी सुधाकरजी की लिखी हुई है। अतिम पुस्तक दो भागो मे विज्ञान-परिषद, प्रयाग, से प्रकाशित है। इन्होने हिंदी भाषा की भी पुस्तके लिखी हैं।

ऊपर के वर्णन से स्पष्ट है, सुधाकर द्विवेदी इस प्रदेश मे ज्योतिष और गणित के अद्भुत विद्वान् हो गये है। पता नही, यह ज्योतिष के आवश्यक सुधार के प्रतिकूल क्यो थे, जब इस सबध मे बहुत प्राचीन काल से यह परपरा चली आयी है कि दृक्तुल्यता के लिए आवश्यक सुधार करते रहना चाहिये। इस विषय पर इनका मत बापूदेव शास्त्री के सबध मे बताया जा चुका है।

★ पिल्लई

एल० डी० स्वामी कन्नू पिल्लई के जन्मकाल, जन्मस्थान आदि का पता नही मिल सका, परतु इनकी अग्रेजी मे लिखी 'इण्डियन क्रोनॉलोजी' एक अनोखा ग्रथ है। इसमे सौर और चाद्र तिथियो और ग्रहो की गणना करने की रीति, उपपत्ति और सारणियाँ दी गयी है और इससे ईसवी सन् के २००० वर्षों की तिथि, नक्षत्र, जन्मपत्र तथा अन्य ऐतिहासिक लेखो की तिथियो की शुद्धता परखी जा सकती है। इसमे समस्त भारतवर्ष मे प्रचलित सभी प्रकार के सवतो, तिथियो और तारीखो के जानने की रीति बहुत सरलता से समझायी गयी है। थोड़े-से अभ्यास से किसी तारीख की शुद्धता की जाँच एक मिनट मे हो सकती है।

इस पुस्तक मे बडे आकार के ११४ पृष्ठो मे भारतीय ज्योतिष के सभी व्यावहारिक अगो पर बहुत ही वैज्ञानिक रीति से प्रकाश डाला गया है। किस मास मे कौन-सी तिथि किस पर्व या त्योहार के लिए कैसे निश्चित की जाती है, पचाग कैसे बनाये जाते हैं, पचाग के अग क्या हैं, इसका पूरा विवेचन किया गया है।

इसके बाद २३२ पृष्ठो मे २२ सारणियाँ है। पहली सारणी मे दक्षिण भारत मे प्रचलित ९६७ ई० से १९२६ ई० तक का सवत्सर-चक्र दिया गया है। दूसरी में सूर्यसिद्धात और आर्यसिद्धात (आर्यभटीय) के अनुसार सौर मासो के मान, अधिमासो तथा क्षयमासो की सीमाएँ और तिथियो के मान बताये गये है। तीसरी में नक्षत्रो के नाम, उनके देवता और उनके मान वर्तमान प्रथा तथा गर्ग और ब्रह्मा के अनुसार दिये गये है। चौथी मे केवल एक पृष्ठ मे यूरोपीय तारीखो की शाश्वत जत्री दी गयी है, जिससे कोई भी ३००१ ई० पूर्व से लेकर २३९९ ई० तक की, अर्थात् कलि सवत् के आरभ मे ५३९९ कलि सवत तक की ईसवी तारीखो के वार आध मिनट मे बिना गणना के निकल सकते है। पाँचवी मे नक्षत्रो, योगो और सवत्सरो के गुणक, छठी मे सूर्यसिद्धात और आर्यसिद्धात के अनुमार शताब्दी ध्रुवाक और तिथि के अश, कला, विकला तक के गुणक दिये गये है। सातवी मे सूर्यसिद्धात और आर्यसिद्धात के अनुसार ३००० वर्ष के मेषसक्रान्तिकाल के सौर वर्ष और चद्रकेद्र के ध्रुवाक तथा सौर वर्ष की पहली अमावस्या के ध्रुवाक तथा सूर्य और चद्रकेद्र की विकलात्मक गति के गुणक दिये गये है। आठवी मे यह जानने की रीति बतायी गयी है कि किस अँग्रेजी तारीख मे कौन-सी सौर तिथि, चाद्र तिथि, नक्षत्र, योग या करण है। नवी सारणी मे तिथि, नक्षत्र और योगो को स्पष्ट करने की रीति सूर्यसिद्धात और आर्य-सिद्धात के अनुसार बतायी गयी है। इससे पचाग बहुत ही सुगमता से बनाये जा सकते है। दसवी सारणी के १०८ पृष्ठो मे ईसवी सन् के आरभ से १९९९ ई० के अत तक के प्रत्येक मास की अमावस्या की अग्रेजी तारीख और वार, कलियुग, विक्रम और ईसवी सन्, अधिमास और क्षयमास, सौर ग्रहण के दिन और वर्ष के आरभ काल का समय, उस समय का चद्रकेद्र आदि दिये हुए है, जिनसे २००० वर्ष की किसी तारीख की तिथि और वार ५ मिनट मे जाने जा सकते है। ग्यारहवी मे नक्षत्र और योग जानने के ध्रुवाक है। बारहवी मे १८४० ई० से १९२० ई० तक के कलियुग, शक, विक्रम, ईसवी, हिजरी, कोल्लम सनो के अक और प्रत्येक मास की अमावस्या का मध्यम और स्पष्टकाल और सूर्य, चद्रमा के मन्दकेद्र दिये गये है। तेरहवी मे ८ से लेकर ३५ अक्षाश तक के एक-एक अश के अन्तर के स्थानो तथा बम्बई और कलकत्ता के वर्ष के प्रतिदिन के सूर्योदय का समय दिया गया है। चौदहवी मे नर्मदोत्तर भारत मे व्यवहार किये जाने वाले ११६९ ई० से १९४० ई० तक के सवत्सरचक्र की सारणी है। पद्रहवी मे आरभ से लेकर १४२१ हिजरी सनो के समानार्थक ईसवी सन् और उन महीनो के नाम, जिनमे हिजरी वर्ष आरभ होता है, दिये गये हैं। सोलहवी मे अर्वाचीन चाद्र गणना के अनुसार स्पष्ट

तिथि निकालने के कोष्ठक है। सत्रहवी मे सूर्य, मगल, बुध, गुरु, शुक्र, शनि और राहु को स्पष्ट करने के कोष्ठक है। अठारहवी मे उपर्युक्त ग्रहो की स्पष्ट स्थिति दस-दस दिन के अतर पर सन् १८४० से १९१९ ई० तक की बतायी गयी है, जो जन्मपत्र मिलाने वालो के लिए बहुत ही उपयोगी है। उन्नीसवी मे घडी और पल के मान दिन के दशमलव भिन्नो मे तथा बीसवी मे घटा और मिनट के मान दिन के दशमलव भिन्नो मे लिखे गये है। इक्कीसवी मे नवमाशो का (प्रत्येक नक्षत्र के एक-एक चरण का) मान बताया गया है। बाईसवी मे कलियुग के आरभ से किसी दिन तक के दिनो की सख्या (अहर्गण) जानने के कोष्ठक है। अत मे एक दृष्टि-सारणी है, जिससे तिथियो की स्पष्ट गणना मौखिक ही की जा सकती है।

यह ग्रथ ज्योतिष के विद्यार्थियो, इतिहासज्ञो, पुरातत्त्व के अन्वेषको और अदालतो के लिए अत्यत उपयोगी है।

★ छोटेलाल

लाला छोटेलाल का जन्म कब और कहाँ हुआ था, यह नही ज्ञात हो सका। यह एक सुयोग्य इजीनियर थे। वेदाग-ज्योतिष पर इन्होने अँग्रेजी मे एक सुन्दर भाष्य लिखा है, जो १९०६-७ के 'हिदुस्तान रिव्यू' मे प्रकाशित हुआ था। इनकी चर्चा वेदाग-ज्योतिष के सबध मे आ चुकी है। उससे प्रकट होता है कि इन्होने भारतीय ज्योतिष का अच्छा अध्ययन किया था और इसके साथ यूनान, मिस्र, बैबिलन आदि के प्राचीन ज्योतिष का भी तुलनात्मक अध्ययन किया था। इन्होने वेदाग-ज्योतिष के कई श्लोको का अर्थ बडी विद्वत्तापूर्वक लगाया था और अपना उपनाम 'बार्हस्पत्य' रखा था।

★ दुर्गाप्रसाद द्विवेदी

दुर्गाप्रसाद द्विवेदी का जन्म सवत् १९२० (शक १७८५) मे अयोध्या से ८ कोस पच्छिम 'पण्डितपुरी' गाँव मे हुआ था। यह जयपुर की सस्कृत पाठशाला के अध्यक्ष बहुत दिनो तक रहे और अपनी विद्वत्ता के लिए महामहोपाध्याय की पदवी भी प्राप्त की।

भास्कराचार्य की 'लीलावती' और 'बीजगणित' पर इन्होने सस्कृत और हिन्दी मे उपपत्ति सहित टीका और 'सिद्धातशिरोमणि' का प्राचीन और नवीन विचारो से पूर्ण उपपत्तीन्दुशेखर नामक भाष्य लिखा है। चापीय त्रिकोणमिति, क्षेत्रमिति, सूर्य-सिद्धात समीक्षा, अधिमास परीक्षा, पचाग तत्त्व नामक पुस्तकें और अन्य पुस्तिकाएँ भी इन्होंने लिखी हैं। 'जैमिनीयपद्यामृत' नामक जैमिनिसूत्र

का पद्यानुवाद सरस छन्दो मे उदाहरण सहित किया है। ज्योतिष के अतिरिक्त दर्शन और साहित्य मे भी इनके अनेक ग्रथ है। इनका निधन सवत् १९९४ मे हुआ।

★ चुलैट

दीनानाथ शास्त्री चुलैट एक अद्वितीय ज्योतिषी है, और वेदो के मर्मज्ञ भी। इन्होने वेदो के अध्ययन से यह निष्कर्ष निकाला है कि बहुत-से मत्रो मे गणित और ज्योतिष सबधी बाते है। इन्होने कई ग्रथ लिखे है, जिनमे 'वेदकाल-निर्णय' और 'प्रभाकर-सिद्धात' मुख्य है।

वेदकाल निर्णय—इस ग्रथ मे लेखक ने यह सिद्ध किया है कि वेदो का समय केवल छ या साढे छ हजार वर्ष ही पुराना नही है, जैसा लोकमान्य तिलक ने अपने 'ओरायन' ग्रथ मे सिद्ध किया है, वरन् इनके कुछ मत्रो से सूचित होता है कि वे लाखो वर्ष पुराने हैं। लोकमान्य तिलक ने तो भगवद्गीता के 'मासाना मार्गशीर्षोऽहम्' मे केवल यही सिद्ध किया, और बडी कठिनता से, कि मार्गशीर्ष पहला मास इसलिए समझा जाता था कि छ हजार वर्ष पहले इसी नाम के नक्षत्र मे, अर्थात् मृगशिरा नक्षत्र मे, वसत विषुव था। परतु चुलैटजी ने इसके प्रतिकूल यह सिद्ध किया है कि मृगशिरा नक्षत्र मे नही वरन् मार्गशीर्ष मास मे ही वसत का आरभ होता था, अर्थात् उस समय अनुराधा या ज्येष्ठा नक्षत्र मे वसत विषुव था, इस प्रकार वह समय १८००० वर्ष पुराना था।

इसी प्रकार 'कात्यायन श्रौतसूत्र' के भाष्यकार कर्काचार्य के उद्धरणो से यह सिद्ध करते हैं कि उनके समय मे वसत-विषुव चित्रा और स्वाती नक्षत्रो के बीच मे था, इसलिए कर्काचार्य का समय चौदह, पन्द्रह हजार वर्ष प्राचीन है। इस पुस्तक मे आप भूगर्भविज्ञान के अनेक चित्र देकर यह सिद्ध करते है कि सस्कृत साहित्य मे वर्णित जलप्रलयो और भूगर्भविज्ञान के विविध कालो मे बहुत साम जस्य है। पुस्तक अद्भुत है और हिंदी भाषा मे लिखी गयी है। भाषा सरल और शुद्ध नही है, इसलिए पढने वालो को कुछ कठिनाई पडती है।

प्रभाकर-सिद्धान्त—इसमे ग्रहलाघव के मूलाको मे अर्वाचीन ज्योतिष के आधार पर बीजसस्कार देकर ग्रहो की शुद्ध गणना करने की रीति बहुत सुगम कर दी गयी है। इसी के आधार पर शास्त्री जी पहले 'प्रभाकर पचाग' बनाते थे, जिसमे ऐसा उपाय किया गया था कि वह सारे भारतवर्ष मे काम दे सके। इसी के आधार पर बनाया हुआ 'भारत विजय' पचाग इदौर के ज्योतिष सम्मेलन के बाद, जिसका आयोजन इन्होने ही इन्दौर सरकार की सहायता से किया था, सवत् १९९५ मे

प्रकाशित हुआ था। इस पचाग मे भी इतनी सामग्री भर दी गयी है कि यह एक उपयोगी ग्रथ-सा हो गया है।

इदौर के ज्योतिष-सम्मेलन की रिपोर्ट भी एक बृहदाकार ग्रथ है, जिसमे दृग्गणना के पक्ष और विपक्ष दोनो ओर की बाते रखकर सिद्ध किया गया है कि दृग्गणना ही उचित है।

★ आप्टे

गोविन्द सदासिव आप्टे का जन्म शक १७९२ (१८७० ई०) मे महाराष्ट्र प्रात मे हुआ था। यह गणित के प्रोफेसर रहे है और अवकाश ग्रहण करने पर बहुत दिनो तक उज्जैन की वेधशाला के प्रधान रहे। इनका देहावसान १९४१ मे हुआ। इन्होने शक १८५१ (१९२९ ई०) मे 'सर्वानन्द-करण' नामक ज्योतिष ग्रथ की रचना प्रसिद्ध ग्रहलाघव के ढग पर की है। इसके पूर्व खड मे कुल ११ अधिकार है, जिनमे सूर्य, चद्रमा और ग्रहो की गणना करने की सरल रीतियाँ बतायी गयी हैं। चद्रमा मे केवल पाँच सस्कार करने को कहा गया है। इस ग्रथ की विशेषता यह है कि इसमे ग्रहो के जो भोगाश आते है वे सायन होते है। सायन से निरयन बनाने के लिए अयनाश घटा देना पडता है, जो अपने-अपने मत के अनुसार लगाया जा सकता है। इसलिए यह पुस्तक प्रत्येक पक्ष के लिए उपयोगी हो सकती है। इस सम्बन्ध मे आप केतकर के चित्रापक्ष के प्रबल विरोधी हैं। आपने एक अग्रेज़ी पुस्तिका मे कई प्रमाणो से सिद्ध किया है कि भारतीय राशिचक्र का आदि स्थान वह नही है जहाँ से चित्रा तारा ठीक १८० अश पर है वरन् रेवती नक्षत्र का जीटा पिसियम तारा है, जिसके अनुसार अयनाश लगभग ४ अश कम ठहरता है। इनके इस मत के समर्थक महाराष्ट्र मे कई विद्वान् है। इस पक्ष के अनुसार वहाँ कई पचाग भी बनते है। चित्रा और रेवती पक्ष के पचागो मे मलमास के सबध मे बहुत भिन्नता रहती है जिसके कारण पर्वो और त्योहारो के निश्चय करने मे वहाँ बहुत गडबडी रहती है।

इस खड मे एक उपकरणाधिकार है, जिसमे चद्रमा की सूक्ष्मगति निकालने की भी रीति बतायी गयी है। इससे चद्रग्रहण और सूर्यग्रहण का समय सूक्ष्मतापूर्वक बताया जा सकता है। 'सूर्यातिक्रमणाधिकार' मे यह बताया गया है कि बुध और शुक्र सूर्य के बिम्ब का वेध कब करते है। इस खड के परिशिष्ट मे आपने दस-दस कलाओं की भुजज्या, कोटिज्या और स्पर्शज्या की सारणी दी है, जिसमे त्रिज्या १०,००० मानी गयी हैं।

उत्तर खड मे आपने अपने दशमलव भिन्नो के गुणा-भाग की रीति बताकर नवीन रीति से ग्रहगणना करने की विधि लिखी है, जिसमें त्रिकोणमिति और गोलीय त्रिकोणमिति के अनुसार गणना करने की रीति बतायी गयी है। क्योंकि यह उन्हीं को प्रिय हो सकता है जो उच्च गणित का ज्ञान रखते हैं। इसलिए इस खड का नाम प्रौढ-रजन रखा गया है। इसमे सौरार्यतिथि-साधन सूक्ष्म नक्षत्रानयन, तिथि-तारीखानयन और उपपत्तिकथन नामक अध्याय बहुत महत्त्व के है।

यह ग्रथ उज्जैन मे लिखा गया था, जहाँ स्थापित वेधशाला का पुनरुद्धार इनके द्वारा किया गया है।

★ उपसहार

भारतीय ज्योतिष और ज्योतिषियो के सबध मे यहाँ तक जो कुछ लिखा गया है उसकी बहुत-सी सामग्री महामहोपाध्याय पडित सुधाकर द्विवेदी की 'गणक-तरगिणी' और आचार्य शकर बालकृष्ण दीक्षित के 'भारतीय ज्योतिषशास्त्र' मे ली गयी है। इनमे आये हुए कुछ ज्योतिषियो और उनके ग्रथो की चर्चा विस्तार-भय से छोड दी गयी थी, जो नीचे की तालिका मे दी जाती है—

ग्रन्थकर्ता	ग्रन्थ	रचनाकाल शक	विशेष
बल्लभद्र	?	८८८ ?	कोई ग्रन्थ उपलब्ध नही है। भट्टोत्पल और पृथूदक स्वामी की टीकाओ में कुछ श्लोको के अवतरण है।
वरुण	खण्डखाद्यक की टीका	९६२ ?	इस टीका मे ९६२ शक के उदाहरण है।
दशबल	करणकमल मार्तण्ड	९८०	राजमृगाकोक्त बीजसस्कृत ब्रह्म-सिद्धान्त के अनुसार करणग्रथ।
राजा ?	करणोत्तम	१०३८	इसकी चर्चा महादेव कृत श्री-पति रत्नमाला मे कई बार आयी है और जातक-सार मे भी एक श्लोक है।
सामेश्वर	अभिलषितार्थ-चितामणि	१०५१	अनेक विषयो का सग्रह, जिसमे ज्योतिष का भी विषय है और १०५१ शक के क्षेपक है।
भूलोकमल्ल	मानसोल्लास	?	

ग्रन्थकर्ता	ग्रंथ	रचनाकाल शक	विशेष
माधव	सिद्धांतचूडामणि	?	भास्कराचार्य के सिद्धांतशिरोमणि में उल्लेख है परन्तु पुस्तक का अब पता नहीं है।
ब्रह्मा	बीजगणित	?	भास्कराचार्य के बीजगणित में उल्लेख है परन्तु पुस्तक का पता नहीं है।
विष्णु दैवज्ञ	बीजगणित	?	
अनन्त दैवज्ञ	ब्राह्म स्फुट-सिद्धान्त के छंदश्चित्युत्तर और बृहज्जातक पर टीकाएँ	?	शक ११४४ के एक शिलालेख से ज्ञात।
भोजराज ?	आदित्यप्रताप-सिद्धान्त	?	श्रीपति की रत्नमाला की महादेवी टीका (शक ११८५) में इसके कुछ वाक्यों का उल्लेख है और आफ्रेच सूची में इसके कर्ता भोजराज कहे गये है।
चक्रेश्वर	ग्रहसिद्धि ?	?	
नार्मद	सूर्य-सिद्धांत की टीका या इसके आधार पर कोई ग्रन्थ जिसका पता नहीं है	१३०० के लगभग	यह पद्मनाभ के पिता थे।
सूर्यदेव यज्वा	आर्यभटीय प्रकाशिका टीका	?	ईसवी १२वीं शताब्दी (दत्त और सिंह)।
रामचन्द्र	कल्पद्रुम करण	?	करण-कुतूहल की १४८२ शक की टीका में यह नाम है।
अनन्त	महादेवकृत कामधेनु की टीका, जातक पद्धति	१४८० ?	
रघुनाथ	सुबोधमंजरी (करण)	१४८४	ब्रह्मपक्षीय ग्रन्थ

ग्रन्थकर्ता	ग्रंथ	रचनाकाल शक	विशेष
कृपाराम	वास्तुचंद्रिका	शक १४२० के बाद	बीजगणित, मकरंद, यन्त्रचिंतामणि पर उदाहरण सहित टीका तथा सर्वार्थ चिंतामणि, पंचपक्षी और मुहूर्त-तत्त्व की टीका भी लिखी है।
रघुनाथ शर्मा	मणिप्रदीप (करण)	१४८७	सिद्धान्तशिरोमणि और सूर्य-सिद्धान्त के आधार पर।
नारायण	मुहूर्तमार्तण्ड और इस पर टीका, मार्तण्ड वल्लभ	१४९३-९४	मुहूर्त ग्रन्थ।
दिनकर	खेटकसिद्धि, चंद्रार्की	१५००	ब्रह्मसिद्धान्त के अनुसार करण-ग्रन्थ।
गंगाधर	ग्रहलाघव की मनोरमा टीका	१५०८	
श्रीनाथ	ग्रहचिंतामणि (करण)	१५१२	
गणेश	जातकालंकार	१५३५	जातक पर प्रसिद्ध पुस्तक।
नाग या नागेश	ग्रहप्रबोध	१५४१	दृग्गणितानुसार करणग्रन्थ।
विट्ठल दीक्षित	मुहूर्तकल्पद्रुम और उसकी टीका, मुहूर्त-कल्पद्रुम-मंजरी	१५४९ ?	मुहूर्तग्रन्थ।
नारायण	केशवपद्धति टीका, नारायणीबीजम्		ये मुनीश्वर के गुरु थे, जो शक १५२५ में पैदा हुए थे। दूसरी पुस्तक बीजगणित पर है।

ग्रन्थकर्ता	ग्रंथ	रचनाकाल शक	विशेष
शिव दैवज्ञ	अनन्तसुधारसविवृत्ति (गणित), मुहूर्त-चूडामणि (मुहूर्त)	जन्मकाल १५२८	कृष्ण दैवज्ञ के पुत्र और नृसिंह दैवज्ञ के अनुज।
बलभद्रमिश्र	हायनरत्न (ताजिक ग्रन्थ)	१५६४	राम दैवज्ञ के शिष्य, शाहजहाँ के द्वितीय पुत्र शाहसुजा के आश्रित।
सोम दैवज्ञ	कल्पलता	१५६४	संवत्सर के राजा, मंत्री आदि के शुभाशुभ फल पर विचार।
रंगनाथ	सिद्धांत-शिरोमणि की मितभाषिणी टीका, सिद्धांत-चूडामणि	१५६२	ये नृसिंहदैवज्ञ के पुत्र और कमलाकर के भाई थे। सूर्य-सिद्धांत के अनुसार करणग्रंथ की रचना की थी।
कृष्ण	करणकौस्तुभ	१५७५	महाराज शिवाजी के समय में ग्रहकौतुक, ग्रहलाघव तथा निज वेध के अनुसार करण ग्रंथ बनाया।
यादव	ग्रहप्रबोध पर उदाहरण सहित टीका	१५८५	
रत्नकंठ	पंचांगकौतुक	१५८०	खण्डखाद्यक के अनुसार पंचांग बनाने के लिए उपयोगी।
वरुण	वार्षिक तंत्र	१६०० से पूर्व	वर्तमान सूर्य-सिद्धांत के अनुसार।
जटाधर	फत्तेशाह-प्रकाश	१६२६	श्रीनगर के चंद्रवंशी राजा के नाम पर।
दादाभट	किरणावलि	१६४१	सूर्यसिद्धांत की टीका।
शंकर	वैष्णव करण	१६८८	भास्कराचार्य के अनुसार।

ग्रन्थकर्ता	ग्रंथ	रचनाकाल शक	विशेष
परमानन्द पाठक	प्रश्नमाणिक्यमाला	१६७०	जन्मकुंडली के भावो का शुभाशुभ फल विचार है। यह काशिराज बलवंतसिंह के प्रधान गणक थे।
भुला	ब्रह्मसिद्धांतसार	१७०३	ब्रह्मपक्षानुसार सिद्धांतग्रन्थ, सिद्धान-शिरोमणि और ग्रहलाघव के आधार पर लिखा गया।
मथुरानाथ शुक्ल	१–यंत्रराजघटना, २–नक्षत्रस्थापन विधि	१७०४	राजा शिवप्रसाद सितारे-हिंद, के बाबा डालचंद के आश्रित थे।
चिंतामणि दीक्षित	१–सूर्यसिद्धांत की सारणी २–गोलानन्द (वेधग्रंथ)	 १७१३	
राघव (खाडेकर)	१–खेटकृति २–पंचांगार्क ३–पद्धति-चंद्रिका	१७३२ १७३९ १७४०	पहली पुस्तक ग्रहलाघव के अनुसार है, दूसरी सिद्धान्त ग्रन्थ है और तीसरी जातक पर है। ग्रहलाघव के अनुसार।
शिवदैवज्ञ	तिथिपारिजात	१७३७	
यज्ञेश्वर (बाबा जोशी रोडे)	१–ज्योति पुराण-विरोध-मर्दन २–यंत्रराज-वासना टीका ३–गोलानन्द की अनुभावकी टीका ४–मणिकांति टीका ५–प्रश्नोत्तरमालिका	१७५९ १७६४	
विनायक पांडुरंग	वैनायिकी ताजिकग्रन्थ		
खानापूरकर	सिद्धांतसार		

भारतीय ज्योतिष का प्रसार

★ अरब देशों में

ब्रह्मगुप्त के वर्णन में यह चर्चा की गयी थी कि इनके दोनो ग्रंथो का अनुवाद अरबी मे कराया गया था। यहाँ इस संबंध मे कुछ विशेष बातें बतायी जाती है। रोम के प्रोफेसर सी० ए० नलिनो 'इन्साइक्लोपीडिया ऑव रिलिजन ऐंड एथिक्स' अध्याय १२,९५मे लिखते है,[१]"ज्योतिष के प्रथम वैज्ञानिक मूलांको के लिए मुसलमान भारतवर्ष के ऋणी है। ७७१ ई० मे भारतवर्ष की एक विद्वन्मंडली बगदाद गयी, इसके एक विद्वान् ने अरबो को 'ब्राह्मस्फुट सिद्धान्त' का परिचय कराया, जिसे ब्रह्मगुप्त ने संस्कृत मे ६२८ ई० मे लिखा था। इस ग्रंथ से (जिसे अरब वाले 'अल सिंदहिंद' कहते थे) इब्राहीम इब्न हबीब-अल-फजारी ने मूलांको और गणना की रीतियो को लेकर अपने ज्योतिष की सारणियाँ मुसलमानी चान्द्र वर्ष के अनुसार तैयार कीं। प्राय इसी काल मे याकूब इब्न तारीक ने अपनी 'तरकीब-अल-अफलाक' (खगोल की रचना) लिखी, जो 'ब्राह्मस्फुट-सिद्धांत' के मूलांको और रीतियो पर तथा उन ध्रुवांको पर जिन्हे एक दूसरे भारतीय वैज्ञानिक ने एक दूसरी मंडली के साथ १६१ हिजरी (७७७-७७८ ई०) मे बगदाद आकर दिया था, आश्रित थी। ऐसा जान पड़ता है कि प्राय उसी समय 'खण्डखाद्यक' का भी अरबी मे 'अलअकन्द' के नाम से अनुवाद किया गया, जिसे ६६५ ई० मे ब्रह्मगुप्त ने ही रचा था परन्तु जिसके मूलांक उसके पहले ग्रंथ के मूलांको से भिन्न थे। अलफजारी और याकूब इब्न तारीक के समकालीन अबुल हसन अल अहवाजी ने विद्वान् भारतवासियो की शायद मौखिक शिक्षाओ से प्रभावित होकर 'अल अर्जभद' (अर्थात् आर्यभट) के अनुसार ग्रहगतियो का परिचय अरबो को कराया। मुसलिम संसार मे हिजरी सन् की पंचम शताब्दी के पूर्वार्ध (ईसवी ११वी शताब्दी) के अन्त तक इन भारतीय ग्रंथो के बहुत से अनुगामी हुए। कुछ ज्योतिषियो ने (जैसे हबश, अननैरीजी, इब्न अस्सभ ने) भारतीय मूलांको और प्रणालियो के आधार पर भी पुस्तकें लिखी और यूनानी-अरबी मूलांको के अनुसार भी। दूसरो ने (जैसे मुहम्मद इब्न इसहाक अस सरहसी, अबुल-वफा, अलबीरूनी, अलहजीनी ने) उन मूलांको को ग्रहण किया, जिनकी गणना मुसलमान ज्योतिषियो ने भारतीय ज्योतिषियो के अनुकरण मे कृत्रिम दीर्घ युगो के अनुसार की थी।"

१ जी० आर० के० की हिंदू ऐस्ट्रॉनोमी, पृष्ठ ४९ की पाद-टिप्पणी।

इस संबंध में अलबीरूनी ने अपने अरबी ग्रंथ में, जिसका अँग्रेजी भाषान्तर बर्लिन के प्रोफेसर एडवर्ड सी० साचो ने किया है और जिसका हिंदी अनुवाद इंडियन प्रेस ने प्रकाशित किया है, भारत पर बहुत कुछ लिखा है। यह विद्वान् ९७३ ई० में खीवा में उत्पन्न हुआ था और महमूद गजनवी के साथ भारतवर्ष में आकर यहाँ सन् १०१७ ई० से लेकर १०३१ ई० तक रहा था और संस्कृत भाषा सीख कर इसके साहित्य की बहुत-सी, विशेषकर ज्योतिष की, बातें जान कर अरबी में पूर्वोक्त ग्रंथ का निर्माण किया था। वह लिखता है कि पूर्वकालीन मुसलिम ज्योतिषियों ने 'आर्यभट' और अन्य सिद्धांत ग्रंथों की चर्चा की है। 'आर्यभट' का एक अरबी रूपान्तर 'आर्जबह' था जो और बिगड़ कर 'आज्जभर' हो गया। अलबीरूनी लिखता है कि 'सिंदहिंद' नाम की अरबी पुस्तक को हिंदू लोग सिद्धांत कहते हैं।

★ यूरोप और अमेरिका में

ईसा की १७ वीं शताब्दी के अन्त में यूरोप में भारतीय ज्योतिष की चर्चा आरंभ हुई, जिसमें लाप्लास बली प्लेफेयर, डीलाम्बर, सर विलियम जोन्स, जान बेंटली आदि ने भाग लिया। १६९१ ई० में फ्रांस के प्रसिद्ध ज्योतिषी जियोवनी डोमिनिको कैसिनी ने डी० ला० लूबियर के आसाम से लाये हुए कुछ ज्योतिष संबंधी नियमों का प्रकाशन किया और उसके थोड़ी ही देर बाद 'हिस्टोरिया रेग्नी ग्रीकोरम बैक्ट्रीयानी' के परिशिष्ट में टी० एस० बेयर ने हिंदू ज्योतिष की चर्चा की, जिसमें लियोनार्ड ऑयलर का एक निबंध ३६५ दिन ६ घंटा १२ मिनट और ३० सेकंड के हिंदू वर्ष पर था। १७६९ ई० में लीवेंटिल नामक ज्योतिषी पांडीचेरी में शुक्र की वेधयुति देखने के लिए आया और १७७२ ई० में उसने 'त्रिवेलोर सारणी और हिंदू ज्योतिष पर एक लेख प्रकाशित किया। इस प्रकाशन का सबसे महत्त्वपूर्ण प्रभाव यह पड़ा कि जीन सिल्वेन बेली (पेरिस का पहला मेयर और नेशनल एसेंबली का सभापति, जिसने १७३६ ई० में जन्म लिया और जो १७९३ ई० में शूली पर चढ़ाया गया) इस ओर आकर्षित हो गया और १७८७ ई० में भारतीय ज्योतिष पर एक ग्रंथ[1] प्रकाशित किया। बेली की पुस्तक से लाप्लास और प्लेफेयर का ध्यान इस ओर बहुत आकर्षित हुआ। प्लेफेयर ने १७९२ ई० में एशियाटिक सोसाइटी में व्याख्यान देकर सुझाया कि हिंदू गणित और ज्योतिष का नियमपूर्वक अनुशीलन किया जाय।

इसी बीच में एस० डेविस ने १७८९ ई० में सूर्य-सिद्धांत का विश्लेषण किया और लिखा कि इस ग्रंथ में रविमार्ग की परम क्रांति २४ अंश है, जो आकाश के

१ ट्रेट डी ला ऐस्ट्रॉनोमी इंडियन एट ओरियंटल।

प्रत्यक्ष अवलोकन से जानी गयी होगी और यह अवलोकन २०५० ई० पूर्व किया गया होगा। सर विलियम जोन्स ने इसका समर्थन किया और कहा कि भारतीय नक्षत्र-चक्र अरब या यूनान से नही लिया गया। १७९९ ई मे जॉन बेटली ने बेली की इस बात का विरोध किया कि भारतीय ज्योतिष बहुत प्राचीन है और यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया कि सूर्य-सिद्धात १०९१ ई० के आसपास का बना हुआ है। इस सबध मे कोलब्रुक, डीलाम्बर और बेटली ने १८२५ ई० तक अच्छा वादविवाद किया। परतु इसके साथ-साथ भारतीय ज्योतिष का अनुशीलन भी होता रहा। बगाल के सेनानायक सर डब्लू० बार्कर ने काशी के जयसिह-निर्मित मान-मदिर के यत्रो का अध्ययन किया और इसके कुछ बाद ही प्लेफेयर ने अपना सुझाव उपस्थित किया। १७९९ ई० मे हटर ने उज्जैन की वेधशाला का ब्योरेवार वर्णन लिखा। परतु भारतीय ज्योतिष के इतिहास का सच्चा ज्ञान प्राप्त करने के लिए वेबर (१८६०-६८ ई०), ह्विटनी (१८५८) और थीबो (१८७७-१८८९) ने नीव डाली। वेबर ने वेदाग-ज्योतिष, ह्विटनी ने सूर्य-सिद्धात का अनुवाद अपनी आलोचनात्मक टिप्पणियो के साथ और थीबो ने वराहमिहिर की पच-सिद्धातिका अपने अनुवाद और टिप्पणियो के साथ प्रकाशित किये। इनके साथ साचौ ने अलबीरूनी के भारत विषयक ग्रथ का अनुवाद किया और यह सिद्ध करने की चेष्टा की कि मध्यकालीन हिंदू ज्योतिष और यूनानी ज्योतिष मे घनिष्ट सबध है। इसलिए प्राच्य-विद्याविशारदो का ध्यान वैदिक और वेदोत्तर कालो की ओर गया। १८९३ ई० मे जैकोबी और तिलक ने अलग-अलग सुझाव उपस्थित किये कि वैदिक ग्रथो मे ऐसे प्रमाण मिलते है जिनसे सिद्ध होता है कि वैदिक काल बहुत प्राचीन है, परतु ह्विटनी, ओल्डेनबर्ग और थीबो ने इसका घोर विरोध किया।[1]

★ बरजेस का कार्य

इस वादविवाद के बीच मे रेवरेड ई० बरजेस ने सन् १८६० ई० मे सूर्य-सिद्धात का प्रसिद्ध अनुवाद अमेरिकन ओरिएटल सोसायटी के जरनल मे प्रकाशित किया, जिसमे भारतीय ज्योतिष के पक्ष और विपक्ष मे कहने वालो के पक्ष का वैज्ञानिक रीति से विचार किया गया और दिखाया गया कि भारतीय ज्योतिष का महत्त्व क्या है। इस सुन्दर अनुवाद का दूसरा सस्करण कलकत्ता विश्वविद्यालय के फणीन्द्रलाल गगोली द्वारा सम्पादित होकर प्रबोधचन्द्र सेनगुप्त की भूमिका के साथ कलकत्ता विश्वविद्यालय द्वारा सन् १९३५ ई० मे प्रकाशित हुआ।

१ जी० आर० के० की हिंदू ऐस्ट्रॉनोमी की भूमिका का सारांश।

भारतीय ज्योतिष का एक दूसरा ग्रथ डब्लू ब्रेनैड ने सन् १८९६ ई० मे लिखा था, जिसके प्रथम भाग के १३ अध्यायो मे हिंदू ज्योतिष पर यूनान, मिस्र, चीन और अरब के ज्योतिष के साथ तुलनात्मक विचार किया गया है और कई पौराणिक कथाओ का, जसे शिव और दुर्गा का विवाह, सती की मृत्यु आदि का, सबध ज्योतिषिक घटनाओ से बताया गया है और दूसरे भाग मे सूर्य-सिद्धात का अँग्रेजी मे अनुवाद किया गया है। इस विद्वान् का विश्वास था कि यूरोप वालो ने हिंदुओ को उनके साहित्य और गणितीय विज्ञान के लिए उतना श्रेय नही दिया जितने के वे अधिकारी हैं। यह ग्रथ लदन मे १८९६ ई० मे मुद्रित और प्रकाशित हुआ था। ब्रेनैड महाशय बगाल मे बहुत दिन तक किसी कालज के अध्यक्ष रह चुके थे।

इन ग्रथो के होते हुए भी जी० आर० के० महाशय अपने विविध लेखो और हिंदू एस्ट्रॉनोमी मे हिंदू ज्योतिष के सबध मे कुछ बाते ऐसी लिखते हैं जिससे सिद्ध होता है कि ये भी भारतीय ज्योतिष को उतना श्रेय नही देना चाहते थे जितने का वह अधिकारी है। इसका उत्तर प्रयाग के श्री नलिनबिहारी मित्र ने १९१५-१६ के 'माडर्न रिव्यू' मे और कलकत्ता विश्वविद्यालय के कई आचार्यों ने, विशेषकर डाक्टर विभूतिभूषण दत्त और प्रबोधचन्द्र सेनगुप्त ने, भारतीय और यूनानी ज्योतिष का तुलनात्मक अध्ययन करके दिया है।

★ आधुनिक खोज

वर्तमान समय मे ज्योतिष मे बहुत लगन के साथ खोज जारी है। सारी दुनिया के ज्योतिषी इसी मे लगे हुए है कि कोई नवीन बात निकाले। वह बात केवल एक देश के लिए ही नही, सारे ससार के लिए नवीन होनी चाहिये। ज्योतिषियो की खोज के परिणाम ज्योतिष और वैज्ञानिक पत्रिकाओ मे छपते रहते है और प्रति वर्ष कई हजार पृष्ठ नवीन खोजो के विवरण मे छपते है। हमारे भारतीय ज्योतिषी भी इसमे सहयोग देते है, यद्यपि बडी वेधशालाओ के अभाव से और प्रोत्साहन न मिलने से पिछले वर्षों मे अन्य देशो से भारत पिछडा हुआ था। तो भी डॉक्टर मेघनाथ साहा, प्रोफेसर एस० चद्रशेखर इत्यादि ने ऐसा काम किया है कि विदेशो मे भी भारत का नाम है। यो तो वे सभी जो ज्योतिष विषय लेकर विश्वविद्यालयो से डॉक्टर की उपाधि लेते है, थोडी-बहुत खोज अवश्य करते है और ज्योतिष मे नवीन बातो का पता लगाते हैं। उदाहरणार्थ इन पक्तियो के लेखक ने भी इस पर खोज की कि तारो की निजी गति और उनकी चमक मे क्या सबध रहता है। उत्तर प्रदेश के डॉक्टर चद्रिकाप्रसाद, डॉक्टर हरिकेशव सेन और डॉक्टर

रामसिंह कुशवाहा ने, तथा अन्य कुछ व्यक्तियो ने भी, ज्योतिष मे खोज की है और कर रहे है ।

हमारे प्राचीन ज्योतिषी इसी मे जुटे रहते थे कि सूर्य, चद्रमा और ग्रहो की स्थितियो की गणना कैसे की जाय । परतु यह विषय अब प्राय पूर्ण समझा जाता है । इस विषय पर सारे ससार मे इने-गिने ही व्यक्ति काम करते होगे । इन दिनो अधिकतर खोज तारो के सबध मे हो रही है और गत पचास वर्षों मे आश्चर्यजनक ज्ञानवृद्धि हुई है । उदाहरण के लिए अब यह प्रमाणित हो गया है कि हमारे तारो की दुनिया का विस्तार सीमित है और हमारी ही जैसी तारो की बस्तियाँ असख्य है । वे एक दूसरे से दूर-दूर पर बसी हुई है । अब यह चेष्टा की जा रही है कि पता चले कि तारो की भीतरी सरचना कैसी है ।[1] इसमे भी बहुत-कुछ सफलता मिली है । इस खोज मे इन दिनो भौतिक विज्ञान और रसायन से ज्योतिष का बहुत घना सबध हो गया है । एक प्रकार से ऐटम बम के बनाने का सूत्रपात वहाँ से होता है जब से ज्योतिषियो ने इस प्रसग को उठाया कि सूर्य ठडा क्यो नही हो जाता, और यदि वह आग का गोला है तो अब तक जलकर भस्म क्यो नही हो गया ।

ज्योतिष के अब कई विभाग हो गये है । वर्णनात्मक ज्योतिष मे आकाशीय पिडो के रूप-रग का अध्ययन किया जाता है, उनकी गति अथवा रासायनिक तथा भौतिक सरचना से विशेष सरोकार नही रहता । गतिक ज्योतिष मे इस विषय का अध्ययन किया जाता है कि आकाशीय पिडो के परस्पर आकर्षण से उनमे क्या गति उत्पन्न होगी । सूर्य, चद्रमा और ग्रहो की स्थितियाँ बता सकने का काम इसी विभाग के आधार पर सभव है । भौतिक ज्योतिष मे आकाशीय पिडो की रासायनिक तथा भौतिक सरचना पर विशेष ध्यान दिया जाता है । भौतिक विज्ञान की उस शाखा को ज्योतिष-भौतिकी कहते है, जिसमे तारो आदि की सरचना का अध्ययन किया जाता है । इसमे और भौतिक ज्योतिष मे कोई भेद नही । गोलीय ज्योतिष मे आकाशीय पिडो की स्थितियो पर विशेष ध्यान दिया जाता है—उनकी स्थितियाँ कैसे नापी जायँ, इन नापो मे क्या-क्या त्रुटियाँ रह जाती है, और वे कैसे दूर की जाती है, ग्रहणादि क्यो और कब लगते है, और समय कैसे नापा जा सकता है, इन सब विषयो पर ज्योतिष की इसी शाखा मे विचार किया जाता है ।

१ देखें गोरखप्रसाद कृत 'नीहारिकाएँ' (बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद, पटना) ।

१८

भारतीय पंचांग

पूर्वगामी अध्यायो को पूर्णतया समझने के लिए यह आवश्यक है कि पाठक को भारतीय पचाग का कुछ ज्ञान हो। इसलिए इस अध्याय मे इस विषय को सरल रीति से समझा दिया गया है।

पचाग बताता है कि वर्ष का आरभ कब हुआ, किसी दिन क्या दिनाक (तारीख) है, इत्यादि। पचाग के सबध मे प्राचीन समय के लोगो को कठिनाई इसलिए पडती थी कि लोग वर्षमान—वर्ष की लबाई—ठीक-ठीक नही नाप पाते थे। फिर, तब और अब भी, एक कठिनाई इसलिए उत्पन्न होती है कि एक वर्ष मे दिनो की सख्या या चाद्र मासो की सख्या, कोई पूर्ण सख्या नही है, और न एक चाद्र मास मे ही दिनो की सख्या कोई पूर्ण-सख्या है।

यदि उद्देश्य यह हो कि वर्षारभ सदा एक ही ऋतु मे हो तो वर्षमान ठीक-ठीक सायन होना चाहिये, अन्यथा गडबडी पडेगी। उदाहरणार्थ, मुसलिम धार्मिक वर्ष ठीक १२ चाद्र मासो के बराबर होता है, अर्थात् उसका मान, मोटे हिसाब से २९½ × १२, अर्थात् ३५४ दिन, होता है। परतु सायन वर्ष ३६५.२४२२ दिन का होता है। इसलिए किसी एक वर्ष मे यदि मुसलिम वर्ष का आरभ उस दिन से हुआ जब वसंत मे दिन रात बराबर होते है, अर्थात् वसत विषुव पर, तो आगामी वसत विषुव से लगभग ३६५¼ —३५४, अर्थात ११¼, दिन पहले ही मुसलिम वर्ष का अत हो जायगा और नया वर्ष आरभ हो जायगा। अगली बार नया वर्ष वसत विषुव आने के २२½ दिन पहले ही आरभ हो जायगा, और इसी प्रकार आगे भी। यही कारण है कि मोहर्रम या रमज़ान का महीना किसी भी ऋतु मे पड सकता है। यदि किसी वर्ष रमज़ान जाडे में है तो कुछ ही वर्ष बाद वह बरसात मे

पडेगा । अधिक समय बीतने पर वह गर्मी की ऋतु मे पडेगा और लगभग ३६५$\frac{१}{४}$ — ११$\frac{१}{४}$ वर्षों के बाद वह फिर जाडे मे पडेगा ।

★ भारतीय पचाग

सस्कृत मे 'पचाग' नाम इसलिए पडा है कि इसमे पाँच वस्तुएँ बतायी जाती है (१) तिथि (जो दिनाक अर्थात् तारीख का काम करती है), (२) वार, अर्थात् कोई दिन रविवार, सोमवार,. मे से कौन-सा दिन है, (३) नक्षत्र (जो बताता है कि चद्रमा तारो के किस समूह मे है), (४) योग (जो बताता है कि सूर्य और चद्रमा के भोगाशो का योग क्या है), और (५) करण (जो तिथि का आधा होता है) ।

पूर्वोक्त पाँच बातो के अतिरिक्त हिंदी पचागो मे साधारणत यह भी दिया रहता है कि अग्रेजी दिनाक (तारीख) क्या है, मुसलिम तारीख क्या है, दिनमान क्या है (अर्थात् सूर्योदय से सूर्यास्त तक कितना समय लगेगा), चद्रमा का उदय और अस्त किन-किन समयो पर होगा, चुने हुए दिनो पर आकाश म ग्रहो की क्या स्थितियाँ रहेगी और इनके अतिरिक्त फलित ज्योतिष की बहुत-सी बाते दी रहती है । आगे हम तिथि आदि को अधिक ब्योरे के साथ समझायेंगे ।

तिथि और वार—चद्रमा और सूर्य के भोगाशो के अतर से तिथि का निणय होता है, जब यह अतर ०° और १२° के बीच रहता है तो तिथि को प्रतिपदा कहते है, अतर के १२° और २४° के बीच रहने पर तिथि को द्वितीया कहते है, इसी प्रकार तृतीया, चतुर्थी, पचमी, षष्ठी, सप्तमी, अष्टमी, नवमी, दशमी, एकादशी, द्वादशी, त्रयोदशी और चतुर्दशी होती है । आगामी तिथि अमावस्या या पूर्णिमा होती है । इस प्रकार एक चाद्र मास मे ३० तिथियाँ होती है । परिभाषा से स्पष्ट है कि तिथि दिन या रात के किसी भी समय बदल सकती है । इसलिए पचाग मे लिखा रहता है कि अमुक तिथि का अत अमुक समय होगा । पचागो मे समय की इकाई साधारणत १ घटी होती है (जो २४ घटे के एक दिन के $\frac{१}{६०}$ के बराबर होती है) । घटी के ६० वे भाग को पल और पल के ६० वे भाग को विपल कहते है । पचागो मे समय साधारणत सूर्योदय से नापा जाता है । उदाहरणार्थ, यदि किसी विशेष तिथि (जैसे पचमी) के सम्मुख समय ४ घटी ५१ पल लिखा है तो उसका अर्थ है कि पचमी का अत उस दिन सूर्योदय के ४ घटी ५१ पल बाद हुआ ।

लौकिक कार्यों के लिए सूर्योदय के क्षण की तिथि, उस क्षण से लेकर आगामी सूर्योदय तक, बदली नही जाती है । इस प्रकार, ऊपर बताये गये उदाह-

रण मे उस दिन, जिसमे पचमी का अत सूर्योदय के लगभग २ घटे बाद हुआ, महाजन सारे दिन और सारी रात को पचमी मानेगा, यद्यपि उस दिन सूर्योदय के लगभग २ घटे बाद से ज्योतिष की परिभाषा के अनुसार षष्ठी का आरभ हो गया था।

ऊपर की परिभाषा से स्पष्ट है कि तिथियो की अवधि (घटो या घटियो मे नाप) बराबर नही होती, क्योकि चद्रमा और सूर्य के भोगाश समान अर्थ (दर) से नही बढते। वे तो केपलर के नियमो के अनुसार बढते है और ऊपर से कई विक्षोभ भी होते है। इसलिए तिथि की अवधि एक सूर्योदय से आगामी सूर्योदय तक के समय से छोटी भी हो सकती है, बडी भी। इसलिए ऐसा हो सकता है कि कोई तिथि इतनी छोटी हो कि किसी दिन सूर्योदय के थोडे ही समय बाद उसके आरभ होने पर आगामी सूर्योदय के पहले ही उसका अत हो जाय। इससे स्पष्ट है कि वैध (लौकिक) तिथियाँ क्रमागत नही होती। उदाहरणार्थ, पचाग के अनुसार बुध, १३ दिसबर १९५०, को चतुर्थी का अत सूर्योदय से एक घटी और ५ पल के बाद हुआ और आगामी तिथि का (अर्थात् पचमी का) अत आगामी सूर्योदय होने के ५ घटी २५ पल पहले ही हो गया। इस प्रकार बुध के दिन सूर्योदय के समय ज्योतिष तिथि चतुर्थी थी और अगले दिन बृहस्पति को सूर्योदय के समय तिथि षष्ठी थी। इसलिए बुध को सारे दिन वैध तिथि चतुर्थी थी और बृहस्पति को सारे दिन षष्ठी थी। इस प्रकार इस पक्ष (अर्धमास) मे पचमी किसी दिन थी ही नही।

फिर, ऐसा भी हो सकता है कि कोई तिथि २४ घटे से अधिक की हो और वह किसी दिन सूर्योदय के थोडे समय पहले आरभ हो और आगामी दिन के सूर्योदय के कुछ समय बाद उसका अत हो। इसका परिणाम यह होगा कि दो क्रमागत दिनो मे एक ही तिथि रहेगी। उदाहरणार्थ, सोमवार, १९ दिसबर १९५०, और मगल, २० दिसबर १९५०, दोनो ही दिन एकादशी थी। परतु चाद्र मास की अवधि लगभग २९½ दिन है और उतने मे ३० तिथियाँ है। इसलिए अधिकतर तिथियो का क्षय ही होता है, पुनरावृत्ति कम होती है।

ऊपर के विवेचन से स्पष्ट है कि वैध तिथि सूर्योदय के समय पर भी निर्भर है, और इसलिए ऐसा हो सकता है, और होता भी है, कि विभिन्न स्थानो मे एक ही दिन विभिन्न तिथियाँ हो। परतु एक क्षेत्र के लोग साधारणत किसी केंद्रीय स्थान का पचाग मानते है और ठीक अपने स्थान का पचाग आवश्यक नही समझते। इसलिए व्यवहार मे वस्तुत कठिनाई नही उत्पन्न होती।

अको से तिथि बताने की दो पद्धतियाँ है, या तो अमावस्या के बाद से आरभ करके उनकी सख्या १ से ३० तक दिखायी जाती है, या, पक्ष बना कर और अमावस्या या पूर्णिमा के बाद से आरभ करके, १ से १५ तक। पक्ष आधे चाद्र माम को कहते हैं। एक पक्ष कृष्ण पक्ष कहलाता है जिसमे सध्या के समय चद्रमा का उदय नही हुआ रहता, दूसरा शुक्ल पक्ष कहलाता है।

वार सात होते है रविवार, सोमवार, मगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र और शनिवार। मगल, बुध, बृहस्पति और शुक्र को क्रमानुसार मगलवार, बुधवार, इत्यादि भी कहते है। रविवार को आदित्यवार भी कहते है।

नक्षत्र—रविमार्ग को २७ बराबर भागो मे बाँट कर प्रत्येक को एक नक्षत्र कहते है। चद्रमा का तारो के सापेक्ष एक चक्कर लगभग २७$\frac{1}{3}$ दिन मे लगता है। इसलिए चद्रमा (वस्तुत चद्रमा से रविमार्ग पर डाले गये लब का पाद) एक नक्षत्र मे लगभग १ दिन तक रहता है। नक्षत्रो के नाम अश्विनी, भरणी, कृत्तिका आदि है। अश्विनी का प्रथम बिंदु मेष के प्रथम बिंदु को ही माना जाता है।

जब कहा जाता है कि इस क्षण अश्विनी नक्षत्र है तो साधारणत अर्थ यही रहता है कि चद्रमा अश्विनी नामक नक्षत्र मे है। परतु कभी-कभी यह अर्थ भी होता है कि सूर्य अश्विनी मे है। उदाहरणार्थ, जब कहा जाता है कि कृष्ण भगवान् का जन्म रोहिणी नक्षत्र मे हुआ था तो अभिप्राय यह है कि उस समय चद्रमा रोहिणी नक्षत्र मे था, परतु जब कहा जाता है कि वर्षा का आरभ आर्द्रा नक्षत्र मे होता है तो अभिप्राय यह होता है कि वर्षा का आरभ तब होता है जब सूर्य आर्द्रा नक्षत्र मे रहता है। नक्षत्र का अत कब होगा (अर्थात् चद्रमा उस नक्षत्र को छोड कर आगामी नक्षत्र मे कब जायगा) यह पचागो मे दिया रहता है।

नक्षत्र का एक अर्थ तारा भी है। कुछ तारो के समूह को भी नक्षत्र कहते हैं, विशेषकर तारो के उन छोटे-छोटे समूहो को जो चद्रमा के मार्ग मे पडते है। ये समूह तारामडलो से छोटे है और इनके वे ही नाम है जो ऊपर रविमार्ग के खडो के लिए बताये गये हैं, अर्थात् अश्विनी, भरणी आदि। ऐसा जान पडता है कि अत्यत प्राचीन समय मे अश्विनी, भरणी आदि से तारो के समूह ही समझे जाते थे और आँख से देख कर पता लगाया जाता था कि चद्रमा किस नक्षत्र मे, अर्थात् किस तारका-पुज मे है। पीछे गणना की सुविधा के लिए नक्षत्र को रविमार्ग का ठीक सत्ताईसवाँ भाग मान लिया गया।

योग—सूर्य और चद्रमा के भोगाशो के योगफल से योग ज्ञात किया जाता है। योगफल को सख्याओ मे न बताना पडे इस अभिप्राय से यह मान लिया गया है कि २७ योग होते है और उनके नाम रख दिये गये हैं, जैसे विष्कभ, प्रीति इत्यादि। योग ज्ञात करने के लिए सूर्य और चद्रमा के भोगाशो के योगफल को कलाओ मे व्यजित करना चाहिये और तब उसे ८०० से भाग देना चाहिये। भजनफल की पूर्ण सख्या मे एक जोड देने से योग की क्रमसख्या प्राप्त होगी। उदाहरण के लिए, यदि भजनफल १·३७२ मिले तो योग की क्रमसख्या २ होगी और इसलिए उस क्षण प्रीति नामक योग होगा। पचागो मे योगो के अतिम क्षण दिये रहते है। योग देने का उद्देश्य यही जान पडता है कि तिथि और नक्षत्र की गडबडी की जाँच हो सके।

करण—आधी तिथि का एक करण होता है। उदाहरणार्थ, प्रतिपदा के पहले आधे को बालव नामक करण माना जाता है, दूसरे आधे को कौलव, इत्यादि। परन्तु ३० × २ नाम होने के बदले नाम थोडे ही है और करणो का क्रम जानने के लिए एक नियम है, जिसे यहाँ देना आवश्यक नही जान पडता।

लग्न—किस क्षण मे क्या लग्न है, यह इससे पता चलता है कि उस क्षण रविमार्ग का कौन-सा खड पूर्वीय क्षितिज को पार कर रहा है। लग्न के उल्लेख से वही उद्देश्य सिद्ध होता है जो आधुनिक प्रणाली मे घटा बताने से।

★ मास

पूर्वोक्त पाँच बाते प्रतिदिन (और कुछ तो दिन मे कई बार) बदलती है। इसलिए किसी घटना का समय बताने के लिए इनके अतिरिक्त अवश्य ही मास और वर्ष भी बताना पडता है। हिंदू पचागो मे चाद्र मासो का उपयोग होता है और नियमानुसार समय-समय पर एक वर्ष मे १२ के बदले १३ मास रख कर ऐसा प्रबध किया जाता है कि महीनो और ऋतुओ का सबध टूटने नही पाता। तेरहवे मास, अर्थात् अधिमास के जोडने के लिए वैज्ञानिक नियम बने है। यूरोप के लोगो के महीनो का अमावस्या-पूर्णिमा से कोई सबध नही रह गया है और उन्होने महीनो मे इच्छानुसार दिन रखकर १२ महीनो को एक वर्ष के बराबर बना लिया है। मुसलिम वर्ष, जैसा हम देख चुके है, १२ चाद्र मासो का होता है, जिससे मास और ऋतु में कोई अचल सबध नही रहता। यह उनका धार्मिक वर्ष है। लगान वसूल करने के लिए मुसलमान बादशाहो को एक अन्य वर्ष का प्रयोग करना पडता था जिसे वे फसली (= फसलवाला) वर्ष कहते थे और जिसकी लम्बाई लगभग सायन थी।

वर्ष मे चाद्र मासो के नाम, और यदि अधिमास लगे तो उसका भी नाम, हिंदू पचाग मे सौर महीनो के नाम पर पडते है। एक विशेष बिदु से आरभ करके रविमार्ग को १२ भागो मे बाँटा गया है, जिनमे से प्रत्येक को एक राशि कहते है। जब तक सूर्य प्रथम राशि मे रहता है उतने समय तक प्रथम सौर मास रहता है, दूसरी राशि मे जब तक सूर्य रहता है उतने समय तक द्वितीय सौर मास रहता है, इत्यादि।

इस प्रकार ज्योतिष सौर मास, जिसकी परिभाषा ऊपर दी गयी है, दिन-रात मे किसी क्षण पर आरभ हो सकता है। सुविधा के लिए वैध (अर्थात् लौकिक व्यवहार वाला) सौर मास ज्योतिष सौर मास के प्रथम सूर्योदय मे आरभ होता है।

राशि नामो के अर्थ वे ही है जो यूरोपीय नामो के। वे यो हैं—

मेष, वृष, मिथुन, कर्क, सिह, कन्या, तुला, वृश्चिक, धनु, मकर, कुभ, मीन।

उस क्षण को सक्राति कहते हैं जब सूर्य एक राशि से आगामी राशि मे जाता रहता है। मेष-सक्राति उस क्षण को कहते हैं जब सूर्य मेष राशि मे प्रवेश करता है। ज्यौतिष सौर मास एक सक्राति स आगामी सक्राति तक चलता है।

सौर महीनो के वे ही नाम है जो राशियो के है, परन्तु विकल्प से उनके वे नाम भी हैं जो चाद्र मासो के है। उदाहरणार्थ, मेष सौर मास को वैशाख सौर मास भी कहते है।

सौर मासो मे दिनाक १ से २९, ३०, ३१ या ३२ तक हो सकते हैं, क्योंकि सूर्य के न्यूनाधिक कोणीय वेग के कारण सौर मासो की लबाइयाँ विभिन्न होती है। पजाब, बगाल, उडीसा और मद्रास के कई जिलो मे सौर मास ही अधिक चलते हैं, परतु इन स्थानो मे भी धार्मिक कृत्य, त्योहार और फलित ज्योतिष की गणनाएँ चाद्र तिथियो पर आश्रित है।

ज्योतिष के काम के लिए उत्तर भारत मे चाद्र मास पूर्णिमा के क्षण के ठीक बाद से आरभ होकर आगामी पूर्णिमा के क्षण तक (और उस क्षण को सम्मिलित करके) चलता है। परतु लौकिक कार्यो के लिए चाद्र मास ज्यौतिष चाद्र मास के प्रथम सूर्योदय से आरभ होता है। दक्षिण भारत मे चाद्र मासो की गणना अमावस्या से अमावस्या तक होती है, यही प्रथा पहले उत्तर मे भी चलती थी। अब केवल शुक्ल पक्ष मे उत्तर और दक्षिण के महीनो मे एकता रहती है। कृष्ण पक्ष मे उत्तर भारत मे चाद्र मास का नाम दक्षिण की तुलना मे एक मास आगे बढा रहता है।

चाद्र मासो का नाम २७ नक्षत्रो मे से चुने हुए १२ नक्षत्रो पर पडा है। ये १२ नक्षत्र इस प्रकार चुने गये है कि वे यथासभव बराबर-बराबर कोणीय दूरी पर

रहे और उनमे कोई चमकीला तारा रहे। महीने का नाम उस तारे या नक्षत्र पर पड जाता है जहाँ चद्रमा के रहने पर उस मास पूर्णिमा होती है। उदाहरणार्थ, उस माम को चैत्र कहते है जिसमें पूर्णिमा तब होती है जब चद्रमा चित्रा (कन्या, ऐल्फा वर्जिनिस) के पास रहता है। चैत्र को हिंदी मे चैत कहते है।

अधिमास का लगना सौर और चाद्र मासो के सबध पर आश्रित है। उसे समझने के लिए चाद्र और सौर मासो की लबाइयो पर ध्यान देना चाहिये।

हम जानते हैं कि एक वर्ष मे लगभग ३६५$\frac{1}{4}$ दिन होते है। इसलिए एक सौर मास इसका बारहवाँ भाग, अर्थात् लगभग ३० दिन और १०$\frac{1}{2}$ घटे का होना है। यह चाद्र मास (२९$\frac{1}{2}$ दिन) से अधिक है। इसलिए बहुधा ऐसा होगा कि एक ही सौर मास मे दो अमावस्याएँ पडेगी। ऐसे अवसरो पर दो क्रमागत चाद्र मासो को एक ही नाम दे दिया जाता है। उस चाद्र मास को (अमावस्या मे अमावस्या तक के समय को) अधिमास (या मलमास) कहा जाता है जिसमे सक्राति नही होती। इस प्रकार उस वर्ष १३ महीने होगे। स्पष्ट है कि चाद्र मास वस्तुत सौर मासो के अधीन होते है और अधिमासो का नियम अपने आप चाद्र मासो और ऋतुओ का सबध बनाये रखना है, यदि अतर पडता है तो अधिक-से अधिक १५ दिन इधर या १५ दिन उधर।[1]

सूर्य विभिन्न राशियो को बराबर समयो मे नही पार करता। कुछ सौर मास २९$\frac{1}{2}$ दिन के चाद्र मास से छोटे होते है। इसलिए कभी-कभी ऐसा भी होता है कि उस छोटे सौर मास मे कोई अमावस्या नही पडती। ऐसी स्थिति मे एक महीना पडता ही नही, परतु ऐसा विरले अवसरो पर ही होता है।

★ वर्ष

समय की सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण इकाई वर्ष है। आप्टे-कृत अग्रेजी सस्कृत कोश' मे वर्ष के अँग्रेजी शब्द के लिए वर्ष, सवत्सर, वत्सर, अब्द, हायन, समा, शरद् और सवत् ये शब्द दिये है और इन सब शब्दो का सबध ऋतुओ से है। वर्ष और वर्षा का सबध तो स्पष्ट है ही, सवत्सर का अर्थ है वह आवर्तकाल जिसमे सब ऋतुएँ एक बार आ जायँ, इत्यादि। प्रत्यक्ष है कि भारत मे प्राचीन काल से ही वर्ष का अर्थ सायन वर्ष समझा जाता है। इसका प्रमाण इससे भी मिलता है कि वर्ष को दो भागो मे बाँटा जाता था, एक वह जिसमें सूर्य उत्तर जाता है (उत्तरायण) और दूसरा वह जिसमे सूर्य दक्षिण जाता है (दक्षिणायन)।

१ यहाँ यह मान लिया गया है कि सौर मास स्वय ऋतुओ के साथ चलते हैं, अर्थात् वर्ष का मान ठीक सायन है।

परंतु हमारे प्राचीनतम ज्योतिषी अयन (विषुव-चलन) को नहीं जानते थे। बाद वाले ज्योतिषियों में यह निर्विवाद नहीं था कि वसंत विषुव एक मध्यक स्थिति के इधर-उधर दोलन करता है या बराबर एक ओर चलता रहता है। बात यह है कि गतिविज्ञान का उनका ज्ञान इतना अधिक नहीं था कि वे निश्चयात्मक रूप से जान सके कि वसंत विषुव सदा एक दिशा में चलता रहेगा। परिणाम यह हुआ कि भारतीय ज्योतिषी नाक्षत्र और सायन वर्षों में बहुत समय तक भेद नहीं मानते थे, और यद्यपि वे सायन वर्ष का मान जानना चाहते थे, उन्होंने नाक्षत्र वर्ष का मान नाप पाया। सूर्य-सिद्धांत के अनुसार एक वर्ष ३६५ दिन ६ घंटे १२ मिनट ३६.६५ सेकंड का होता है। परंतु आधुनिक नापों के अनुसार सायन वर्ष की नाप इससे लगभग २४ मिनट छोटी है। सूर्य-सिद्धांत और शुद्ध नाक्षत्र वर्ष में कुल ३ मिनट का अंतर है।

दुर्भाग्य की बात है कि आज के भारतीय पंचांगकार एकमत नहीं है। उनमें से रूढ़ि को न मानने वालों ने नाक्षत्र और सायन वर्षों के लिए आधुनिक मानों को काम में लाना आरंभ कर दिया है, परंतु रूढ़िवादी पंचांगकार नाक्षत्र वर्ष का प्रयोग करते हैं और प्राचीन ग्रंथों में से किसी एक के मान को ठीक समझते हैं। इसके अतिरिक्त मतभेद की एक बात और भी है, मेष के प्रथम बिंदु के लिए भी झगड़ा है। भारत की केन्द्रीय सरकार ने पंचांग-संशोधन के लिए समिति बनायी थी। उसने १९५५ ई० में अपना निश्चय सरकार के सम्मुख उपस्थित किया। यदि सरकार, पंचांगकार और सारे भारत की जनता इस समिति की बात स्वीकार करे तो बहुत अच्छा होगा। जनता के दैनिक जीवन से पंचांग का इतना घनिष्ठ संबंध है कि वर्तमान व्यवहार में कोई तीव्र भिन्नता जनता ग्रहण नहीं करेगी। पंचांग-संशोधन समिति ने इस पर ध्यान रखा है।

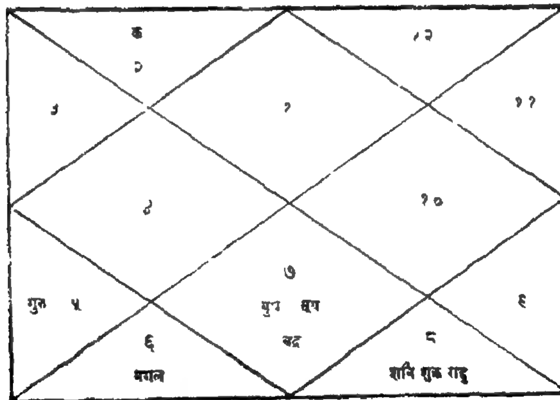
इस संबंध में स्मरण रखना चाहिये कि यदि हम सायन वर्ष को नहीं अपनायेंगे तो महीनों के सापेक्ष ऋतुओं में अंतर बढ़ता चला जायगा और कुछ समय में बड़ा अनर्थ हो जायगा। आजकल सावन-भादो वर्षा के लिए प्रसिद्ध है, परंतु यदि हम सूर्य-सिद्धांत के ही वर्षमान का प्रयोग कुछ हजार वर्षों तक करते चले जायँगे तो उन महीनों में जिन्हें हम सावन और भादो कहेंगे कड़ाके का जाड़ा पड़ेगा।

कालिदास के समय से आज २५ दिन का अंतर ऋतुओं में पड़ गया है। जैसी ऋतु कालिदास के समय में कुआर के महीने के प्रथम पचीस दिनों में रहती थी वैसी अब भादो के अंतिम पचीस दिनों में रहती है, दूसरे शब्दों में, जिस

महीने को ऋतु के अनुसार हमे कुआर कहना चाहिये उमे हम वर्षमान की अशुद्धि के कारण भादो कहते हैं। वेदाग-ज्योतिष के समय से तो लगभग ४४ दिन का अतर पड गया है।

★ कुडली

कुडली मे एक विशेष रूप से बारह घर (कोष्ठ) बनाकर सूर्य, चद्रमा और पाँच प्राचीन ग्रह तथा चद्रकक्षा के पातो (राहु और केतु) की स्थितियाँ, किसी विशेष क्षण पर, विशेषकर किसी व्यक्ति के जन्म के क्षण पर, दिखायी जाती है। कुडली के बारह घर बारह राशियो को निरूपित करते । ऊपरी पक्ति के बीच वाले घर मे उस राशि का क्रमाक लिखा जाता है जो अभीष्ट क्षण पर लग्न थी, अर्थात् पूर्वीय क्षितिज को काट रही थी। इसके बाद अन्य घरो मे क्रमानुसार अन्य राशियो की सख्या लिख दी जाती है (चित्र देखे)। इस प्रकार प्रत्येक घर अब उस राशि को निरूपित करता है जिसकी सख्या उस घर मे लिखी है (अवश्य ही, मेष को प्रथम राशि माना जाता है)। अब जिस राशि मे जो ग्रह उस क्षण आकाश मे था कुडली के उसी घर मे उसका नाम लिख दिया जाता है।



नूतन वर्ष २०१२ विक्रमी के आदिक्षण की कुडली

('जन्मभूमि' नामक खगोलसिद्ध निरयन कार्तिकी पचाग के अनुसार)

कुडलियाँ फलित ज्योतिष मे भविष्य बताने के काम मे आती है, परतु गणितज्ञो और इतिहासज्ञो के लिए भी वे महत्त्वपूर्ण है, क्योकि कुडली मे दी गयी ग्रहो और सूर्य

आदि की स्थितियो से उस क्षण के दिनाक और समय का पता चल सकता है जिसके लिए कुडली बनायी गयी थी।[1]

भारतीय पचाग पद्धति वैज्ञानिक सिद्धातो पर आश्रित है और इसके अनुसार चाद्र मास और वर्षारभ दोनो ऋतु के अनुसार चलते है। एक दोष इसमे यह अवश्य है कि ज्योतिष न जानने वाली जनता स्वय दिनाको की गणना नही कर सकती, परतु मध्यकालीन दिनाको की सत्यता की जाँच मे यह अवगुण वस्तुत महान् गुण सिद्ध हुआ है। यह खेद की बात है कि सारा भारत एक ही पचाग नही मानता, परतु इस बात का सुधार करने के लिए उपाय किया जा रहा है।

भारत सरकार की पचाग-सशोधन समिति।

काउसिल ऑव सायटिफिक ऐड इडस्ट्रियल रिसर्च, ओल्ड मिल रोड, नयी दिल्ली से प्रकाशित, भारत सरकार की पचाग-सशोधन समिति की रिपोर्ट अब जनता भी खरीद सकती है। इसमे लगभग ३०० पृष्ठ है और आकार बहुत बडा है। आरभ मे श्री जवाहरलाल नेहरू का सदेश है। भूमिका मे सभापति डॉक्टर मेघनाथ साहा ने बताया है कि पचाग और सरकार से क्या सबध है फिर पचाग की मोटी-मोटी बाते और समिति की विविध बैठको का विवरण है। इस समिति के परामर्शो से सब सदस्य सहमत थे, केवल एक सदस्य डाक्टर दफ्तरी, एक बात मे नही सहमत हुए। उनका विचार था कि उन धार्मिक त्यौहारो की गणना सायन[2] नक्षत्रो से करनी चाहिये जिनका सबध धर्मशास्त्रो के अनुसार नक्षत्रो मे है, उनकी गणना निरयन[3] नक्षत्रो से करना अनुचित होगा। परिशिष्ट ४ मे डाक्टर दफ्तरी का लिखा हुआ इस मतभेद का समर्थन छपा है। परिशिष्ट ५ मे उन पचागो की सूची है जो पचाग-सशोधन समिति की विज्ञप्ति के अनुसार सारे भारत से आये थे। परिशिष्ट ६ मे इन सब पचागो के कर्त्ताओ का वह उत्तर है जो उन्होने समिति की प्रश्नावली पाने पर भेजा था। इन उत्तरो से पता चलता है कि ३६ पचाग आधुनिक रीति से बनते है, शेष १५ प्राचीन रीति से। परिशिष्ट ७ मे उन सब व्यक्तियो के सुझावो का साराश है जिन्होने समिति को पत्र लिखने का कष्ट उठाया था (समिति की ओर से सुझावो की माँग सब समाचार पत्रो मे छपी थी)। इसके

१ कभी-कभी दिनाक में तीन दिन का अतर पड सकता है, क्योंकि चद्रमा एक राशि से दूसरी मे जाने मे दो दिन से अधिक समय लेता है।

२ अर्थात् वसत विषुव के साथ चलने वाले।

३. अर्थात् तारो के हिसाब से स्थिर।

बाद शक १८७६ से शक १८८० तक(१९५४ मार्च से १९५९ मार्च तक)के लिए आधुनिक पचाग है। इसके बाद त्यौहारो के लिए नियम विविध धर्मशास्त्रो या लोकाचारो के आधार पर बताये गये है। साथ मे विविध प्रातो के लिए छुट्टियो की सूचियाँ भी सलग्न है।

यहाँ तक की सामग्री खड क और ख में है। इसके बाद खड ग है जिसे डाक्टर मेघनाथ साहा और श्री निर्मलचद्र लहिरी ने मिलकर लिखा है। इसमे विविध देशो मे प्राचीनतम समय से आधुनिक समय तक के पचागो का इतिहास दिया गया है।

समिति के परामर्श निम्नलिखित है—

(१) वर्ष ३६५.२४२२ दिन का हो। इसका परिणाम यह होगा कि ऋतुओ के हिसाब से महीने भविष्य मे न खिसकेगे। जिन महीनो मे जैसी ऋतु आज रहती है वैसी भविष्य मे भी बनी रहेगी। जो गडबडी पड चुकी है उसे ठीक करने की चेष्टा नही की गयी है। वर्षमान के बदल जाने का जनता को पता ही न चलेगा, क्योकि अतर बहुत सूक्ष्म है।

(२) भारतीय वर्ष का आरभ वसत-विषुव दिवस से (अर्थात् २२ मार्च से) हो। सौर महीनो का उपयोग करने वाले देशो मे इसमे विशेष कठिनाई न पडेगी, केवल एक वर्ष कुछ असुविधा होगी। उत्तर प्रदेश मे इन दिनो हिंदू वर्ष चैत से आरभ होता है, जो आगे-पीछे हटा करता है।

(३) वर्ष के दूसरे से लेकर छठे सौर महीनो मे ३१ दिन रहे, शेष मे ३० दिन, अधिवर्षों मे सातवे महीने मे भी ३१ दिन रहेगे। भारतीय प्रथा मे अधिवर्ष उसी वर्ष होगा जब यूरोपीय वर्ष मे अधिवर्ष (लीप इयर) होगा। यह बगाल आदि मे प्रचलित प्रथा के इतना निकट है कि वहाँ कोई कठिनाई न पडेगी।

(४) दिन का आरभ अर्ध-रात्रि से माना जाय।

(५) भारत सरकार का पचाग उज्जैन के अक्षाश और ग्रिनिच से ५½ घटा पूर्व देशातर के लिए बना करे।

(६) शक वर्षो का प्रयोग किया जाय।

भारतीय ज्योतिष संबंधी संस्कृत ग्रंथ

१ **वेदांग-ज्योतिष**—ग्रंथकार लगध महात्मा।

(क) मूल और संस्कृत टीका, सुधाकर द्विवेदी, बनारस, १९०६।

(ख) मूल, अंग्रेजी अनुवाद और संस्कृत टीका, शामशास्त्री, मैसूर, १९३६।

२ **सूर्य-सिद्धांत**—ग्रंथकार अज्ञात।

(क) मूल और रंगनाथ कृत संस्कृत टीका, संपादक जीवानंद विद्यासागर, कलकत्ता, १८९१।

(ख) मूल और संस्कृत टीका, कपिलेश्वर चौधरी, बनारस, १९४६।

(ग) मूल और संस्कृत टीका, सीताराम झा, बनारस १९४२।

(घ) मूल और संस्कृत टीका, सुधाकर द्विवेदी, द्वितीय संस्करण, कलकत्ता १९२५।

(ङ) मूल और परमेश्वर कृत संस्कृत टीका, संपादक डाक्टर कृपाशंकर शुक्ल, लखनऊ, १९५६।

(च) अंग्रेजी अनुवाद और टीका, बापूदेव शास्त्री, कलकत्ता १८६१।

(छ) अंग्रेजी अनुवाद और टीका, ई० बर्जेस, पुनर्मुद्रित, कलकत्ता, १९३५।

(ज) हिंदी अनुवाद और टीका, महावीरप्रसाद श्रीवास्तव, इलाहाबाद, १९४०।

३ **आर्यभटीय**—ग्रंथकार आर्यभट प्रथम (जन्म ४७६ ई०)।

(क) मूल और परमेश्वर कृत संस्कृत टीका, संपादक एच० कर्न, लाइडेन (हॉलैंड), १८७४।

(ख) मूल और नीलकंठ कृत संस्कृत टीका, संपादक के० एस० शास्त्री, त्रिवेन्द्रम, १९३०-३१।

(ग) अंग्रेजी अनुवाद, पी० सी० सेनगुप्त, कलकत्ता, १९२७।

(घ) अंग्रेजी अनुवाद, डब्लू० ई० क्लार्क, शिकागो, १९३०।

(ङ) हिंदी अनुवाद, उदय नारायन सिंह, इटावा, १९०६।

४ **पंच-सिद्धांतिका**—ग्रंथकार वराहमिहिर (लगभग ५५० ई०)।
मूल, संस्कृत टीका और अंग्रेजी अनुवाद, जी० थीबो और सुधाकर द्विवेदी, बनारस, १८८९।

५ **ग्रहचार निबंधन**—ग्रंथकार हरिदत्त।
के० वी० शर्मा द्वारा संपादित, मद्रास, १९५४।

६ **महाभास्करीय**—ग्रंथकार भास्कर प्रथम (६२९ ई०)।
मूल और परमेश्वर कृत संस्कृत टीका, संपादक बी० डी० आप्टे, पूना, १९४६।

७ **लघुभास्करीय**—ग्रंथकार भास्कर प्रथम (६२९ ई०)।
मूल और परमेश्वर कृत संस्कृत टीका, संपादक बी० डी० आप्टे, पूना, १९४६।

८ **ब्राह्मस्फुट-सिद्धांत**—ग्रंथकार ब्रह्मगुप्त (६२८ ई०)।
स्वयं ग्रंथकार कृत संस्कृत टीका, संपादक सुधाकर द्विवेदी, बनारस, १९०२।

९ **खंडखाद्यक**—ग्रंथकार ब्रह्मगुप्त (६६५ ई०)।
(क) मूल और पृथूदक कृत संस्कृत टीका, सम्पादक पी० सी० सेनगुप्त, कलकत्ता, १९४१।
(ख) मूल और आमराज कृत संस्कृत टीका, संपादक बबुआ मिश्र, कलकत्ता, १९२५।
(ग) अंग्रेजी अनुवाद, पी० सी० सेनगुप्त, कलकत्ता, १९३४।

१० **शिष्यधीवृद्धिद**—ग्रंथकार लल्ल।
सुधाकर द्विवेदी द्वारा संपादित, बनारस, १८८६।

११ **लघुमानस**—ग्रंथकार मंजुल (९३२ ई०)।
(क) मूल और परमेश्वर कृत संस्कृत टीका संपादक बी० डी० आप्टे, १९४४।
(ख) अंग्रेजी अनुवाद, एन० के० मजूमदार, कलकत्ता, १९५१।

१२ **महासिद्धांत**—ग्रंथकार आर्यभट द्वितीय (लगभग ९५० ई०)।
स्वयं ग्रंथकार कृत संस्कृत टीका संपादक सुधाकर द्विवेदी, बनारस, १९१०।

१३ **राजमृगांक**—ग्रंथकार किंवदंती के अनुसार राजा भोज (१०४२ ई०)।
संपादक के० माधव कृष्ण शर्मा, अड्यार, १९४०।

१४ **सिद्धांत-शेखर**—ग्रंथकार श्रीपति (लगभग १०३९ ई०)।
संपादक बबुआ मिश्र, संस्कृत टीका सहित, अंशत मक्कि भट्ट कृत और अंशत संपादक कृत, कलकत्ता, १९३२, १९४७।

१५ **करण-प्रकाश**—ग्रथकार ब्रह्मदेव (१०९२ ई०)।
मूल और सस्कृत टीका, सुधाकर द्विवेदी, बनारस, १८९९।

१६. **भास्वती**—ग्रन्थकार शतानद (१०९९ ई०)।
मूल और स्वय ग्रन्थकार कृत सस्कृत तथा हिदी टीकाएँ, सपादक एम० पी० पाडे, बनारस, १९१७।

१७ **सिद्धांत-शिरोमणि**—ग्रन्थकार भास्कर द्वितीय (१११४ ई०)।
(क) बापूदेव शास्त्री द्वारा सपादित और गणपति देव शास्त्री द्वारा सशोधित, बनारस, १९२९।
(ख) भाग १, मूल और गणेश दैवज्ञ कृत टीका, सपादक बी० डी० आप्टे, पूना, १९४३।
(ग) भाग २, अँग्रेजी अनुवाद, एल० विल्किन्सन, कलकत्ता, १८६१।
(घ) हिंदी अनुवाद, गिरिजाप्रसाद द्विवेदी, लखनऊ, भाग १ (१९२६), भाग २ (१९११),

१८ **करण-कुतूहल**—ग्रन्थकार भास्कर द्वितीय (११५० ई०)।
मूल और सुमति हर्ष कृत टीका, सपादक माधव शास्त्री, बबई, १९०१।

१९ **यत्रराज**—ग्रथकार महेंद्र सूरि।
मूल और मलयेन्दु सूरि कृत टीका, सपादक कृष्णशकर केशव वर्मा रैंकक, बबई, १९३६।

२० **गोलदीपिका**—ग्रथकार परमेश्वर (१४३० ई०)।
सपादक टी० गणपति शास्त्री, त्रिवेन्द्रम १९१६।

२१ **राशिगोलस्फुटानीति**—ग्रथकार अच्युत।
मूल और सस्कृत टीका, के० बी० शर्मा, अद्यार, १९५५।

२२ **सिद्धात-दर्पण**—ग्रथकार नीलकठ (लगभग १५०० ई०)।
मूल तथा अग्रेजी अनुवाद, के० वी० शर्मा, अद्यार, १९५५।

२३ **ग्रहलाघव**—ग्रथकार गणेश दैवज्ञ (१५२० ई०)।
मूल और मल्लारि कृत, विश्वनाथ कृत तथा अपनी टीकाएँ, सुधाकर द्विवेदी, बबई, १९२५।

२४. **सिद्धात-सार्वभौम**—ग्रथकार मुनीश्वर।
सपादक मुरलीधर ठक्कुर, बनारस, १९३२, १९३५।

२५ **सिद्धांत-तत्त्व-विवेक**—ग्रंथकार कमलाकर।
(क) संपादक सुधाकर द्विवेदी, बनारस, १८८५।
(ख) मूल और संस्कृत टीका, भाग १, लखनऊ, १९२८, भाग २, भागलपुर, १९३५, भाग ३, बनारस, १९४१।

अन्य ग्रंथ

१ **गणक-तरंगिणी**—सुधाकर द्विवेदी, बनारस, १८९२।

२ **बृहत्संहिता**—वराहमिहिर कृत—मूल और भट्टोत्पल कृत संस्कृत टीका सहित, सुधाकर द्विवेदी, बनारस, १८९५, १८९७।

३ **सिद्धांत-दर्पण**—चन्द्रशेखर सिंह कृत—योगेशचंद्र राय।

४ **भारतीय ज्योतिषशास्त्र** (मराठी में)—शंकर बालकृष्ण दीक्षित, पूना, १९३१। [हिंदी अनुवाद—शिवनाथ झारखंडी, हिंदी समिति, उत्तर प्रदेश शासन, हिंदी भवन, लखनऊ]।

५ **एनशेन्ट इंडियन मैथिमैटिक्स ऐंड वेध**—एल० वी० गुर्जर, पूना, १९४७।

६ **हिंदू ऐस्ट्रॉनोमी**—जी० आर० के।

७ **ऐस्ट्रोनॉमिकल ऑबजरवेटरीज ऑफ जयसिंह**—जी० आर० के।

८ **दि जयपुर ऑबजरवेटरी ऐंड इट्स बिल्डर**—आर० ई० गैरट।

९ **गाइड टु दि ऑबजरवेटरीज ऑफ जयसिंह**—जी० आर० के (१९२०)।

१० **अस्ट्रोनोमी, अस्ट्रोलोजी उंड मथिमटीक** (जरमन में)—जी० थीबो।*

---

* **संपूर्ण सूची डाक्टर कृपाशंकर शुक्ल की थीसिस से संकलित।**

अनुक्रमणिका